केरल राज्य और एक अन्य

बनाम

एन० एम० टॉमस और अन्य

(The State of Kerala and Another

Vs.

N. M. Thomas and Others)

(19 सितम्बर, 1975)

(मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे, न्या० एच० आर० खन्ना, के० के० मैथ्यू, एम० एच० बेग, वी० आर० कृष्ण अय्यर, ए० सी० गुप्ता और एस० मुर्तजा फ़ज़ल अली)

संविधान—अनुच्छेद 14—समता का सिद्धान्त—वर्गीकरण—विभेद वर्गीकरण का सार होता है—विभेदपूर्ण अवसर का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से न्यायपूर्ण और तर्कसंगत सम्बन्ध होना चाहिए—एक ही काडर के सदस्यों के बीच भी वर्गीकरण किया जा सकता है—विधियों के समान संरक्षण में वर्गीकरण भी अनिवार्य रूप से आता है—जिन व्यक्तियों का सेवा में प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए किए गए वर्गीकरण से समता के सिद्धान्त का अतिक्रमण नहीं होता है। (मु० न्या० रे)

संविधान—अनुच्छेद 16(1) और 16(4)—पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षण—दो विभिन्न स्रोतों से की गई नियुक्तियां वर्गीकरण के सिद्धान्त के अनुसार मान्य हैं—अनुच्छेद 16(1) की भाषा के अनुसार अधिमानी व्यवहार अनुध्यात नहीं है—एक ही स्रोत से भर्ती किए गए व्यक्तियों में से कुछ के प्रति अधिमानी व्यवहार करने से अनुच्छेद 16(1) में सन्निविष्ट अवसर समता का सिद्धान्त यदि पूर्णतः समाप्त नहीं होता है तो भी उसका महत्त्व कम अवश्य होता है। (न्या० खन्ना)

1975(9) eILR(PAT) SC 1

केरल स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज़ रूल्स, 1958—नियम 13-एए—विधिमान्यता—यह नियम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को प्रशासन की दक्षता का अहित किए बिना सेवा की उच्चतर श्रेणी में प्रोन्नति का अपना सम्यक् हिस्सा प्राप्त करने में समर्थ बनाने के लिए है—इस नियम के अधीन प्रोन्नति के लिए विभागीय परीक्षा पास करने से स्थायी छूट नहीं दी गई है—किन्तु ऐसा करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए उचित समय ही दिया गया है—नियम विधिमान्य हैं। (न्या० मैथ्यू)

संविधान—अनुच्छेद 14—वर्गीकरण—वर्गीकरण युक्तियुक्त आधार पर किया जाना चाहिए और प्रभेद के आधार का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्क संगत सम्बन्ध होना चाहिए—एक ही वर्ग (अर्थात् निम्न श्रेणी लिपिकों) के बीच भी वर्गीकरण किया जा सकता है—ऐसा वर्गीकरण विधिमान्य होगा। (न्या० मैथ्यू)

संविधान—अनुच्छेद 16(4)—आर्थिक, शैक्षिक, और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के हितों का अग्रसर किया जाना—अनुच्छेद 16(1), 46 और 335 के बीच परस्पर विरोधी कशमकश में सामंजस्य स्थापित करना इस अनुच्छेद का उद्देश्य है—अनुच्छेद 16(4) द्वारा अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए अनुच्छेद 16(1) का अतिलंघन अनुज्ञात नहीं किया जा सकता। (न्या० बेग)

संविधान—अनुच्छेद 335—पिछड़े हुए वर्गों के कर्मचारियों को दक्षता विषयक परीक्षाएं पास करने के लिए अन्य कर्मचारियों की तुलना में अधिक समय दिया जाना—विभागीय परीक्षाओं को पास करने से अभिमुक्त न किया जाना—ऐसी अभिमुक्ति प्रशासन कार्य पटुता बनाए रखने के लिए अनुकूल है—अभिमुक्ति अनुज्ञेय है। (न्या० बेग)

संविधान—अनुच्छेद 16(1), 46 और 335—प्रशासनिक कार्यपटुता बनाए रखना और हरिजनों के दावों को मान्यता देना—परीक्षा सम्बन्धी अर्हता के मुल्तवी किए जाने से समता का उल्लंघन नहीं होता—घोर पिछड़ेपन, सामाजिक विषमता तथा सामाजिक परिस्थितियों और पद को ध्यान में रखते हुए हल्का विभेद अनुज्ञेय है। (न्या० कृष्ण अय्यर)

1975(9) eILR(PAT) SC 1

संविधान--अनुच्छेद 16(1) और 46--जहां संविधान के एक भाग का विस्तार और प्रविषय स्पष्ट हो वहां उसकी अनुरूपता दूसरे भाग के साथ साबित करने के लिए उसका न्यूनन या विस्तार या संशोधन नहीं किया जाना चाहिए।

संविधान--अनुच्छेद 46 या 335 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध के कारण अवसर समता का त्याग नहीं किया जा सकता—अनुच्छेद 46, अनुच्छेद 16(1) के उपबन्धों का विशेषक नहीं है—लिपिकीय वर्ग के सदस्यों के प्रति असमान पक्षपात करने से अनुच्छेद 46 के उपबन्धों का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। (न्या० गुप्ता)

संविधान--अनुच्छेद 16(1) और (2)--राज्याधीन नौकरी के विषय में अवसर समता--इस अनुच्छेद में पूर्ण समता की अपेक्षा नहीं की गई है—अवसर समता की गारण्टी की गई है--निम्न श्रेणी लिपिकों का दो प्रवर्गों में वर्गीकरण इस अनुच्छेद के उद्देश्य से सुसंगत नहीं है—मूलवंश और जाति के आधार पर किया गया वर्गीकरण अनुच्छेद 16(2) के अधीन निषिद्ध है—वर्गीकरण युक्तियुक्त नहीं है—नियम 13-एए अविधिमान्य है। (न्या० गुप्ता)

संविधान--भाग 3 और 4--अर्थान्वयन--ये दोनों भाग एक दूसरे के पूरक हैं—निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों का अर्थान्वयन एक दूसरे से सामंजस्य करके किया जाना चाहिए। (न्या० फ़ज़ल अली)

केरल स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज रूल्स, 1958—नियम 13-एए--अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए विभागीय परीक्षा पास करने के समय में वृद्धि किए जाने से सम्बन्धित वर्गीकरण किसी भी प्रकार से युक्तियुक्त या मनमाना नहीं है--नियम 13-एए विधिमान्य उपबन्ध है—यह नियम अनुच्छेद 16(1) के अधीन पूरी तरह से न्यायोचित है। (न्या० फ़ज़ल अली)

केरल स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज रूल्स, 1958 में निचली श्रेणी के राज्य कर्मचारियों की सेवा की शर्तें विनियमित हैं। यह मामला रजिस्ट्रीकरण विभाग में निम्न श्रेणी लिपिकों के उच्च श्रेणी लिपिकों के

1975(9) eILR(PAT) SC 1

पदों पर प्रोन्नति के लिए विहित अर्हताओं से संबंधित है। नियम 13 में प्रोन्नति सम्बन्धी पात्रता के लिए कुछ परीक्षाओं के पास करने पर जोर दिया गया है। जब परीक्षाएं नई-नई शुरू की गई थीं, तब नियम 13-ए में उक्त नियम के शुरू होने के पश्चात् हरिजन और गैर-हरिजन सभी के लिए परीक्षा पास करने की अवधि दो वर्ष रखी गई थी, किन्तु पूर्ववर्तियों के लिए दो वर्ष की अनुग्रह कालावधि और दी गई। नियम 13-बी में हरिजनों को इन परीक्षाओं को पास करने से पूर्ण रूप से छूट दे दी गई। नियम 13-एए जिस पर संविधान के अनुच्छेद 16(1) और (2) के उल्लंघन के कारण आक्षेप किया गया है, 13 जनवरी, 1972 को प्रख्यापित किया गया था।

नियमों के नियम 13-एए का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि उसके द्वारा सरकार को अधीनस्थ सेवाओं के हरिजन पदधारियों को प्रोन्नति वाले पदों पर बने रहने के लिए विहित परीक्षाओं को पास करने लिए समय बढ़ाने की शक्ति दी गई है। किन्तु उक्त नियम द्वारा इन व्यक्तियों को हमेशा के लिए छूट नहीं दी गई है किन्तु अनुमानतः थोड़े समय के लिए अभिमुक्ति दी गई है। उक्त नियम द्वारा आधारभूत प्रशासनिक दक्षता की दृष्टि से इन पदों के लिए आवश्यक अभिनिर्धारित की गई न्यूनतम अर्हता में कमी नहीं की गई है। कतिपय नई परीक्षाओं को पास करने की आनुषंगिक आवश्यकता है जिसके लिए सभी कर्मचारियों को कुछ कालावधि दी जाती है। उनकी प्रोन्नति किए जाने के समय, हरिजन कर्मचारियों के मामले में नियम 13-ए के अधीन अधिक लम्बी कालावधि के लिए छूट दी गई है और नियम 13-एए के अधीन और भी अधिक छूट दी गई है। यह आशा की गई है कि सरकार परीक्षाओं को पास करने के लिए दीर्घतर अनुग्रह समय नियत करते समय प्रशासनिक दक्षता का ध्यान रखेगी। प्रशासनिक दक्षता को पूर्ण रूप से नजर-अंदाज नहीं किया जा सकता और हरिजन कल्याण के नाम पर सरकार की गतिविधियों को रोका नहीं जा सकता। प्रशासन सुशासन के लिए होता है न कि हरिजनों को नौकरी देने के लिए।

नियम 13-ए पर इतने वर्षों से आक्षेप नहीं किया गया—सभी व्यक्तियों के लिए अर्हता की कालावधि दो वर्ष थी और हरिजन के लिए चार वर्ष थी। साथ ही उन व्यक्तियों को, जो पचास वर्ष से

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अधिक की आयु के थे, इन परीक्षाओं को पास करना आवश्यक नहीं था। परीक्षा की प्रकृति की तुलना में उच्च श्रेणी लिपिकों के कार्य की तुलना और शासकीय सामर्थ्य के बारे में उनकी अपरिहार्यता रिट पिटीशन में सुस्पष्ट नहीं की गई है और इन गंभीर बातों के अभाव में हमें यह अनुमान करना होगा कि सरकार नियम 13 को बनाने वाले के तौर पर छूट के लिए विभिन्न कालावधियों को उनकी वांछनीयता के कारण ही मंजूर कर सकती थी न कि पूर्वोदाहरण की जरूरत के कारण। थोड़ा और विस्तार से कहें तो किसी पद की पात्रता के लिए आधारभूत अर्हताओं को नियत करना प्रायिक नहीं है। पद के कृत्यों को ध्यान में रखते हुए उन अर्हताओं का होना अनिवार्य है। दूसरी ओर द्वितीय कोटि की अर्हता पर कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए उपयोगी के तौर पर जोर दिया जाता है, जैसे लेखा (हिसाब-किताब) परीक्षा या सिविल और दण्ड न्याय से सम्बन्धित परीक्षा और इसी प्रकार की अन्य परीक्षाएं जो इस बात पर निर्भर करती है कि कोई व्यक्ति किस विभाग में काम करेगा। इस मामले में वह लिपिक वर्ग का व्यक्ति है न कि मजिस्ट्रेट, लेखा-अधिकारी, वन अधिकारी, उप-रजिस्ट्रार, अन्तरिक्ष वैज्ञानिक या उच्च प्रशासक या ऐसा व्यक्ति जिसकी पहल करने पर विभाग की गतिविधि तेज या धीमी होती है। ऐसा होने पर भी इन बातों से उसका लिपिकीय कार्य और अधिक विवेकयुक्त और दक्ष बन जाता है। अतः और अच्छी तरह से कार्य करने के लिए न कि आधारभूत प्रवीणता के लिए ये बातें जरूरी हैं। किन्तु उपयुक्त मामलों में छूट मंजूर की जाती है क्योंकि उनके अभाव में दक्षता पर बहुत अधिक असर नहीं पड़ता है। तीसरी श्रेणी के गुण वे हैं जो किसी कर्मचारी को अत्यधिक दक्ष बनाते हैं किन्तु जो आधारभूत नहीं माने जाते हैं और वे अधिमान के तौर पर सूचीबद्ध किए जाते हैं। कारबार-प्रबन्ध में डॉक्टर की डिग्री या विधि में मास्टर की डिग्री जहां आधारभूत डिग्री सामाजिक सेवा या नेतृत्व के प्रशिक्षण या खेलकूद में प्रवीणता या बहुत सी अन्य अतिरिक्त उपलब्धियों के लिए अपेक्षित हो जिससे उस अधिकारी की रुझान और उसके साधन में वृद्धि हो, किन्तु जो किसी भी अर्थ में आवश्यक न हों। ये अतिरिक्त बातें स्वागत योग्य हैं और अच्छी हैं और इनसे किसी कर्मचारी के वेतन में वृद्धि की जा सकती है किन्तु इनके सम्बन्ध में न तो सीधी भर्ती या न ही प्रोन्नत व्यक्तियों

1975(9) eILR(PAT) SC 1

के मामले में ही किसी पद पर नियुक्ति के लिए जोर दिया जाता है। अर्हताओं के इन प्रकारों से कोई भी नियोजक प्रभावित होता है और यह बात वह हर व्यक्ति जानता है जो समाचारपत्रों में विज्ञापन देता है। आधारभूत अर्हताओं में ढील देना न्यूनतम प्रशासनिक दक्षता से समझौता करना है। थोड़े समय के लिए अतिरिक्त परीक्षा सम्बन्धी अर्हताओं में नरमी बरतना है, किन्तु ऐसा नियन्त्रित किन्तु संगणित खतरे को ध्यान में रख कर किया जाता है और काम करने के लिए आधारभूत मानदण्ड सुनिश्चित होता है। उच्चतर दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन देने का अर्थ लोक सेवक की दक्षता में वृद्धि करना है जिससे अन्ततः विभाग की दक्षता में ही वृद्धि हो जाती है।

प्रत्यर्थी एक निम्न श्रेणी लिपिक है जो कि रजिस्ट्रीकरण विभाग में कार्य कर रहा है। उस विभाग में ज्येष्ठता के आधार पर उच्च श्रेणी लिपिक के पद पर प्रोन्नति के लिए निम्न श्रेणी लिपिकों को—(1) लेखा विषयक परीक्षा (निम्न) (2) केरल रजिस्ट्रीकरण परीक्षा और (3) कार्यालय प्रक्रिया की नियमावलि की परीक्षा पास करनी होती है। प्रत्यर्थी की व्यथा यह है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को दी गई कतिपय रियायतों की दृष्टि से वे प्रत्यर्थी से पूर्व ही प्रोन्नत कर दिए गए थे, यद्यपि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के उन सदस्यों ने, जिन्हें कि प्रोन्नत किया गया था, परीक्षाएं पास नहीं की थीं।

यह स्पष्ट है कि यहां प्रत्यर्थियों ने 'परीक्षाएं' पास कर लीं थीं और उनकी प्रोन्नति हरिजनों के लिए नए नियम के कारण रूक गई थी। व्यक्तियों के तौर पर अपने हरिजन भाइयों की तुलना में उनके अधिकार असमान माने गए हैं। कड़ाई से बढ़ते स्पर्धात्मक संदर्भ में या कार्य-क्षमता पर आधारित मानदण्ड के अनुसार नियम 13-एए हरिजनों और गैर-हरिजनों के बीच विभेद करता है। प्रश्न यह है कि व्यक्तियों की योग्यता के आधार पर नियोजन दिए जाने और दलित वर्ग की आवश्यकता के अनुसार नियोजन दिए जाने के बीच 'अवसर समता' आलोचनात्मक प्रभेद करती है जो दक्षता के व्यापक मानदण्ड के अध्यधीन होता है।

प्रवर्तन सम्बन्धी तकनीक समय और परिस्थिति के अनुसार बदल सकती है। किन्तु उद्देश्य सांविधानिक दृष्टि से अनुज्ञेय होना चाहिए।

1975(9) eILR(PAT) SC 1

प्रस्तुत मामले में राज्य ने हरिजनों के आर्थिक हितों की वृद्धि करने के लिए कुछ कदम उठाए थे। यदि हम नियम को विभिन्न भागों में बांट दें तो—सरकार ने क्या किया ? क्या सरकार ने अनुच्छेद 16(1) या (2) के अधीन अधिकारों का अतिक्रमण किया। यदि सरकार ने ऐसा किया तो न्यायालय राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में अनुज्ञेय उपधारणा करने के पश्चात् और अनुच्छेद 14 और 16 के अधीन आज्ञापक उपबंध में प्रभावी तौर पर समानता की उदार भावना को ध्यान में रखते हुए निरीक्षक की हैसियत से हस्तक्षेप कर सकता है अन्यथा तीर निशाने पर नहीं बैठता है और उद्देश्य पूरा नहीं होता है।

नियम 13-एए के अधीन हरिजनों को दूसरी बार 'छूट' क्यों मंजूर की गई। जिस जटिल परिस्थिति के कारण यह अनुक्रम अपनाने के लिए विवश होना पड़ा, राज्य के अनुसार वह इस वर्ग को मदद पहुंचना था और राज्य सांविधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करते हुए 'परीक्षाओं' को पास करने के लिए जोर दिए जाने को त्यागे बिना निचले पदों पर सामूहिक तौर से पदावनत किए बिना इस वर्ग को मदद करना चाहता था। नियम 13-एए का टिप्पण स्पष्टीकरण के तौर पर है। राज्य को इस क्लेशपूर्ण स्थिति पर चिन्ता थी और उनकी पिछड़ी स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसने नियम 13-एए बनाया जिसके द्वारा राज्य सरकार को यह शक्ति प्राप्त हो गई कि वह इन परीक्षाओं के पास करने के लिए अनुग्रह अवधि और बढ़ा सके। इसके साथ-साथ नियम 13-एए के अधीन एक सरकारी आदेश जारी किया गया जिसके द्वारा परीक्षाओं के पास करने के लिए दो अवसर दिए जाने के लिए कालावधि उपलभ्य की गई। उनके तत्काल पदावनत होने की बात टल गई और गैर-हरिजन रिट पिटीशनरों की जो परीक्षाओं में सफल हो गए, प्रोन्नत होने की संभाव्यताएं स्थगित हो गई। अपने इस दुख के कारण उन्होंने उच्च न्यायालय में समावेदन किया जहां हरिजनों के पक्ष में प्रोन्नति सम्बन्धी पात्रता के लिए परीक्षाओं के पास करने की अस्थायी छूट का नियम, अनुछेद 16(1) और 335 के शक्तिबाह्य अभिनिर्धारित किया गया। अपील मंजूर करते हुए—

अभिनिर्धारित—(मुख्य न्यायाधिपति रे० के मतानुसार)—अनुच्छेद 14, 15 और 16 सांविधानिक गारण्टीकृत अधिकार की शृंखला का एक भाग हैं। ये अधिकार एक-दूसरे के अनुपूरक हैं।

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अनुच्छेद 16, जो कि नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर समता सुनिश्चित करता है, अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की गारण्टी का आनुषंगिक है। अनुच्छेद 16(1) अनुच्छेद 14 को क्रियान्वित करता है। अनुच्छेद 14 और 16(1) दोनों ही ऐसा युक्तियुक्त वर्गीकरण, जिसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों से सम्बन्ध हो, अनुज्ञात करते हैं। अनुच्छेद 16 के अधीन नौकरी या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में कर्मचारियों का युक्तियुक्त वर्गीकरण हो सकता है। (पैरा 21)

विभेद वर्गीकरण का सार होता है। उस दशा में समता का अतिक्रमण होता है जब कि उसका आधार अयुक्तियुक्त हो। समता की धारणा में अन्तर्निहित परिसीमा होती है जो कि सांविधानिक गारण्टी के स्वरूप से ही उत्पन्न होती है। वे व्यक्ति जो समान परिस्थितियों में हों, समान व्यवहार के हकदार होते हैं। समता समान व्यक्तियों के बीच होती है। अतः वर्गीकरण सारवान भेद के आधार पर किया जाता है जो कि एक समूह में रखे गए व्यक्तियों को उस समूह से छूटे हुए व्यक्तियों से प्रभेदित करता हो और ऐसे विभेदपूर्ण व्यवहार का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से न्यायपूर्ण और तर्कसंगत सम्बन्ध होना चाहिए। (पैरा 24)

अधिक्षेपित नियम और आदेश निम्न श्रेणी लिपिकों से उच्च श्रेणी लिपिकों के पद पर प्रोन्नति के सम्बन्ध में है। प्रोन्नति सभी मामलों में दो वर्ष के भीतर परीक्षा पास करने पर निर्भर करती है और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के सदस्यों को अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक लम्बी अवधि अर्थात् चार वर्ष के लिए छूट प्रदान की गई है। यदि उस प्रयोजन के अनुरूप तर्कसंगत वर्गीकरण है जिसके लिए ऐसा वर्गीकरण किया गया है तो समता का अतिक्रमण नहीं होता है। प्रोन्नति के प्रयोजनार्थ वर्गीकरण के प्रवर्ग केवल इस दलील के आधार पर समाप्त नहीं किए जा सकते हैं कि वे सभी सेवा में एक ही काडर के सदस्य हैं। यदि वर्गीकरण प्रोन्नति के प्रयोजनार्थ शैक्षणिक अर्हताओं के आधार पर किया जाता है या वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि नौकरी में प्रविष्टि की बाबत व्यक्ति समान परिस्थितियों में नहीं रखे गए हैं तो ऐसा वर्गीकरण न्यायोचित हो सकता है। (पैरा 25)

अनुच्छेद 16(1) में सब नागरिकों अवसर को समता की गारण्टी ही दी गई है। अनुच्छेद 16(1) और (2) अनुच्छेद 14 द्वारा गारण्टीकृत विधि के समक्ष समता को और अनुच्छेद 15(1) द्वारा गारण्टीकृत विभेद के प्रतिषेध को क्रियान्वित करते हैं। किसी चयन पद पर प्रोन्नति अनुच्छेद 16(1) और (2) के अन्तर्गत आती है। (पैरा 28)

अनुच्छेद 14 और 16(1) में समता के सिद्धांत का किसी ऐसे नियम से अतिक्रमण नहीं होगा जो प्रशासन की दक्षता की आधारभूत जरूरतों को पूरा करने के पश्चात् सेवाओं में उन व्यक्तियों का समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता हो, जिनका प्रतिनिधित्व नहीं है। (पैरा 37)

समता का सिद्धांत सभी प्रक्रमों पर नियोजन को और सभी पहलुओं की बाबत अर्थात् आरम्भिक भर्ती, प्रोन्नति, सेवोन्मुक्ति, पेंशन और उपदान के संदाय को लागू होता है। प्रोन्नति के बारे में सामान्य सिद्धांत या तो योग्यता एवं ज्येष्ठता या ज्येष्ठता एवं योग्यता होता है। ज्येष्ठता एवं योग्यता से यह अभिप्रेत है कि यदि प्रशासन की दक्षता के लिए अपेक्षित न्यूनतम अनिवार्य योग्यता हो तो ज्येष्ठ व्यक्ति को अधिमान दिया जाएगा, भले ही वह कम योग्य हो। इससे अनुच्छेद 14, 16(1) और 16(2) का अतिक्रमण नहीं होगा। इसी प्रकार ऐसे नियम से जिसमें यह उपबन्ध हो कि यदि अनिवार्य अपेक्षित योग्यता हो तो पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए पिछड़े वर्ग के किसी सदस्य को अधिमान दिया जाएगा, अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 16(1) और 16(2) का अतिक्रमण नहीं होगा। विधिमान्यता की सुसंगत कसौटी यह ज्ञात करना है कि क्या अधिमान का नियम उस पिछड़े समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करता है जिसका प्रतिनिधित्व नहीं है या उससे परे जाता है। (पैरा 38)

अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां पिछड़ेपन की द्योतक हैं। उन्हें अक्षम स्थिति से सुधार की ओर लाना हमारे संविधान का लक्ष्य है। यदि वर्गीकरण अनुच्छेद 14 के अधीन अनुज्ञेय है तो अनुच्छेद 16 के अधीन भी वह समान रूप से अनुज्ञेय है क्योंकि दोनों ही अनुच्छेदों में समता का सिद्धांत अधिकथित किया गया है। समता

1975(9) eILR(PAT) SC 1

और समता की धारणा यह है कि यदि व्यक्ति समान स्थिति में नहीं हैं तो उन्हें एक जैसा व्यवहार करके समान नहीं बनाया जा सकता है। आक्षेपकृत नियमों और आदेशों के अधीन अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों की प्रोन्नति अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों को प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के उद्देश्य से किए गए वर्गीकरण पर आधृत है। दक्षता को ध्यान में रखा गया है और उस का त्याग नहीं किया गया है। (पैरा 45)

विधियों के समान संरक्षण में अनिवार्य रूप से वर्गीकरण भी आता है। वर्गीकरण की विधिमान्यता का निर्णय विधि के प्रयोजन के प्रति निर्देश से किया जाना चाहिए। इस मामले में वर्गीकरण न्यायोचित है क्योंकि वर्गीकरण का प्रयोजन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को एक परिसीमित विस्तार तक प्रोन्नति द्वारा प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में समर्थ बनाना है। (पैरा 46)

(न्यायाधिपति खन्ना के मतानुसार)—अनुच्छेद 14, 15 और 16 के अन्तर्गत वह महत्त्व अन्तर्निहित है जो हमारे संविधान निर्माताओं ने समान व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए दिया था। राज्याधीन नौकरियों के मामले में ऐसी समता का एक विशेष महत्त्व है। उस क्षेत्र में किसी विभेद को रोकने के उद्देश्य से ही राज्याधीन किसी पद पर रोजगार या नियुक्ति से सम्बन्धित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता की गारण्टी देने के लिए अभिव्यक्त उपबंध किया गया था। (पैरा 54)

संविधान निर्माता उन उक्त असुविधाओं के बारे में जागरूक थे जिनसे पिछड़ा वर्ग ग्रस्त था इसलिए उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 46 में राज्य से यह अपेक्षा की कि वह जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशिष्टतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थसम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा। तथापि पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों के लिए स्थानों का आरक्षण इस प्रकार न किया जाएगा जिससे प्रशासन कार्यपटुता में कमी हो। अनुच्छेद 335 की दृष्टि से सेवा की कार्यपटुता को बनाए रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम शैक्षिक अर्हता और अन्य मानकों की अपेक्षा का अधित्यजन करना अनुज्ञेय नहीं है। (पैरा 55)

अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) का इस रूप में अर्थ लगाया गया है कि वह उस अनुच्छेद के खण्ड (1) का परन्तुक या अपवाद हो। न्यायालय ने उन मामलों में अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) के संदर्भ में वर्गीकरण के सिद्धांत को मान्यता दी है जहां नियुक्तियां दो विभिन्न स्रोतों से की गई हैं, अर्थात् गार्ड और स्टेशन मास्टर, प्रोन्नत और सीधे भर्ती किए गए व्यक्ति, डिग्री-धारक और डिप्लोमा-धारक। पिछड़े वर्ग के सदस्यों के लिए जिसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां भी हैं, अधिमानी व्यवहार का उपबंध वह है जो अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) में अन्तर्निहित है जो उनके लिए पदों का आरक्षण अनुज्ञात करता है। अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) की भाषा से ऐसे अधिमानी व्यवहार का अर्थ निकालने की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि उस खण्ड की भाषा से अन्य नागरिक के विरुद्ध किसी नागरिक के प्रति किसी अधिमान की अपेक्षा नहीं है। अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के प्रारम्भिक शब्दों से यह संकेत मिलता है कि यह खण्ड (4) ही के कारण है अन्यथा नागरिकों के किसी पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों का आरक्षण करना अनुज्ञेय नहीं होता। (पैरा 56-57)

ऐसी विभागीय परीक्षाएं पास करने से जिन्हें प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित किया गया है, कर्मचारियों की किसी श्रेणी को दी गई छूट भले ही वह सीमित अवधि के लिए हो, सेवा की कार्यपटुता सुनिश्चित करने के उद्देश्य के लिए स्पष्ट रूप से हानिकर होगी। इस बाबत विवाद नहीं किया जा सकता कि विभागीय परीक्षाएं विभिन्न कर्मचारियों की कार्यपटुता आंकने और सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विहित की जाती हैं। कर्मचारियों को प्रोन्नत करना, यद्यपि उन्होंने ऐसी कार्यपटुता विषयक परीक्षा पास न की हो, शायद ही प्रशासन में कार्यपटुता सुनिश्चित करने की आवश्यकता से संगत हो सकता है। (पैरा 58)

विभागीय परीक्षाएं पास करने से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को दी गई छूट आत्यंतिक नहीं है अपितु एक सीमित अवधि के लिए ही है। सांविधानिक रूप से विधिमान्य होने के लिए सीमित अवधि के लिए छूट कर्मचारियों के एक वर्ग को नहीं दी जा सकती और यह छूट दूसरों को देने से नहीं रोकी जा सकती। (पैरा 59)

1975(9) eILR(PAT) SC 1

ऐसे व्यक्तियों से, जिनकी विभिन्न स्रोतों से भर्ती नहीं की गई है और ऐसी दशा में जो अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अन्तर्गत नहीं आते हैं, अधिमानी व्यवहार करने के प्रयोजन के लिए वर्गीकरण के अस्वीकार करने का प्रभाव अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) में सन्निविष्ट अवसर समता के सिद्धांत को यदि पूर्णतया समाप्त करना नहीं तो कम करना अवश्य होगा। (पैरा 60)

उन आधारों से परे जिन्हें अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) के अधीन अब तक मान्यता प्रदान की गई है, वर्गीकरण के मामले का विस्तार करने का परिणाम यह होगा कि लोक नियोजन के लिए पक्षपाती और अधिमानी व्यवहार के लिए वर्ग पैदा होंगे और इस प्रकार इससे राज्याधीन नियोजन से सम्बन्धित मामलों में सभी नागरिकों की अवसर की समता के संविचार का हनन होगा। (पैरा 62)

51 व्यक्तियों में से 34 व्यक्तियों को प्रोन्नत करना, यद्यपि उन्होंने विभागीय परीक्षाएं पास नहीं की हैं, और इसी दौरान ऐसे कर्मचारियों को प्रोन्नत न करना जिन्होंने विभागीय परीक्षाएं पास कर ली हैं, मुश्किल से ही प्रशासन कार्यपटुता के लिए साधक हो सकता है। अतः उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष में कोई कमी प्रतीत नहीं होती कि आक्षेपित प्रोन्नतियों से संविधान के अनुच्छेद 335 का भी अतिक्रमण होता है। (पैरा 70)

राज्य को अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन पिछड़े हुए वर्गों के हितों की रक्षा करने के लिए उपबंध बनाने की पर्याप्त शक्ति है, जो ऐसे पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के लिए नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का उल्लेख करता है जिन का प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवा में पर्याप्त नहीं है। अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन राज्य की निष्क्रियता के कारण अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) का अस्वाभाविक अर्थान्वयन न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा करने के लिए अपने काल्पनिक उत्साह के विरुद्ध भी जागरूक रहना है जिससे कि हमारी दृष्टि विचलित न हो जाए और हमारे निर्णय पर हावी न हो जाए जिससे हम अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) की अन्तर्वस्तु के सार से विचलित हो जाएं और उस खण्ड में अन्तर्निहित लोक नियोजन

1975(9) eILR(PAT) SC 1

के मामले में अवसर की समता के सिद्धांत से इस प्रकार हट जाएं जिससे कि यह मात्र पवित्र इच्छा और दुःसाध्य भ्रम बन जाए। (पैरा 71)

(न्यायाधिपति मैथ्यू के मतानुसार)—यद्यपि अवसर समता का पूर्ण अस्तित्व इस संसार में असंभव है, तो भी प्रतिकरात्मक स्वरूप के अध्युपायों को, जो कि अवसर समता को सुनिश्चित करने के लिए पार की जाने योग्य बाधाओं को कम करने के लिए परिकल्पित है, हानि पहुंचाने की दृष्टि से अनुच्छेद 16(1) लागू नहीं हो सकता है। (पैरा 82)

उन व्यक्तियों को, जो कि धन, शिक्षा और सामाजिक वातावरण की दृष्टि से वस्तुतः असमान हैं, विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में समान बनाने के लिए प्रतिकरात्मक राज्य कार्रवाई का विचार संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सुप्रीम कोर्ट द्वारा विकसित किया गया था। रूसो ने कहा है कि "ठीक इसलिए कि परिस्थितियों के बल की प्रवृत्ति समता को नष्ट करने की होती है, विधान के बल की प्रवृत्ति सदैव उसे बनाए रखने की होनी चाहिए। इसके लिए कोई कारण नहीं है कि न्यायालय को राज्य से यह अपेक्षा क्यों नहीं करनी चाहिए कि वह आनुपातिक समता का स्तर अपना ले जिसमें कि नागरिकों के किसी वर्ग की भिन्न-भिन्न दशाओं और परिस्थितियों को, जब कभी ऐसी दशाएं और परिस्थितियां आधारभूत अधिकारों या दावों के उपभोग तक उनकी समान पहुंच के मार्ग में रुकावट डालती हैं, ध्यान में रखा जाता है। यदि आरंभिक प्रक्रम पर या प्रोन्नति के प्रक्रम पर या दोनों पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए नियोजन के मामले में अवसर समता सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण करना आवश्यक है तो इसके लिए कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह बात अनुच्छेद 16(1) के अधीन अनुज्ञेय क्यों नहीं है क्योंकि केवल यही उपबन्ध उस परिणाम को प्राप्त करने में जो कि अवसर समता से उत्पन्न होगा, उन्हें उन्नत समुदायों के बराबर बना सकता है। इस बात का अनुमान कि क्या अवसर समता है, परिणाम में प्राप्त होने वाली समता से ही लगाया जा सकता है। औपचारिक अवसर समता केवल अधिक शिक्षा और ज्ञान वाले व्यक्तियों को ही सभी पद हासिल कर लेने और शिक्षा तथा बुद्धि में कम भाग्यवान व्यक्तियों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ बनाएगी भले ही प्रतियोगिता निष्पक्ष हो। परिणाम की समता अवसर समता की कसौटी है। (पैरा 93, 98, 100)

राज्य कोई भी ऐसा अध्युपाय अपना सकता है जो कि लोक सेवा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करे और अवसर समता सुनिश्चित करने के लिए प्रतिकरात्मक अध्युपाय के रूप में उसे न्यायोचित ठहरा सकता है बशर्ते कि उस अध्युपाय में प्रशासन की दक्षता के लिए अनिवार्य न्यूनतम आधारभूत अर्हता के अर्जन से अभिमुक्ति न दे दी गई हो। (पैरा 104)

अनुच्छेद 16(1) सभी क्षेत्रों में समता सुनिश्चित करने की व्यापक स्कीम का एक भाग मात्र है। यह अनुच्छेद 14 और 15 में समाविष्ट विधि के अधीन समता की वृहत्तर धारणा को लागू करने का एक दृष्टान्त है। (पैरा 106)

कोई वर्गीकरण उस दशा में युक्तियुक्त होता है जब कि उसमें वे सब व्यक्ति सम्मिलित हों जो विधि के प्रयोजन की बाबत समान स्थिति में हों। दूसरे शब्दों में वर्गीकरण किसी युक्तियुक्त आधार पर किया जाना चाहिए जो कि उन व्यक्तियों को, जिन्हें एक समूह में रखा गया है, प्रभेदित करे और प्रभेद के आधार का नियमों द्वारा या प्रश्नगत नियमों द्वारा भी प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्कसंगत सम्बन्ध होना चाहिए। निगम्य रूप से यह धारणा करना भूल है कि एक ही वर्ग के भीतर अर्थात निम्न श्रेणी लिपिकों के बीच वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। यदि ऐसा बोधगम्य भेद है जो उस वर्ग के एक समूह को शेष समूहों से पृथक् करता है और उस भेद का वर्गीकरण के उद्देश्य के साथ सम्बन्ध है तो उस वर्ग के भीतर ही और अधिक वर्गीकरण के बारे में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। निस्संदेह यह विरोधाभास है कि यद्यपि एक अर्थ में वर्गीकरण से असमता हो जाती है, उस दशा में यह समता का सम्प्रवर्तन करता है जब कि उसका उद्देश्य एक वर्ग के अधीन उन व्यक्तियों के साथ पर्याप्त और न्यायपूर्ण कारणों से भेदपूर्ण व्यवहार करना है जिनकी विशेषताएं एक जैसी ही हैं। (पैरा 108)

अनुच्छेद 16(1) और अनुच्छेद 16(2) नियुक्ति या प्रोन्नति के लिए युक्तियुक्त अर्हता विहित किए जाने का प्रतिषेध नहीं करते हैं। किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति के लिए उचित रूप से नियत की गई किसी अर्हता के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध जो सब लोगों को लागू होता

हो, अनुच्छेद 16(1) के अधीन अवसर समता के सिद्धांत के अनुरूप होगा। (पैरा 109)

नियम 13-एए में उच्चतर प्रवर्ग या वर्ग में प्रोन्नति के लिए अपेक्षित न्यूनतम अर्हता से अभिमुक्ति प्रदान करने के विचार से अधिनियमित नहीं किया गया है, अपितु केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को वह अर्हता अर्जित करने में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त समय देने के विचार से अधिनियमित किया गया है। नियम 13-एए में किए गए वर्गीकरण का अर्थात् अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को एक वर्ग में रखने और नियम 13 और नियम 13-ए द्वारा परीक्षा सम्बन्धी अर्हता अर्जित करने के लिए उनके लिए समय बढ़ाने का प्रयोजन परीक्षा के पास करने में निहित दक्षता का त्याग किए बिना उच्चतर प्रवर्ग में अपने प्रतिनिधित्व का सम्यक् दावा करने में उन्हें समर्थ बनाना है। कुछ परीक्षाओं को पास करना दक्षता की न्यूनतम आधारभूत अपेक्षा के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं रखता, यह बात नियम 13-ए से स्पष्ट है। किसी भी दशा में उस नियम में परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने से दो वर्ष के भीतर सब कर्मचारियों द्वारा परीक्षा का उत्तीर्ण किया जाना अनुध्यात है जिससे यह दर्शित होता है कि परीक्षा सम्बन्धी अर्हता का अर्जन पदों को धारण करने के लिए अनिवार्य नहीं था। नियम 13(बी) से भी जिसमें परीक्षा पास करने से छूट प्रदान की गई है, यह दर्शित होगा कि परीक्षा का पास किया जाना, पद धारण करने के लिए पूर्ण रूप से अनिवार्य नहीं है। नियम 13-एए में किए गए वर्गीकरण का विधि के प्रयोजन से अर्थात् अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को, प्रशासन की दक्षता का ह्रास किए बिना सेवा की उच्चतर श्रेणी में प्रोन्नति का अपना सम्यक् हिस्सा प्राप्त करने में समर्थ बनाने से तर्कपूर्ण सम्बन्ध है। नियम 13-एए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को परीक्षा पास करने से स्थायी छूट देने के लिए आशयित नहीं है अपितु ऐसा करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए केवल उचित समय देता है। किसी अन्य शक्ति की तरह नियम के अधीन छूट प्रदान करने की शक्ति का भी दुरुपयोग किया जा सकता है। यदि शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के साथ उस सीमा तक पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया

1975(9) eILR(PAT) SC 1

जाता है जिसका कि उनके विधिसम्मत् दावों द्वारा समर्थन नहीं होता है तो न्यायालय निस्सहाय नहीं है। (पैरा 113)

(न्यायाधिपति बेग के मतानुसार)—यदि आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 16(4) में अन्तर्निहित एकमात्र अपवाद के भीतर आते हैं तो वे अनुच्छेद 16(1) की निश्चित आज्ञा के आवश्यक परिणामों से भी बच सकते हैं। संरक्षण की सीमाओं का इस क्षेत्र में अवसर समता के सिद्धांत के प्रवर्तन के विरुद्ध अनुच्छेद 16(4) द्वारा अभिव्यक्त सांविधानिक प्राधिकार से परे विस्तार करना खतरनाक होगा। अनुच्छेद 16(1) का संरक्षण सेवा की पूर्ण अवधि तक बना रहता है। (पैरा 117, 119)

अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(1) की ऐसी शर्तों में, जिनके अधीन अभ्यर्थी सरकारी सेवा में पदों के लिए वास्तव में प्रतिस्पर्धा करते हैं, समता के रूप में परिकल्पित न्याय की गतिशील शक्तियों को दर्शित करता है और अनुच्छेद 46 और 335 की, जिनमें राज्य के ये कर्त्तव्य समाविष्ट हैं कि वह आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के हितों को ऐसे अग्रसर करेगा ताकि उन्हें सामाजिक अन्याय के चंगुल से मुक्त किया जा सके, परस्पर विरोधी कशमकश में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अन्तःस्थापित किया गया था। अनुच्छेद 16(1) के क्षेत्र में ये अतिलंघन केवल उस विस्तार तक ही अनुज्ञात किए जा सकते हैं जिस तक वे अनुच्छेद 16(4) द्वारा अपेक्षित हैं। (पैरा 120)

संविधान के अनुच्छेद 335 के उपबंधों की दृष्टि से अनुसूचित जातियों के कर्मचारियों को, पिछड़े हुए वर्ग के रूप में भी विभागीय परीक्षाएं पास करने से अभिमुक्त नहीं किया जा सकता। इस मामले में जो कुछ हुआ है, वह यह है कि पिछड़े हुए वर्ग के कर्मचारियों को दक्षता विषयक परीक्षाएं पास करने के लिए और ऐसी परीक्षाओं द्वारा यथा अवधारित अपनी योग्यता साबित करने के लिए अधिक समय दिया गया है। (पैरा 121)

यदि आक्षेपित नियमों और आदेशों पर प्रतिबंधक या आंशिक या सशर्त आरक्षण की नीति के कार्यान्वयन के रूप में दृष्टिपात किया जा सकता था जो अनुच्छेद 335 के अनुरूप पर्याप्त समता की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते हैं और व्यापक दृष्टि से देखने पर संविधान के

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अनुच्छेद 46 में अन्तर्विष्ट समता और न्याय की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते हैं तो वे संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अधीन भी न्यायोचित हो सकते हैं। (पैरा 125)

(न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर के मतानुसार)——छोटा सा प्रबुद्ध वर्ग जो सब फायदा हड़प लेता है और अंधकार में रहने वाला वर्ग जो इन सामाजिक रियायतों के बारे में कुछ भी नहीं जानता, उसके लिए अनुच्छेद 46 और 335 भव्य कल्पना बने रहते हैं और समृद्धि का फायदा "ऊंचे" हरिजनों को मिलता है। निम्न श्रेणी लिपिक सम्भवतः समुदाय के निम्नतम स्तर से आएंगे और थोड़े समय के लिए इस कोटि के लिए परीक्षा की अर्हता में छूट देने से इनकी प्रोन्नति की संभावनाओं में वृद्धि होगी। सोपानात्मक ढांचे में समानता लाने के लिए कई तरीकों का प्रयोग करना होगा और संभवतः नियम 13-एए उनमें से एक है। (पैरा 151)

इस कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक प्रत्येक कदम हरिजनों के लिए वास्तविक और समान होना चाहिए और इसमें उनकी हिस्सेदारी से ही सामाजिक न्याय में वृद्धि हो सकती है न कि महान अधिकारों को भाग 3 में और अच्छे ध्येयों को भाग 4 में समाविष्ट करने से। अन्यथा अनुच्छेद 46 और 335 के साथ पठित अनुच्छेद 14 से 16 को पढ़ने पर उनमें की गई विधिवत् प्रतिज्ञा चिढ़ाने वाला धोखा या अवास्तविक वचन मात्र रह जाएगा। इन उपबंधों के बारे में स्पष्ट दृष्टि के लिए भारतीय आध्यात्मिक धर्मनिरपेक्ष विचार को गहराई से समझने की अपेक्षा है जो यह है कि दैवी तत्त्व सभी में है और प्राचीन काल में जो वातावरण दूषित हुआ है और सामाजिक स्थिति सम्बन्धी व्यवस्था की गई है, उसे दूर करना राज्य का कर्त्तव्य है और जो वर्तमान समय में मिटा दिया गया है। मानव क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन का कारण है जिसे कहने के मधुर ढंग के अनुसार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के तौर पर वर्णित किया गया है। हमारी सांविधानिक विचारधारा की जड़ या कम से कम सामाजिक विचारधारा में से कुछ की जड़ें हमारी प्राचीन संस्कृति में पाई जाती हैं। उपनिषद् में सांस्कृतिक शक्ति को सामूहिक रूप से अर्जित करने के लिए यह उत्तम आदेश "सहवीर्य करवा वहै" अन्तर्विष्ट है और यह "समानता" से विकसित

हुआ है। यदि हम हमारी उत्तम विरासत के प्रति सूक्ष्म सार के प्रति सच्चे हैं तो हमें इसका पालन करना चाहिए। (पैरा 152)

प्रस्तुत मामले से बहुत अधिक सुसंगत कुछ स्पष्ट निष्कर्ष निकालते हैं—(1) स्वयं संविधान हरिजनों को अन्य व्यक्तियों से अलग करता है। (2) यह बात समुदाय के इस निम्नतम वर्ग के अत्यधिक पिछड़ेपन पर आधारित है। (3) यह अन्तर राज्य के अधीन पदों पर नियुक्तियों के क्षेत्र को विनिर्दिष्ट रूप से इसके अन्तर्गत लाने के लिए किया गया है। (4) दोनों उद्देश्यों को एक में मिलाया गया है और वह यह है कि ऐसे पदों पर हरिजनों के दावों पर और प्रशासनिक कार्यपटुता बनाए रखने पर विचार किया जाए। (5) राज्य पर यह बाध्यता डाली गई है कि वह हरिजनों और उन्हीं के समान पिछड़े हुए वर्गों के आर्थिक हितों की वृद्धि करे। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 46 और 335 आधारभूत हैं और अनुच्छेद 14 से 16 उनकी मदद करने के लिए हैं। (पैरा 157)

इस मामले में कोई मुकदमा उलटा नहीं जा रहा है क्योंकि किसी मुकदमें में भी यह नहीं कहा गया है कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां जाति हैं। न यह कि प्रशासनिक कार्यपटुता को बनाए रखते हुए पिछड़े हुए वर्गों की स्थिति में सुधार करना ऐसा युक्तियुक्त उद्देश्य नहीं है जो किसी वर्ग के बहुत अधिक पिछड़ेपन से बोधगम्य अन्तर के तौर पर शासकीय काडर के अन्तर्गत जोड़ा जा सके। (पैरा 160-ख)

अनुच्छेद 16(1) और (2) का निर्वचन करते समय अनुच्छेद 46 को विशेष रूप से सार्थक अभिव्यक्ति देनी होगी। निस्संदेह अनुच्छेद 335 अधिक विशिष्ट है और अनुच्छेद 16(1) और (2) की तुलना में प्रवर्तनशीलता के क्षेत्र में अक्खड़पन से उसके महत्त्व को कम किए बिना उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती या उसे बिगाड़ा नहीं जा सकता। (पैरा 160-घ)

केवल पढ़ने मात्र से अनुच्छेद 341 और 342 में यह अत्यावश्यक तत्त्व स्पष्ट हो जाते हैं कि हिन्दू धर्म में जातियां नहीं हैं किन्तु जातियों, मूलवंश, समूह, जनजाति समुदायों या उनके भागों का सम्मिश्रण हैं जो खोज करने पर निम्नतम स्थिति में पाए जाते हैं और जिन्हें बड़े पैमाने पर राजकीय सहायता की आवश्यकता है और राष्ट्रपति ने उन्हें इस प्रकार अधिसूचित किया है। समाज के सबसे पिछड़े हुए वर्ग के समुदाय

को जातियों के रूप में भ्रमपूर्ण समझना सांविधानिक गलती है जो संक्षेप नाम से दिग्भ्रमित होने के समान है। इसलिए हरिजनों का संरक्षण करना किसी जाति के प्रतिकल नहीं है किन्तु नागरिकों में पूर्ण एकता की भावना में वृद्धि करना है। अनुच्छेद 16(2) इस विचारधारा से परे है और जातियों, मूलवंशों, समूहों, समुदायों और गरजाति वालों के मिश्रित समूह के प्रति संरक्षात्मक विभेद का विस्तार करना हिन्दू धर्म के चार वर्णों से परे है और ऐसा करना उप अनुच्छेद में सन्निविष्ट जातिहीनत्व की भावना में वृद्धि करने से समझौता करना नहीं है। भारतीय न्यायशास्त्र में प्रभेद करने की समझ के कारण अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को साधारणतया जाति नहीं माना गया है किन्तु एक बड़ा पिछड़ा समूह माना गया है जिसके प्रति समाज द्वारा दया किया जाना उचित है। (पैरा 160-ङ)

यह सच है कि ऊपरी तौर पर ऐसा कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 16(4) अपवाद है, किन्तु बारीकी से परीक्षा करने पर सांविधानिक रूप से मान्य किए गए वर्गीकरण का एक उदाहरण है। यह जरूरी नहीं है कि अनुच्छेद 16(1) व्यावृत्ति खण्ड हो किन्तु बातों को संदेह की संभावना से परे बनाने की प्रारूपकार की अतिचिन्ता के कारण अनुच्छेद 16(4) रखा गया है। (पैरा 160-छ)

पिछड़े हुए और गैर पिछड़े हुए वर्ग पर आधारित "आरक्षण" जो प्रशासनिक मानदण्ड के लिए हानिकर न हो जैसा इस न्यायालय ने बार-बार कहा है, वास्तव में समता के सिद्धांत को युक्तियुक्त अन्तर पर आधारित वर्ग और समूह के भीतर लागू करना ही है जिसका उद्देश्य कार्यपटुता बनाए रखते हुए पिछड़े हुए वर्गों की अभिवृद्धि करना है। अनुच्छेद 16(1) और (4) एक सदृश्य ही हैं। अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(1) का अपवाद है। क्या घोर पिछड़ेपन पर आधारित वर्गीकरण से अनुच्छेद 16(4) अनावश्यक हो जाता है? नहीं। आरक्षण से उस सीमा तक एकाधिकार प्रदत्त किया जाता है। किन्तु अनुच्छेद 16(1) के अधीन मंजूर किए गए वर्गीकरण सामान्य तौर पर कम लाभ के होते हैं। पूर्ववर्ती अधिक कठोर होते हैं और पश्चात्वर्ती अधिक नमनीय होते हैं। यद्यपि कभी-कभी वे एक दूसरे पर अतिव्याप्त हो सकते हैं। अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत सभी पिछड़े वर्ग आते हैं किन्तु अनुच्छेद 46 पर आधारित अनुच्छेद 16(1) के अधीन समूह में रखने का फायदा प्राप्त करने के

1975(9) eILR(PAT) SC 1

लिए हरिजनों द्वारा सहे जाने वाले अति पिछड़ेपन और प्रशासनिक कार्यपटुता को बनाए रखने के दोनों पहलुओं को पूरा किया जाना चाहिए। (पैरा 161)

यदि थोड़े समय के लिए कुछ व्यक्तियों में न्यूनतम अर्हताएं नहीं है तो प्रशासनिक संकट पैदा हो जाएगा। एक बात निश्चित है कि ये परीक्षाएं दक्षता के लिए बहुत अधिक महत्त्व की नहीं हैं। फिर हम रजिस्ट्रीकरण विभाग में लिपिकों के पदों पर विचार कर रहे हैं जहां दूसरों के लिए मदद स्वरूप लिखना और ऊपरी तौर पर विशेष जानकारी रखने से ही कर्त्तव्य का बहुत अच्छी तरह से पालन किया जा सकता है और सरकार परीक्षा सम्बन्धी अर्हता को केवल मुल्तवी कर रही है, त्याग नहीं रही है क्योंकि परीक्षा सम्बन्धी अर्हता मुल्तवी की गई है न कि त्यागी गई है। जहां तक आधारभूत दक्षता का परीक्षाओं से सम्बन्ध है, प्रत्येक बात मामले की परिस्थिति और पद पर निर्भर करती है। (पैरा 164)

इस तथ्य से कि प्रोन्नति पदों के लिए इस न्यायालय ने बेहतर शिक्षा सम्बन्धी मानदण्डों को उचित ठहराया है, अन्य युक्तियुक्त प्रभेदों की संभावना समाप्त नहीं होती है, विशेष रूप से जिन प्रभेदों का उद्देश्य से सम्बन्ध हो। सही कसौटी यह है कि वर्गीकरण का उद्देश्य क्या है और क्या वह अनुज्ञेय है। इसके अतिरिक्त क्या अन्तर दृढ़ और सारभूत है और अनुमोदित उद्देश्य से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित है। किन्तु केवल उस कारण से ही उससे समता का उल्लंघन नहीं होता है। अनुच्छेद 14 से 16 की आत्मा शाब्दिक समता में नहीं है किन्तु वह जाहिर असमानता के उत्तरोत्तर समाप्त किए जाने से सम्बन्धित है। वास्तव में बहुत अधिक असमान व्यक्तियों को समान मानना स्पष्ट रूप से चालाकीपूर्ण अन्याय है। अवसर समता आशा है न कि दुराशा। (पैरा 166)

यदि अनुच्छेद 14 में युक्तियुक्त वर्गीकरण मान्य किया गया है तो अनुच्छेद 16 (1) में भी यही बात है और इस न्यायालय ने ऐसा अभिनिर्धारित किया है। प्रस्तुत मामले में बहुत कम प्रतिनिधित्व वाले और बहुत अधिक उपेक्षित वर्गों के व्यक्तियों की आर्थिक प्रगति और उनके दावों की वृद्धि, जो अन्यथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के तौर पर वर्णित किए गए हैं, निरन्तर प्रशासनिक दक्षता बनाए रखने

1975(9) eILR(PAT) SC 1

के उद्देश्य से संगत है जिसे अनुच्छेद 46 और 335 द्वारा मंजूरी प्राप्त है और जो अनुच्छेद 16(1) में किए गए उपबन्ध के अनुरूप है। जो अन्तर बहुत अधिक प्रतिरोधात्मक है वह हरिजनों की निराशाजनक सामाजिक स्थिति है। निस्सन्देह इसका ऊपर वर्णित उद्देश्य से युक्तियुक्त सम्बन्ध है। सभी पिछड़ी जातियों को मान्यता नहीं दी गई है। ऐसा करना अनुच्छेद 16 (1) और (2) दोनों को ही नष्ट कर देने के बराबर होगा। सामाजिक विषमता इतनी भयंकर और सारभूत होनी चाहिए जिससे कि उसको हल्के विभेद के लिए आधार बनाया जा सके। यदि हम ऐसे वर्ग की खोज करते हैं तो हमें अन्य जाति का कोई बड़ा खण्ड नहीं मिल सकता जिसे अनुच्छेद 16(1) और 16(2) में छूट दी जा सके। राजनैतिक दबाव और अन्य प्रभावों का प्रयोग करने से असांविधानिक विभेद किए जाने का खतरा उत्पन्न होगा। यदि वर्गीकरण का वास्तविक आधार जाति है जिसे नकाब के तौर पर पिछड़ी जाति कहा जाए तो न्यायालय को इस प्रकार की साम्प्रदायिक चालबाजी को अवैध कर देना चाहिए। द्वितीयतः संविधान द्वारा केवल हरिजनों के दावों को मान्यता दी गई है (अनुच्छेद 335) न कि प्रत्येक पिछड़े हुए वर्ग को। अनुच्छेद 46 की रूपरेखा कमोबेश वैसी ही है। अतः यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि जातिवाद चोर दरवाजे से वापस नहीं आ सकता और आपवादिक रूप से बिरले मामलों के सिवाय हरिजनों के अलावा कोई अन्य वर्ग संविधान द्वारा गारण्टी की गई अवसर समता की चुनौती पार नहीं कर सकता। पूर्ववर्ती कुछ विनिर्णयों में किसी विशिष्ट वर्ष में पचास प्रतिशत की गणित सम्बन्धी सीमा की बाबत बहुत अधिक जोर नहीं दिया जा सकता। किसी विभाग में समग्र प्रतिनिधित्व किसी विशिष्ट वर्ष में भर्ती पर निर्भर नहीं करता है। किन्तु काडर की कुल संख्या पर निर्भर करता है। (पैरा 167)

(न्यायाधिपति गुप्ता के मतानुसार)—न तो अनुच्छेद 46 और अनुच्छेद 335 में अनुच्छेद 16(1) का उल्लेख किया गया है और न ही अनुच्छेद 16(1) में उनमें से किसी के प्रति निर्देश किया गया है। उस संविधान में जिसको हम ने भारत के लोगों ने आत्मार्पित किया है, तीनों अनुच्छेद साथ-साथ विद्यमान हैं और यदि यह कहना सही है कि उनमें से एक को अन्य दो की रोशनी में पढ़ा जाना चाहिए तो यह

सुझाव देना समान रूप से सही है कि उनमें से दो को अन्य की रोशनी में पढ़ा जाना चाहिए। इससे यह अभिप्रेत है कि संविधान जैसे सजीव उपकरण के विभिन्न भागों का अर्थान्वयन सामंजस्य के साथ किया जाना चाहिए, किन्तु यह बात, यह सुझाव देने के बराबर नहीं है कि जहां एक भाग का विस्तार और प्रविषय स्पष्ट है, वहां भी उसकी अनुरूपता दूसरे भाग के साथ सावित करने के लिए उसका न्यूनन किया जाना चाहिए या उसका विस्तार किया जाना चाहिए या उसे संशोधित किया जाना चाहिए। शरीर के प्रत्येक अंग का अपना कार्य होता है और किसी एक का कार्य दूसरे का कार्य बनाने की कोशिश करना अनावश्यक तथा अबुद्धिमत्तापूर्ण दोनों ही हैं। इसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण कार्य-पद्धति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। (पैरा 174)

अनुच्छेद 16 (1) में भी, जो कि राज्याधीन नियुक्तियों के लिए अवसर के विशेष संदर्भ में समता के साधारण नियम को लागू होने का उदाहरण है, इस प्रकार की पूर्ण समता की अपेक्षा नहीं की गई है। जिस बात की गारण्टी की गई है, वह अवसर की समता है न कि इससे अधिक कोई बात। अनुच्छेद 16 (1) या (2) किसी भी नियोजन के लिए या किसी पद पर नियुक्ति किए जाने के लिए चयन के वास्ते युक्तियुक्त नियम विहित करने की बात को प्रतिषिद्ध नहीं करता। नियोजन के लिए या किसी पद पर नियुक्ति के लिए निर्धारित ऐसी अर्हताओं से सम्बन्धित कोई उपबंध, जो कि युक्तियुक्त रूप से निश्चित किया गया हो, और सभी नागरिकों को लागू हो, अवसर समता के सिद्धान्त से निश्चित रूप से संगत होगा; किन्तु नियोजन के सम्बन्ध में, किसी चयन पद पर की जाने वाली प्रोन्नति नियोजन से सम्बन्धित बातों में भी शामिल होती है और किसी चयन वाले पद पर ऐसी प्रोन्नति के सम्बन्ध में अनुच्छेद 16 (1) में जिस बात की गारण्टी दी गई है, वह मात्र ऐसे सभी नागरिकों को अवसर समता है जो कि सेवा में प्रवेश करते हैं (पैरा 178)

न तो अनुच्छेद 46 और न ही अनुच्छेद 335 से अनुच्छेद 16(1) में एक ही वर्ग के सभी कर्मचारियों के लिए अवसर समता पर स्पष्ट शब्दों में जोर दिया गया है, और अनुच्छेद 46 या अनुच्छेद 335 में किसी बात के कारण इस अपेक्षा का त्याग नहीं किया जा सकता, जो कि किसी भी प्रकार से अनुच्छेद 16(1) में दी गई गारण्टी की विशेषक नहीं है। निश्चित रूप से यह अनुच्छेद वर्गीकरण करने की अनुज्ञा देता

है, किन्तु मात्र ऐसे वर्गीकरण की अनुज्ञा देता है जो युक्तियुक्त हो और इस अनुच्छेद के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्तता की कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या प्रस्थापित वर्गीकरण से इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है। इस कसौटी पर कसने के बाद, क्या यह संभव है कि निम्न श्रेणी लिपिकों को ऐसे दो प्रवर्गों में—एक ऐसे लोगों का प्रवर्ग जो कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हों और दूसरा ऐसे लोगों का प्रवर्ग जो कि अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के न हों—उपविभाजन को युक्तियुक्त अभिनिर्धारित किया जाए। ऐसा वर्गीकरण अनुच्छेद के उद्देश्य से सुसंगत नहीं है और इसी कारण से वह युक्तियुक्त नहीं है। (पैरा 179)

अनुच्छेद 16 (1), ऐसा वर्गीकरण अनुज्ञात नहीं करता जैसा कि नियम 13-एए द्वारा किया गया है। वह नियम अनुच्छेद 46 द्वारा उत्प्रेरित हो सकता है जिसके अधीन राज्य से यह अपेक्षित है कि वह लोगों के कमजोर वर्गों और अन्य नागरिकों के बीच शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी अन्तर को कम करने के लिए उपाय करे, किन्तु अनुच्छेद 46, अनुच्छेद 16 (1) के उपबंधों का विशेषक नहीं है। अनुच्छेद 16 (1) में अवसर समता के बारे में, न कि समता प्राप्त करने के अवसर के बारे में उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 16 (1) के संदर्भ में एक ही वर्ग के कर्मचारियों के बीच नियम 13-एए द्वारा सृष्ट उपवर्ग मूलवंश और जाति के आधार पर ही विभेद की कोटि में आता है जो अनुच्छेद 16 के खण्ड (2) द्वारा निषिद्ध है। (पैरा 180)

जनता के बड़े वर्ग की भीषण गरीबी और पिछड़ेपन के कारण राज्यतंत्र इस प्रकार से गतिशील हो जाना चाहिए जिससे कि वह उनकी दशा को और अधिक अच्छा बनाने के लिए अपनी शक्ति के भीतर जो कुछ भी हो, वह करे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लिपिकीय वर्ग के सदस्यों के प्रति असमान पक्षपात करना उस दिशा में कदम नहीं है। (पैरा 181)

(न्यायाधिपति फ़ज़ल अली के मतानुसार)—यह न्यायालय न्यायिक तौर से पूरी तरह से एकमत है कि निदेशक तत्त्वों और मूल अधिकारों का अर्थान्वयन एक दूसरे से सामंजस्य करके किया जाना चाहिए और न्यायालय को ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे कि प्रत्यक्षत: किसी असंगति को दूर किया जा सके। भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्त्व,

समाजवादी राज्य के उच्च भवन पर चढ़ने के सोपान हैं और मूल अधिकार साधन हैं जिनके जरिए से कोई भी व्यक्ति भवन की अन्तिम मंजिल पर पहुंच सकता है। (पैरा 93)

निदेशक तत्त्व आधारभूत बात और संविधान की सामाजिक अन्तरात्मा गठित करते हैं। संविधान राज्य को इस बात के लिए व्यादिष्ट करता है कि वह इन निदेशक तत्त्वों को क्रियान्वित करे। इस प्रकार से निदेशक तत्त्वों में सामाजिक, आर्थिक स्वतन्त्रता की नीति, मार्गदर्शक रेखाएं और उद्देश्यों के बारे में उपबन्ध किया गया है तथा अनुच्छेद 14 और 16 उन उद्देश्यों को प्राप्त करने सम्बन्धी नीति को क्रियान्वित करने के सिद्धान्त हैं, जो कि इन निदेशक तत्त्वों द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित हैं। जहां तक कि न्यायालयों का सम्बन्ध है, वहां तक, जहां तक भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्त्वों तथा भाग 3 में मूल अधिकारों के बीच स्पष्ट असंगति नहीं है, जो कि वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं, वहां ऐसा सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करने में जो कि संविधान के उद्देश्यों का विस्तार करता है, कोई भी कठिनाई नहीं होती है। (पैरा 199)

अनुच्छेद 16 अनुच्छेद 14 का मात्र आनुषंगिक है और ये दोनों ही अनुच्छेद एक ऐसी प्रणाली के भाग हैं, जो एक ही उद्देश्य की पूर्ति करना चाहती है। (पैरा 205)

अनुच्छेद 16 प्रोन्नतियों और चयन पदों सहित, नियुक्तियों के सभी वर्गों को लागू होता है। अनुच्छेद 14 विधिमान्य वर्गीकरण की अनुज्ञा देता है। (पैरा 209)

नियम 13-एए के द्वारा जो बात की गई है वह सरकार को मात्र इसलिए प्राधिकृत करने की बात है कि वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों को नियम 13 और नियम 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाएं पास करने से विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट दे सकेगी। इस बात की ओर ध्यान दिया जा सकता है कि यह नियम पूरी छूट नहीं देता है। ऐसे निम्न श्रेणी लिपिक को, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है, कोई भी परीक्षा पास किए बिना इस प्रकार से प्रोन्नत नहीं किया जा सकता जिससे कि समता की संकल्पना ही नष्ट हो जाए। वह नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग को ऊंचा उठाने, उन्हें बढ़ावा देने तथा समाज के अधिक मजबूत वर्गों के साथ

1975(9) eILR(PAT) SC 1

मुकाबला करने में उन्हें समर्थ बनाने की दृष्टि से उनको विशेष रियायत देता है या नियमों को अस्थायी रूप से शिथिल करता है। इस प्रकार से इस नियम का आधार निस्सन्देह रूप से तर्कसंगत तथा युक्तियुक्त दोनों ही है। (पैरा 213)

नियम 13-एए में दी गई रियायत ऐसे युक्तियुक्त वर्गीकरण की कोटि में आती है जो कि संविधान के अनुच्छेद 16 (1) के अधीन किया जा सकता है, और वह प्रतिकूल विभेद के लिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 का चयन किए जाने की कोटि में ऐसे नहीं आता है, जिससे कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 (1) का अतिक्रमण हो। (पैरा 214)

यह स्पष्ट है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य 'जाति' नहीं है किन्तु पिछड़े हुए नागरिकों के ऐसे विशेष वर्ग हैं जिनके पिछड़ेपन के बारे में कोई भी संदेह नहीं किया जा सकता। अतः इन परिस्थितियों में, यदि प्रोन्नत किए गए व्यक्ति ऐसी जाति के नहीं हैं जिनके बारे में अनुच्छेद 16 (2) द्वारा अनुध्यात है, तो वे अनुच्छेद 16(2) की परिधि के भीतर बिल्कुल ही नहीं आते हैं। इस प्रकार से प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों का मामला अनुच्छेद 16 (1) की परिधि के भीतर स्पष्ट रूप से आ जाता है और उसे युक्तियुक्त वर्गीकरण के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है। (पैरा 215)

अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिपिकों को उनके पिछड़ेपन के कारण परीक्षा पास करने के समय में और वृद्धि की गई थी, उन्हें परीक्षा पास करने से छूट नहीं दी गई थी। ऐसा अनुच्छेद 16 (1) के अधीन किया गया है। अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन ऐसा नहीं किया जा सकता था। अनुच्छेद 16 (4), अनुच्छेद 16 (1) का परन्तुक नहीं है। (पैरा 220)

यदि अग्रनयन नियम को कायम नहीं रखा जाता है तो पिछड़ापन शाश्वत हो जाएगा तथा उसके परिणामस्वरूप रिक्ति उत्पन्न हो जाएगी। उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना गलत था कि राज्य की अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों द्वारा 51 रिक्तियों में से 34 रिक्तियों को भरने की कार्यवाई अवैध थी और उसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। (पैरा 225)

नियमों के नियम 13एए में अन्तर्विष्ट जो शिथिलन मौजूद है, वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की परिधि के भीतर नहीं आता है, किन्तु वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) के भीतर स्पष्ट रूप से आता है। उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना गलत था कि नियम 13-एए अधिकारातीत है और अनुच्छेद 16 का अतिक्रमण करता है क्योंकि उसने यह समझा था कि यह नियम अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की परिधि के भीतर आता है। (पैरा 226)

यह वर्गीकरण किसी भी प्रकार से अयुक्तियुक्त या मनमाना नहीं है। जिन परिस्थितियों के अधीन वर्गीकरण करना पड़ा है, वे इतनी कठिन और कठोर हैं कि समता की संकल्पना के नष्ट होने के सम्बन्ध में जो आशंका व्यक्त की गई है वह भ्रामक प्रतीत होती है। (पैरा 227)

नियमों का नियम 13-एए ऐसा कानूनी विधिमान्य उपबंध है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 (1) के अधीन पूरी तरह से न्यायोचित है और अनुच्छेद 16 (4) की परिधि के भीतर नहीं आता है। (पैरा 229)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1975]	(1975) 1 एस० सी० आर० 26=[1974] 2 उम० नि० प० 952 : **मगनलाल** बनाम **नगर निगम** (Maganlal *Vs*. Municipal Corporation);	160
[1975]	(1975) 3 एस० सी० सी० 76=ए० आई० आर० 1974 ए० सी० 1631=[1974] 2 उम० नि० प० 1720 : **मोहम्मद शुजात अली और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** (Mohammad Shujat Ali and Others *Vs*. The Union of India and Others);	165, 206, 210

[1974] (1974) 1 एस० सी० सी० 717=[1974] 2 उम० नि० प० 1303 :
अहमदाबाद सेण्ट जेवियर कालेज सोसाइटी और एक अन्य बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**
(Ahmedabad St. Xavier's College Society and Another *Vs*. The State of of Gujarat and Another); 88

[1974] ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1300=[1974] 2 उ० नि० प० 152:
गुजरात राज्य और एक अन्य बनाम **श्री अम्बिका मिल्स लिमिटेड, अहमदाबाद**
(The State of Gujarat and Another *Vs*. Shri Ambica Mills Ltd., Ahmedabad); 22

[1974] (1974) 1 एस० सी० आर० 771=[1973] 3 उम० नि० प० 1341: 36,57,158
जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा और अन्य** 108,165,
(The State of Jammu and Kashmir *Vs*. Triloki 178,183,
Nath Khosa and Others); 210, 227

[1973] (1973) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1=(1973) 4 एस० सी० सी० 225=ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1461=[1973] 2 उम० नि० प० 159:
पूज्य श्री केशवानन्द भारती श्रीपदगालवरु और कुछ अन्य बनाम **केरल राज्य और कुछ अन्य**
(His Holiness Kesavananda Bharati Sripadagalvaru and Others *Vs*. The State of 69,89
Kerala and Others); 160-ग,198

[1970] (1970) 2 एस० सी० आर० 600=[1970] 3 उम० नि० प० 779 :
चन्द्र भवन बोर्डिंग एण्ड लॉजिंग, बंगलौर बनाम **मैसूर राज्य और एक अन्य**
(Chandra Bhavan Boarding and Lodging, Bangalore *Vs*. The State of Mysore and Another); 197

[1970] (1970) 1 एस० सी० सी० 377:
गंगा राम बनाम भारत संघ
(Ganga Ram *Vs*. The Union of India); 34

[1970] 197 यू० एस० 337 (1970):
इलिनॉयस बनाम एलन
(Illinois *Vs*. Allen); 148

[1969] (1969) 1 एस० सी० आर० 312=[1968] 2 उम० नि० प० 1080:
शाम सुन्दर बनाम भारत संघ
(Sham Sunder *Vs*. The Union of India); 178

[1968] (1968) 1 एस० सी० आर० 721:
सी० ए० राजेन्द्रन बनाम भारत संघ और अन्य
(C. A. Rajendran *Vs*. The Union of India and Others); 25,26, 106,209, 210

[1968] (1968) 1 एस० सी० आर० 407:
मैसूर राज्य और एक अन्य बनाम वी० पी० नरसिंह राव
(The State of Mysore and Another *Vs*. V. P. Narasing Rao); 27,106

[1968] (1968) 1 एस० सी० आर० 185:
रोशन लाल टण्डन बनाम भारत संघ
(Roshan Lal Tandon *Vs*. The Union of India); 35, 36

[1967] (1967) 2 एस० सी० आर० 762:
आई० सी० गोलक नाथ और अन्य बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य
(I. C. Golak Nath and Others *Vs*. The State of Punjab and Another); 196

[1967] (1967) 2 एस० सी० आर० 703:
एस० जी० जयसिंघानी बनाम भारत संघ और अन्य
(S. G. Jaisinghani *Vs*. The Union of India and Others); 57, 58,106, 108,109, 210, 207

1975(9) eILR(PAT) SC 1

[1967] (1967) 2 एस० सी० ग्रार० 29:
गोविन्द दत्तात्रेय केलकर और अन्य बनाम मुख्य नियन्त्रक, आयात और निर्यात और अन्य
(Govind Dattatray Kelkar and Others *Vs.* Chief Controller of Imports and Exports and Others); 33, 207

[1966] (1966) 384 यू० एस० 641:
कजनबेक बनाम मॉर्गन
(Kazenbach *Vs.* Morgan); 131

[1965] (1965) 2 एस० सी० ग्रार० 877:
भैयालाल बनाम हरिकिशन सिंह और अन्य
(Bhaiyalal *Vs.* Harikishan Singh and Others); 43

[1965] 383 यू० एस० 663:
हारनर बनाम विरजीनिया बोर्ड ऑफ इलैक्शन्स
(Harner *Vs.* Virginia Board of Elections); 97

[1964] (1964) 4 एस० सी० ग्रार० 680:
टी० देवदासन बनाम भारत संघ और एक अन्य
(T. Devadasan *Vs.* The Union of India and Another); 26,56,71, 125,160-च, 178, 220, 225

[1963] (1963) सप्लीमेण्ट 1 एस० सी० ग्रार० 439:
एम० आर० बालाजी और अन्य बनाम मैसूर राज्य
(M.R. Balaji and Others *Vs.* The State of Mysore); 26, 68, 125,182

[1962] 372 यू० एस० 353:
डगलस बनाम कैलिफोर्निया
(Douglas *Vs.* California); 94

[1962] (1962) 2 एस० सी० ग्रार० 586 ; ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 36:
महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे बनाम रंगाचारी
(The General Manager, Southern Railway *Vs.* Rangachari); 29, 56, 71, 75, 109, 178, 208, 220, 222

1975(9) eILR(PAT) SC 1

[1961]	(1961) 1 एस० सी० आर० 222: राजस्थान राज्य और अन्य बनाम ठाकुर प्रताप सिंह (The State of Rajasthan and Others *Vs.* Thakur Pratap Singh);	180
[1960]	(1960) 2 एस० सी० आर० 311: अखिल भारतीय स्टेशन मास्टर और सहायक स्टेशन मास्टर संगम और अन्य बनाम महाप्रबन्धक, मध्य रेलवे और अन्य (All Indian Station Master and Assistant Station Masters' Association and Others *Vs.* The General Manager, Central Railways and Others);	30, 57, 58,108
[1959]	(1959) एस० सी० आर० 995: केरल एजूकेशन बिल, 1957 वाला मामला (In re. The Kerala Education Bill, 1957);	194
[1959]	(1959) एस० सी० आर० 629: मोहम्मद हनीफ कुरेशी और अन्य बनाम बिहार राज्य (Mohammad Hanif Quareshi and Others *Vs.* The State of Bihar);	195
[1956]	354 यू० एस० 457, 473: मोरे बनाम दाउद (Morey *Vs.* Doud);	211
[1955]	351 यू० एस० 12: ग्रिफिन बनाम इलिनॉयस (Griffin *Vs.* Illinois);	94
[1951]	(1951) एस० सी० आर० 525: मद्रास राज्य बनाम श्रीमती चम्पाकम दोराईराजन (The State of Madras *Vs.* Shrimati Champakam Dorairajan);	67,69, 71,160-ग
[1928]	(1928) 277 यू० एस० 32: लुइसविल्लै गस एण्ड इलैक्ट्रिक कम्पनी बनाम कोलमैन (Louisville Gas & Elec. Co. *Vs.* Coleman);	136

[1927] (1927) 274 यू० एस० 200:
बक बनाम बैल
(Buck *Vs*. Bell); 137

[1819] 17 यू० एस० (4वीट) 316, 421 जो 384 यू० एस० 650 में उद्धृत:
मैक्कुलक बनाम मैरीलैण्ड
(Mculloch *Vs*. Maryland); 131

419 यू० एस० 42 लॉयर्स इडिशन द्वितीय 610:
श्लेसिंगर बनाम बल्लार्ड
(Schlesinger *Vs*. Ballard). 170

सिविल अपीली अधिकारिता : 1974 की सिविल अपील संख्या 1160.

1972 के आरम्भिक पिटीशन संख्या 1656 में केरल उच्च न्यायालय के तारीख 19 अप्रैल, 1974 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

अपीलार्थियों की ओर से	श्री एम० एम० अब्दुल खादिर, केरल के महाधिवक्ता, और श्री के० एम० के० नायर
प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	सर्वश्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर, पी० के० पिल्लै और एन० सुधाकरण
प्रत्यर्थी संख्या 2-4, 6 और 7 तथा मध्यक्षेपी श्री सुरेन्द्रन की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग, वी० जे० फ्रान्सिस और के० आर० नम्बियार
मध्यक्षेपी (उत्तर प्रदेश राज्य) की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग और ओ० पी० राणा
भारत के महान्यायवादी की ओर से	श्री लाल नारायण सिन्हा, भारत के महासॉलिसिटर, सर्वश्री पी० पी० राव और गिरीश चन्द
प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से	कोई नहीं

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अभिलेख अधिवक्ता

अपीलार्थियों की ओर से	श्री के० एम० के नायर
प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	श्री एन० सुधाकरण
प्रत्यर्थी संख्या 2-4, 6 और 7 तथा मध्यक्षेपी श्री सुरेन्द्रन की ओर से	श्री के० आर० नम्बियार
मध्यक्षेपी (उत्तर प्रदेश राज्य) की ओर से	श्री ओ० पी० राणा
भारत के महान्यायवादी की ओर से	श्री गिरीश चन्द

मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे के मतानुसार।

मुख्य न्यायाधिपति रे—

यह अपील प्रमाणपत्र लेकर केरल उच्च न्यायालय के तारीख 10 अप्रैल, 1974 वाले निर्णय के विरुद्ध की गई है।

2. यह अपील केरल स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज़ रूल्स, 1958 (जिसे इसमें इसके पश्चात् नियम कहा गया है) के नियम 13-एए की और दो अन्य आदेशों की, जिन्हें पी-2 और पी-6 के रूप में चिह्नित किया गया है, विधिमान्यता के सम्बन्ध में है।

3. नियम 13-एए को समझने के लिए नियम 12, 13-ए और 13-एए के प्रति निर्देश करना आवश्यक है। ये नियम संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में बनाए गए थे। ये नियम 17 दिसम्बर, 1958 को प्रवृत्त हुए।

4. 'प्रोन्नति' से नियम 2(11) में दी गई परिभाषा के अनुसार सेवा के किसी प्रवर्ग या किसी श्रेणी या सेवा के किसी वर्ग के सदस्य की ऐसी सेवा या ऐसे वर्ग में उच्चतर प्रवर्ग या श्रेणी में नियुक्ति अभिप्रेत है।

5. नियम 12 में यह कथित किया गया है कि जहां पर किसी प्रवर्ग, श्रेणी या उसमें के पद की सेवा के विशेष नियमों द्वारा साधारण शैक्षणिक अर्हताएं, विशेष अर्हताएं या विशेष परीक्षाएं विहित की गई हों, जो कि ऐसी सेवा या वर्ग में किसी निम्न वेतन दर वाले किसी प्रवर्ग या श्रेणी के लिए विहित न की गई हों और वेतन की निम्न दर वाले प्रवर्ग या श्रेणी का कोई सदस्य ऐसे प्रवर्ग, श्रेणी या पद पर प्रोन्नति के लिए पात्र न हो वहां ऐसे निम्न प्रवर्ग या श्रेणी में कोई सदस्य उच्चतर वेतन दर वाले प्रवर्ग या श्रेणी में तब ही अस्थायी रूप से प्रोन्नत किया

1975(9) eILR(PAT) SC 1

जा सकता है जब कि इस नियम के अधीन अर्हित पूर्वकथित प्रवर्ग या श्रेणी का सदस्य प्रोन्नति के लिए उपलभ्य न हो। इस नियम के अधीन अस्थायी रूप से प्रोन्नत सदस्य केवल ऐसी प्रोन्नति के कारण ही उस प्रवर्ग या श्रेणी में परिवीक्षाधीन नहीं माना जाएगा जिसमें उसे प्रोन्नत किया गया है या भावी प्रोन्नति के लिए किसी अधिमानी दावे का हकदार नहीं होगा।

6. नियम 13 में विशेष अर्हताओं का उल्लेख है। नियम 13 का इस अपील से कोई सम्बन्ध नहीं है।

7. वे दो नियम, जो कि इस अपील के लिए महत्वपूर्ण हैं, 13-ए और 13-एए हैं। वे इस प्रकार हैं--

*"13-ए. विशेष और विभागीय परीक्षाएं--प्रोन्नति के लिए अस्थायी छूट--नियम 13 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी जहां किसी प्रवर्ग, श्रेणी या उसमें के पद के लिए या उसके किसी वर्ग के लिए सेवा के विशेष नियमों द्वारा कोई विशेष या विभागीय परीक्षा पास करना नये सिरे से विहित किया गया हो वहां सेवा के ऐसे सदस्य को, जिसने उक्त परीक्षा पास न की हो किन्तु जो ऐसे वर्ग, प्रवर्ग, श्रेणी या पद में नियुक्ति के लिए अन्यथा अर्ह और योग्य हो, परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने के दो वर्ष के भीतर उस पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया जा सकेगा। यदि इस प्रकार नियुक्त सदस्य उक्त परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने की तारीख से दो वर्ष के भीतर या जहां उक्त परीक्षा के अन्तर्गत व्यवहारिक प्रशिक्षण भी हो वहां ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त करने में प्रथम अवसर के पश्चात् दो वर्ष के भीतर परीक्षा पास

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है --

"13A. Special and Departmental tests—Temporary exemption for promotion.—Notwithstanding anything contained in Rule 13, where a pass in a special or departmental test is newly prescribed by the Special Rules of a service for any category, grade or post therein or in any class thereof a member of a service who has not passed the said test but is otherwise qualified and suitable for appointment to such class, category, grade or post may within 2 years of the introduction of the test be appointed thereto temporarily. If a member so appointed does not pass the test within two years from the date of introduction of the said test or when the said test also involves practical

नहीं कर लेता है, तो उसे ऐसे वर्ग, प्रवर्ग या श्रेणी या पद पर प्रतिवर्तित कर दिया जाएगा जिससे उसे नियुक्त किया गया था और वह इस नियम के अधीन नियुक्ति के लिए पुनःपात्र नहीं होगा ;

परन्तु यह कि इस प्रकार प्रतिवर्तित व्यक्ति इस नियम के अधीन केवल नियुक्ति के कारण ही यथास्थिति ऐसे वर्ग, प्रवर्ग, श्रेणी या पद पर भावी नियुक्ति के किसी अधिमानी दावे का हकदार नहीं होगा जिस पर उसे इस नियम के अधीन नियुक्त किया गया था;

परन्तु यह और कि अस्थायी छूट की कालावधि अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के किसी व्यक्ति की दशा में दो वर्ष तक बढ़ा दी जाएगी:

परन्तु यह भी कि यह नियम पुलिस विभाग के उपनिरीक्षकों की पंक्ति से नीचे के कार्यपालक कर्मचारिवृन्द की प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित परीक्षाओं को लागू नहीं होगा।

नियम 13-एए. इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी सरकार आदेश द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति

---

training within two years after the first chance to undergo such training he shall be reverted to the class, category or grade or post from which he was appointed and shall not again be eligible for appointment under this rule:

Provided that a person so reverted shall not by reason only of the appointment under this rule be entitled to any preferential claim to future appointment to the class, category, grade or post, as the case may be to which he had been appointed under this rule:

Provided further that the period of temporary exemption shall be extended by two years in the case of a person belonging to any of the scheduled castes or scheduled tribes:

Provided also that this rule shall not be applicable to tests prescribed for purposes of promotion of the Executive staff below the rank of Sub-Inspectors belonging to the Police Department:

'13-AA. Notwithstanding anything contained in these rules the Government may, by order, exempt for a specified period, any member or members, belonging to a

के किसी सदस्य या सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हों उक्त नियमों के नियम 13 या 13-क में निर्दिष्ट परीक्षाओं को पास करने से किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट दे सकेगी;

परन्तु यह कि यह नियम पुलिस विभाग के उपनिरीक्षकों की पंक्ति से नीचे के कार्यपालक कर्मचारिवृन्द की प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित परीक्षाओं को लागू नहीं होगा।"

8. यहां पर यह कथित करना आवश्यक है कि नियम, 13-ए का तृतीय परन्तुक और नियम 13-एए का परन्तुक 12 अक्तूबर, 1973 से पुरःस्थापित किए गए थे। नियम 13-एए 13 जनवरी, 1972 से पुरःस्थापित किया गया था। आदेश राज्यपाल द्वारा किया गया है। आदेश में अध्यक्ष, केरल हरिजन संस्कारिका क्षेम समिति, राज्य समिति त्रिवेन्द्रम के तारीख 19 जून, 1971 वाले एक ज्ञापन और सचिव, केरल लोक सेवा आयोग के तारीख 13 नवम्बर, 1971 वाले एक पत्र के प्रति निर्देश किया गया है। आदेश इस प्रकार है —

"केरल हरिजन संस्कारिका क्षेम समिति, त्रिवेन्द्रम, के अध्यक्ष ने सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया है कि बहुत बड़ी संख्या में हरिजन कर्मचारी परीक्षा सम्बन्धी अर्हताओं के न होने के कारण अपने पदों से तुरन्त प्रतिवर्तित किए जा रहे हैं और इसलिए उसने यह अनुरोध किया है कि सभी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को दो वर्ष की कालावधि के लिए अनिवार्य विभागीय परीक्षाएं पास करने से तुरन्त अस्थायी छूट दी जाए।

(2) सरकार ने केरल लोक सेवा आयोग से परामर्श करके इस विषय में जांच की है और वह अनुसूचित जातियों

Scheduled Caste or a Scheduled Tribe, and already in service, from passing the tests referred to in rule 13 or rule 13-A of the said rules:

Provided that this rule shall not be applicable to tests prescribed for purposes of promotion of the Executive Staff below the rank of sub Inspector belonging to the Police Department."

1975(9) eILR(PAT) SC 1

और अनुसूचित जनजातियों के ऐसे सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हैं, सभी परीक्षाएं (एकीकृत और विशेष या विभागीय परीक्षाएं) पास करने से दो वर्ष की कालावधि के लिए अस्थायी छूट देती है।

(3) उक्त छूट का फायदा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उन कर्मचारियों को उपलब्ध होगा जो पहले से ही साधारण नियम 13-ए के अधीन नए सिरे से विहित की गई परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने से अस्थायी छूट के फायदे उठा रहे हैं। उनके मामले में अस्थायी छूट उक्त पैरा 2 में वर्णित अस्थायी छूट के अवसान की तारीख को या विद्यमान अस्थायी छूट के अवसान की तारीख को, इन दोनों में से जो भी बाद में हो, समाप्त हो जाएगी।

(4) यह आदेश आदेश देने की तारीख से प्रभावी होगा।"

9. प्रदर्श पी-6 तारीख 11 जनवरी, 1974 वाला एक आदेश है। यह आदेश राज्यपाल द्वारा किया गया है। यह आदेश इस प्रकार है—

"सरकार यह आदेश देती है कि ऊपर उल्लिखित सरकारी आदेश में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को सभी परीक्षाएं (एकीकृत और विशेष या विभागीय परीक्षाएं) पास करने से दी गई अस्थायी छूट की कालावधि 13 जनवरी, 1974 से बढ़ा दी जाए जिससे कि उसके अन्तर्गत वह कालावधि भी आ जाए जिसके दौरान लोक सेवा आयोग द्वारा दो परीक्षाएं ले ली जाएं और उनके परिणाम प्रकाशित कर दिए जाएं जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति को परीक्षा में बैठने के दो अवसर प्राप्त हो सकें। सरकार यह आदेश भी देती है कि इन प्रवर्गों के कर्मचारियों के लिए परीक्षा संबंधी अर्हताएं अर्जित करने के लिए और समय नहीं बढ़ाया जाएगा।"

10. नियम 13-एए के जो कि 13 जनवरी, 1972 को प्रवृत्त हुआ था, अनुसरण में, आदेश प्रदर्श पी-2 13 जनवरी, 1972 को पारित किया गया था जिसके द्वारा किसी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के ऐसे सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हों, सभी परीक्षाएं (एकीकृत

और विशेष या विभागीय परीक्षाएं) पास करने से दो वर्ष की कालावधि के लिए अस्थायी छूट प्रदान की गई थी। लगभग सभी मामलों में प्रदर्श पी-2 द्वारा प्रदान की गई छूट 12 जनवरी, 1974 को समाप्त हो जानी थी।

11. एक अन्य आक्षेपकृत आदेश प्रदर्श पी-6 द्वारा, जो कि 11 जनवरी, 1974 को पारित किया गया था, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों को परीक्षाएं पास करने से 13 जनवरी, 1974 से और छूट प्रदान की गई जिससे कि वह कालावधि भी उसके अन्तर्गत आ जाए जिसके दौरान लोक सेवा आयोग द्वारा परीक्षाएं आयोजित की जाएंगी और उनके परिणाम प्रकाशित किए जाएंगे जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति को उस कालावधि के भीतर परीक्षा में बैठने के दो अवसर प्राप्त हो जाएंगे। सरकार ने यह आदेश भी दिया कि इन प्रवर्गों के कर्मचारियों के लिए परीक्षा सम्बन्धी अर्हताएं अर्जित करने के लिए और अधिक समय नहीं बढ़ाया जाएगा।

12. इन छूट-आदेशों के आधार पर कई प्रोन्नतियां की गई हैं। प्रत्यर्थी ने रिट पिटीशन में यह अभिकथित किया कि 12 निम्न श्रेणी लिपिक, जो कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य थे, परीक्षा सम्बन्धी अर्हता के बिना प्रोन्नत कर दिए गए हैं। यह अभिकथन भी किया गया है कि तारीख 15 जून, 1972 वाले एक आदेश द्वारा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के 19 निम्न श्रेणी लिपिक उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में प्रोन्नत किए गए थे, जिनमें से पांच अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के निर्रहित सदस्य थे और 14 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अर्हित सदस्य थे। तारीख 19 सितम्बर, 1972 वाले आदेश द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आठ सदस्यों की प्रोन्नतियों का आदेश दिया गया था जिनमें से केवल दो अर्हित थे और शेष 6 निर्रहित थे। तारीख 31 अक्तूबर, 1972 वाले एक और आदेश द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सात सदस्यों को परीक्षा पास किए बिना प्रोन्नत किया गया था और एक को परीक्षा पास करने पर प्रोन्नत किया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी-पिटीशनर की व्यथा यह थी कि उन 51 रिक्त स्थानों में से, जो कि सन् 1972 में उच्च श्रेणी

लिपिकों के प्रवर्ग में हुए थे, 34 स्थान अनुसूचित जातियों के ऐसे सदस्यों द्वारा भरे गए थे जो अर्हित नहीं थे और केवल 17 स्थान ही अर्हित व्यक्तियों द्वारा भरे गए थे।

13. प्रत्यर्थी एक निम्न श्रेणी लिपिक है जो कि रजिस्ट्रीकरण विभाग में कार्य कर रहा है। उस विभाग में ज्येष्ठता के आधार पर उच्च श्रेणी लिपिक के पद पर प्रोन्नति के लिए निम्न श्रेणी लिपिकों को (1) लेखा विषयक परीक्षा (निम्न), (2) केरल रजिस्ट्रीकरण परीक्षा और (3) कार्यालय प्रक्रिया की नियमावलि की परीक्षा पास करनी होती है। प्रत्यर्थी की व्यथा यह है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को दी गई कतिपय रियायतों की दृष्टि से वे प्रत्यर्थी से पूर्व ही प्रोन्नत कर दिए गए थे, यद्यपि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के उन सदस्यों ने, जिन्हें कि प्रोन्नत किया गया था, परीक्षाएं पास नहीं की थीं।

14. उच्च न्यायालय में फाइल किए गए रिट पिटीशन में प्रत्यर्थी ने इस घोषणा के लिए कि नियम 13-एए असांविधानिक है और प्रदर्श पी-2 के रूप में चिह्नित तारीख 13 जनवरी, 1973 वाले आदेश को क्रियान्वित करने से प्रविरत रहने के लिए राज्य को बाध्य करने के लिए परमादेश का निवेदन किया था। प्रत्यर्थी ने एक शपथपत्र द्वारा ऐसे ही आदेश के लिए प्रार्थना की थी कि तारीख 11 जनवरी, 1974 वाला प्रदर्श पी-6, अपास्त कर दिया जाए।

15. उच्च न्यायालय में प्रत्यर्थियों की दलील यह थी कि सेवा नियमों का नियम 13-एए और प्रदर्श पी-2, पी-6 तथा प्रदर्श पी-7, जो कि तारीख 31 अक्तूबर, 1972 वाला एक अन्य आदेश था और तदधीन दिए गए प्रोन्नति के सब आदेश अनुच्छेद 16(1) और अनुच्छेद 16(2) का अतिक्रमण करते हैं। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 1 की दलीलों की पुष्टि कर दी थी।

16. राज्य ने यह दलील दी है कि आक्षेपकृत नियम और आदेश न केवल वैध और विधिमान्य ही हैं अपितु वे अनुच्छेद 16(1) के अधीन तर्कसंगत वर्गीकरण का समर्थन भी करते हैं।

17. प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से निम्नलिखित दलीलें दी गई थीं। प्रथमतः, अनुच्छेद 16 राज्य में किसी सेवा में नियक्ति से संबंधित

मामलों में अनुच्छेद 14 को विनिर्दिष्ट रूप से लागू करता है। अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) और (2) अनुच्छेद 14 द्वारा गारण्टीकृत विधि के समक्ष समता को और अनुच्छेद 15(1) द्वारा गारण्टीकृत विभेद के प्रतिषेध को क्रियान्वित करते हैं। दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 16(1) शाब्दिक रूप से आत्यन्तिक है जो कि नियोजन या नियुक्ति की ईप्सा करने वाले प्रत्येक नागरिक को अवसर समता की गारण्टी देता है। नियोजन या नियुक्ति प्राप्त करने के लिए एक जसे अवसर और समान व्यवहार पर ज़ोर दिया गया है। दूसरे, अनुच्छेद 16(1) में नियुक्ति से सम्बन्धित मामलों में नियुक्ति के पूर्व और पश्चात् दोनों के ही सम्बन्ध में सभी मामले सम्मिलित हैं और वे सेवा के निन्बधनों और शर्तों का भाग हैं। नियुक्ति, प्रोन्नति, नियोजन के पर्यवसान और पेंशन तथा उपदान के संदाय के लिए समान अवसर दिया जाना है। तीसरे, अनुच्छेद 16(1) द्वारा गारण्टीकृत समता केवल उसी विस्तार तक कम की जा सकती है जिस तक कि अनुच्छेद 16(4) में उपबन्धित किया गया है। अनुच्छेद 16(4) के सिवाय अनुच्छेद 16(1) के अधीन गारण्टीकृत अधिकार को कम नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 16(4) सारतः अनुच्छेद 16(1) और (2) द्वारा गारण्टीकृत अधिकारों का अपवाद है। चौथे, अनुच्छेद 16 (4) के अन्तर्गत 16(1) और (2) का सम्पूर्ण क्षेत्र नहीं आता है। नियुक्ति से सम्बन्धित कुछ मामले, जिनकी बाबत अनुच्छेद 16(1) और (2) द्वारा अवसर समता की गारण्टी दी गई है, अनुच्छेद 16(4) के अविगण्य खण्ड की रिष्टि (मिसचीफ) के अन्तर्गत नहीं आते हैं। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 16 का खण्ड (1) और (2) किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति के लिए चयन के लिए युक्तियुक्त नियमों के विहित किए जाने का प्रतिषेध नहीं करते हैं। पद पर नियोजन या नियुक्ति के लिए अर्हताओं के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध, जो कि युक्तियुक्त रूप से किया जाए और सभी नागरिकों को लागू किया जाए, अनुच्छेद 16(1) में अवसर समता के सिद्धांत के अनुरूप होगा। सेवा की दक्षता के प्रयोजनार्थ नियोजन के लिए युक्तियुक्त अर्हता न्यायोचित है। पांचवें, नियम 13-एए अनुच्छेद 16(1) और (2) का अतिक्रमण करता है। अधिक्षेपित प्रदर्श इसी रिष्टि के अन्तर्गत आते हैं। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के साथ अन्य पिछड़े लोगों से भिन्न रूप से व्यवहार करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। प्रोन्नति के लिए आवश्यक अर्हता से छूट प्रशासन की दक्षता के बनाए

रखने में सहायक नहीं होती है और यह न केवल संविधान के अनुच्छेद 335 का उल्लंघन करती है अपितु अनुच्छेद 16(1) का भी उल्लंघन करती है।

18. 17 दिसम्बर, 1958 को केरल स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज़ रूल्स 1958 के पुरःस्थापन के पूर्व और नवम्बर, 1956 में केरल राज्य के बनने के पूर्व त्रावनकोर-कोचीन सरकार ने 14 जून, 1956 को यह निदेश देते हुए आदेश जारी किए थे कि विभिन्न इम्तिहानों के सम्बन्ध में परीक्षाओं की वावत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए अर्हता का स्तर अन्य व्यक्तियों की तुलना में निम्न होना चाहिए। तारीख 27 जून, 1958 वाले सरकारी आदेश द्वारा यह निदेश दिया गया था कि परीक्षा पास करने से छूट की कालावधि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की दशा में दो वर्ष के लिए बढ़ा दी जानी चाहिए। तारीख 2 जनवरी, 1961 वाले सरकारी आदेश द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए छूट की कालावधि तीन वर्ष के लिए और बढ़ा दी गई थी। तारीख 13 जनवरी, 1963 वाले एक अन्य सरकारी आदेश द्वारा एक एकीकृत लेखा विषयक परीक्षा (निम्न) और कार्यालय प्रक्रिया में एक परीक्षा पुरानी परीक्षाओं के स्थान पर प्रारंभ की गई थीं और चूंकि इसे नई परीक्षा माना गया था इसलिए उन सब व्यक्तियों को, जो कि पहले त्रावनकोर, कोचीन या मद्रास सेवा में थे, परीक्षा पास करने के लिए दो वर्ष का समय दिया गया था और पूर्व उल्लिखित आदेशों के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को अतिरिक्त समय दिया गया था। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को एकीकृत परीक्षा पास करने के लिए 14 जनवरी, 1963 से सात वर्ष का समय देते हुए 9 फरवरी, 1968 को एक परिपत्र जारी किया गया था। यह कालावधि 14 जनवरी, 1970 को समाप्त होनी थी। 13 जनवरी, 1970 को इस कालावधि को 14 जनवरी, 1971 तक एक वर्ष के लिए और बढ़ाते हुए एक आदेश पारित किया गया था। 14 जनवरी, 1971 को इस कालावधि को एक वर्ष के लिए और बढ़ाते हुए एक अन्य सरकारी आदेश जारी किया गया था।

19. सरकार की जानकारी में यह बात लाई गई थी कि बहुत बड़ी संख्या में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सरकारी

सेवक परीक्षा संबंधी अर्हता न होने के कारण प्रोन्नत नहीं किए जा सकते। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को अनुतोष प्रदान करने के लिए सरकार ने नियम 13-एए समाविष्ट किया जिसके द्वारा सरकार को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को एक विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट प्रदान करने में समर्थ बना दिया गया। तारीख 13 जनवरी, 1972 को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को परीक्षा पास करने से दो वर्ष के लिए छूट प्रदान कर दी गई थी। तारीख 11 जनवरी, 1974 को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को तारीख 11 जनवरी, 1972 के पश्चात् संचालित की जाने वाली दो परीक्षाओं की कालावधि के लिए परीक्षाएं पास करने से छूट प्रदान करते हुए नियम 13-एए के अधीन एक आदेश पारित किया गया था।

20. निम्न श्रेणी लिपिकों की उच्च श्रेणी लिपिकों के पद पर प्रोन्नति के लिए कसौटी ज्येष्ठता एवं योग्यता है। परीक्षा सम्बन्धी अर्हता न होने के कारण बहुत बड़ी संख्या में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के निम्न श्रेणी लिपिकों को छोड़ दिया गया था। प्रदर्श पी-2 के रूप में चिह्नित तारीख 13 जनवरी, 1972 वाले पूर्वोक्त सरकारी आदेश के कारण ही प्रोन्नतियां ज्येष्ठता एवं योग्यता के आधार पर की गई थीं। अधिकांश पद अनुसूचित जातियों और अनुसूचिन जनजातियों के सदस्यों को प्राप्त हुए क्योंकि वे ज्येष्ठ कर्मचारी थे। तारीख 13 जनवरी, 1972 वाले आदेश के जारी किए जाने के पश्चात् उन 51 निम्न श्रेणी लिपिकों में से जिनकी प्रोन्नति की गई थी, 34 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य थे। इन 34 व्यक्तियों को विभागीय परीक्षाएं पास करने से अस्थायी छूट दी गई थी। ऐसा भी प्रतीत होता है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के ये 34 सदस्य निम्न काडर में ज्येष्ठतम हो गए हैं।

21. अनुच्छेद 14, 15 और 16 सांविधानिक गारण्टीकृत अधिकार की श्रृंखला का एक भाग हैं। ये अधिकार एक-दूसरे के अनुपूरक हैं। अनुच्छेद 16, जो कि नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर समता सुनिश्चित करता है, अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की गारण्टी का आनुषंगिक है। अनुच्छेद 16(1) अनुच्छेद 14 को

क्रियान्वित करता है। अनुच्छेद 14 और 16(1) दोनों ही ऐसा युक्तियुक्त वर्गीकरण, जिसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों से संबंध हो, अनुज्ञात करते हैं। अनुच्छेद 16 के अधीन नौकरी या नियुक्ति से संबंधित विषयों में कर्मचारियों का युक्तियुक्त वर्गीकरण हो सकता है।

22. **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **श्री अम्बिका मिल्स लिमिटेड, अहमदाबाद**[1] में इस न्यायालय ने यह कहा है कि "विधियों का समान संरक्षण, समान विधियों के संरक्षण का संकल्प है। किन्तु विधियों में वर्गीकरण किया जा सकता है और वर्गीकरण का भाव असमता का भाव है। इस विरोधाभास का हल करने के लिए न्यायालय ने न तो समता की मांग का अभित्याग किया है और न ही वर्गीकरण करने के विधायी अधिकार को नामंजूर किया है। इसने मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण किया है। इसने युक्तियुक्त वर्गीकरण के सिद्धांत द्वारा विधायी विशेषता की और सांविधानिक सामान्यता की परस्पर-विरोधी मांगों का समाधान किया है।" (देखिए--जोसेफ ट्यूज़मैन और जैकबस टेन ब्रेक, दि इक्वल प्रोटेक्शन ऑफ लॉज, 37 कैलिफोर्निया रिव्यू, 341)

23. **अम्बिका मिल्स वाले मामले**[1] में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि "युक्तियुक्त वर्गीकरण वह है जिसमें ऐसे सभी व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाए जो समान स्थिति में हों और ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जो वैसी स्थिति में नहीं है।" इस प्रश्न का उत्तर कि कौन-से व्यक्ति समान स्थिति में होते हैं, यह कह कर दिया गया है कि वर्गीकरण से परे विधि के प्रयोजन को देखना चाहिए। "विधि का प्रयोजन या तो सार्वजनिक रिष्टि को दूर करना अथवा किसी निश्चित सार्वजनिक भलाई की प्राप्ति हो सकता है।"

24. विभेद वर्गीकरण का सार होता है। उस दशा में समता का अतिक्रमण होता है जब कि उसका आधार अयुक्तियुक्त हो। समता की धारणा में अन्तर्निहित परिसीमा होती है जो कि सांविधानिक गारण्टी के स्वरूप से ही उत्पन्न होती है। वे व्यक्ति जो समान परिस्थितियों में हों, समान व्यवहार के हकदार होते हैं। समता समान व्यक्तियों के बीच होती है। अतः वर्गीकरण सारवान भेद के आधार पर किया जाता है जो

1 ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1300-[1974] 2 उम० नि० प० 152.

कि एक समूह में रखे गए व्यक्तियों को उस समूह से छूटे हुए व्यक्तियों से प्रभेदित करता हो और ऐसे भेदपूर्ण व्यवहार का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से न्यायपूर्ण और तर्कसंगत संबंध होना चाहिए ।"

25. इस मामले में मूल प्रश्न यह है कि क्या नियम 13-एए और आदेश, प्रदर्श पी-2, और पी-6 असांविधानिक हैं तथा अनुच्छेद 16(1) का अतिक्रमण करते हैं । अनुच्छेद 16(1) में राज्याधीन नौकरियों या नियुक्ति के संबंध में अवसर समता का उल्लेख है । अधिक्षेपित नियम और आदेश निम्न श्रेणी लिपिकों से उच्च श्रेणी लिपिकों के पद पर प्रोन्नति के संबंध में हैं । प्रोन्नति सभी मामलों में दो वर्ष के भीतर परीक्षा पास करने पर निर्भर करती है और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक लम्बी अवधि अर्थात् चार वर्ष के लिए छूट प्रदान की गई है । यदि उस प्रयोजन के अनुरूप तर्कसंगत वर्गीकरण है जिसके लिए ऐसा वर्गीकरण किया गया है तो समता का अतिक्रमण नहीं होता है । प्रोन्नति के प्रयोजनार्थ वर्गीकरण के प्रवर्ग केवल इस दलील के आधार पर समाप्त नहीं किए जा सकते हैं कि वे सभी सेवा में एक ही काडर के सदस्य हैं । यदि वर्गीकरण प्रोन्नति के प्रयोजनार्थ शैक्षणिक अर्हताओं के आधार पर किया जाता है या वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि नौकरी में प्रविष्टि की बाबत व्यक्ति समान परिस्थितियों में नहीं रखे गए हैं तो ऐसा वर्गीकरण न्यायोचित हो सकता है । प्रोन्नति के प्रयोजनार्थ सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों और प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों के बीच वर्गीकरण को सी० ए० राजेन्द्रन बनाम भारत संघ[1] के मामले में युक्तियुक्त अभिनिर्धारित किया गया है ।

26. प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि अनुच्छेद 16(4) के अलावा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य प्रोन्नति की बाबत किसी पक्षपातपूर्ण व्यवहार के हकदार नहीं थे । टी० देवदासन बनाम भारत संघ और एक अन्य[2] के मामले में पिछड़े हुए वर्गों के लिए आरक्षण किया गया था । आरक्षित पदों की संख्या, जो कि भरे नहीं गए थे, आगामी वर्ष के लिए अग्रणीत की गई थी । अग्रणीत करने के सिद्धांत के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया था कि ऐसे आरक्षित पद समता को नष्ट

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 721.

[2] (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि 18 स्थान आरक्षित रखे गए थे और दो क्रमिक वर्षों के लिए आरक्षित स्थानों को भरा नहीं जाता है और तीसरे वर्ष में एक सौ रिक्त स्थान होते हैं तो परिणाम यह होगा कि एक सौ खाली स्थानों में से 54 आरक्षित स्थान भर दिए जाएंगे। यह बात समता को नष्ट कर देगी। उस आधार पर **देवदासन के मामले**[1] में अग्रणीत करने के सिद्धांत की पुष्टि नहीं की गई थी। **एम० आर० बालाजी और अन्य** बनाम **मैसूर राज्य**[2] के मामले में भी यही मत अपनाया गया था। यह कहा गया था कि पिछड़े वर्गों के लिए पचास प्रतिशत से अधिक स्थानों को आरक्षित नहीं रखा जाना चाहिए। यह बात समता सुनिश्चित करती है। **राजेन्द्रन के मामले**[3] में इस न्यायालय के विनिर्णय के अनुसार आरक्षण सांविधानिक बाध्यता नहीं है अपितु वैवेकिक है।

27. कोई व्यक्ति तब तक अवसर समता से वंचित नहीं किया जाता है जब तक कि वह व्यक्ति जो कि विभेद का परिवाद करता हो उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों जैसी स्थिति में ही हो जिनके बारे में यह अभिकथित किया गया हो कि उनके प्रति पक्षपात किया गया है। अनुच्छेद 16(1) कर्मचारियों के युक्तियुक्त वर्गीकरण का या उनके चयन के लिए युक्तियुक्त परीक्षाओं का वर्जन नहीं करता है। (देखिए—**मैसूर राज्य** बनाम **वी० पी० नरसिंह राव**[4])।

28. इस अवसर समता को आत्यन्तिक समता के साथ मिलाए जाने की जरूरत नहीं है। अनुच्छेद 16(1) किसी पद पर किसी नौकरी या नियुक्ति के लिए चयन के लिए युक्तियुक्त नियमों के विहित किए जाने का प्रतिषेध नहीं करता है। नौकरी की बाबत, उससे सम्बन्धित और उसके आनुषंगिक अन्य निबन्धनों और शर्तों की तरह ही किसी चयन पद पर प्रोन्नति भी नियोजन से सम्बन्धित मामलों और ऐसे प्रोन्नति से सम्बन्धित मामलों में सम्मिलित है। अनुच्छेद 16(1) में केवल सब नागरिकों को अवसर समता की गारण्टी ही दी गई है। अनुच्छेद 16(1) और (2) अनुच्छेद 14 द्वारा गारण्टीकृत विधि के समक्ष समता को और अनुच्छेद 15(1) द्वारा गारण्टीकृत विभेद के प्रतिषेध को क्रियान्वित

---

[1] (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

[2] (1963) सप्लीमेण्ट 1 एस० सी० आर० 439.

[3] (1968) 1 एस० सी० आर० 721.

[4] (1968) 1 एस० सी० आर० 407.

करते हैं। किसी चयन पद पर प्रोन्नति अनुच्छेद 16(1) और (2) के अन्तर्गत आती है।

29. आरक्षण करने की शक्ति का, जो कि अनुच्छेद 16(4) के अधीन राज्य को प्रदत्त की गई है, प्रयोग किसी उचित मामले में न केवल नियुक्ति के लिए आरक्षण का उपबन्ध करके ही किया जा सकता है, अपितु चयन पदों के आरक्षण का उपबन्ध करके भी किया जा सकता है। अनुच्छेद 16(4) के अधीन नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का उपबन्ध करने के लिए राज्य को प्रशासन में दक्षता बनाए रखने के अनुरूप पिछड़े वर्गों के दावों पर विचार करना होता है। यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रशासन की दक्षता इतनी अधिक महत्वपूर्ण बात है कि प्रशासन की दक्षता को समाप्त करते हुए कोई आरक्षण करना अविवेकपूर्ण और अननुज्ञेय होगा। (देखिए—**महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे** बनाम **रंगाचारी**[1]) प्रस्तुत मामला प्रोन्नति द्वारा पदों के आरक्षण का मामला नहीं है।

30. अनुच्छेद 16(1) के अधीन नौकरी में अवसर समता से कर्मचारियों के एक ही वर्ग के सदस्यों के बीच समता अभिप्रेत है न कि पृथक् स्वतंत्र वर्ग के सदस्यों के बीच समता। छोटे स्टेशनों के स्टेशन मास्टर और गार्ड पृथक् रूप से भर्ती किए जाते हैं पृथक् रूप से प्रशिक्षित किए जाते हैं और प्रोन्नति के उनके पृथक्-पृथक् प्रवेश मार्ग होते हैं। स्टेशन मास्टरों ने इस आधार पर गार्डों की तुलना में अवसर समता का दावा किया कि वे अवसर समता के हकदार थे। यह कहा गया कि समता की धारणा का उन विषयों के प्रति निर्देश के सिवाय कोई अस्तित्व नहीं हो सकता है जो कि उन व्यक्तियों के बीच सामान्य हैं जिनके बीच समता का प्रकथन किया जाता है। छोटे स्टेशनों के स्टेशन मास्टर और गार्ड पृथक् रूप से भर्ती किए गए थे। इसलिए उन दोनों के सुभिन्न और पृथक् वर्ग थे और प्रोन्नति के मामलों में अवसर की समता या असमता का प्रकथन करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। (देखिए—**अखिल भारतीय स्टेशन मास्टर और सहायक स्टेशन मास्टर संगम** बनाम **महा-प्रबन्धक, मध्य रेलवे**[2])। प्रस्तुत मामला इन व्यक्तियों के लिए प्रोन्नति के पृथक् प्रवेश मार्ग सृजित करने के लिए नहीं है।

---

[1] (1962) 2 एस० सी० आर० 586.

[2] (1960) 2 एस० सी० आर० 311.

31. समता का सिद्धान्त समान परिस्थितियों में समान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार है। विभेद का सिद्धान्त भिन्न-भिन्न स्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों या वस्तुओं के बीच विभेद करने वाली विधियां अधिनियमित करना है। जो परिस्थितियां व्यक्तियों या वस्तुओं के एक वर्ग को लागू होती हैं, आवश्यक रूप से वैसी ही नहीं हो सकती हैं जो व्यक्तियों या वस्तुओं के एक अन्य वर्ग को लागू होती हों जिससे कि विभिन्न स्थितियों और विभिन्न परिस्थितियों द्वारा शासित होने वाले व्यक्तियों के बीच असमान व्यवहार का प्रश्न वस्तुतः उत्पन्न नहीं होता है। समता के सिद्धान्त से यह अभिप्रेत नहीं है कि प्रत्येक विधि उन सभी व्यक्तियों को सार्वजनीन रूप से लागू होनी चाहिए जो कि प्रकृति, योग्यता या परिस्थितियों के कारण एक जैसी स्थिति में नहीं हैं और व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों की भिन्न-भिन्न जरूरतें विशेष व्यवहार की अपेक्षा करती हैं। विधानमण्डल अपनी जनता की जरूरतों को समझता है और यह जानता है कि उसकी विधियां अनुभव द्वारा प्रकट की गई समस्याओं के हल के लिए हैं और उसके प्रभेद उचित आधारों पर आधृत हैं। वर्गीकरण का सिद्धान्त समता के सिद्धान्त का स्वाभाविक और तार्किक अनिवार्य परिणाम नहीं है किन्तु विभेद का सिद्धान्त समता की धारणा में अन्तर्निहित है। समता से एक जैसी दशाओं में समान व्यवहार अभिप्रेत है। समता आत्यन्तिक समता की द्योतक नहीं है। किसी वर्गीकरण को सांविधानिक होने के लिए ऐसे प्रभेदों पर आश्रित होना चाहिए जो कि सारवान हैं न कि केवल काल्पनिक हैं। कसौटी यह है कि क्या कृत्रिमता और मनमानेपन से मुक्त इसका कोई युक्तियुक्त आधार है जो कि उस प्रवर्ग में स्वाभाविक रूप से आने वाले सभी व्यक्तियों को लागू होता है और किसी को छोड़ता नहीं है।

32. निम्नलिखित विनिश्चय इस बात को स्पष्ट करते हैं कि प्रोन्नति के लिए वर्गीकरण की अनुच्छेद 16 की अन्तर्वस्तु के अनुसार किस प्रकार पुष्टि हो जाती है।

33. ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें कि भर्ती किए गए व्यक्तियों के दो समूहों के बीच विभेद एक व्यक्ति की तुलना में दूसरे को अधिमानी व्यवहार प्रदान करने के लिए पर्याप्त न हो और उस दशा में न्यायालय यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि विभेदों और भर्ती के बीच कोई

युक्तियुक्त सम्बन्ध नहीं है (देखिए--**गोविन्द दत्तात्रेय केलकर बनाम मुख्य नियन्त्रक, आयात और निर्यात**[1])

34. अवसर समता के अन्तर्गत प्रारम्भिक नियुक्ति से प्रोन्नति सहित सेवा के पर्यवसान तक सेवा के सभी प्रक्रम आते हैं किन्तु यह चयन और प्रोन्नति के लिए ऐसे युक्तियुक्त नियमों के विहित किए जाने का प्रतिषेध नहीं करती है जो कि किसी वर्गीकृत समूह के सब सदस्यों को लागू होते हों। (देखिए--**गंगा राम** बनाम **भारत संघ**[2])

35. जब पिटीशनर और सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों को श्रेणी 'डी' में नियुक्त किया गया था तब सीधे भर्ती किए गए विभागीय और शिल्पियों की श्रेणी से प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों से बना श्रेणी 'डी' का एक वर्ग था। दोनों स्रोतों से श्रेणी 'डी' में भर्ती किए गए व्यक्तियों को एक वर्ग में मिला दिया गया था और तत्पश्चात् उनके बीच कोई विभेद नहीं किया जा सका। विभाग के प्रोन्नत व्यक्तियों और सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों, दोनों के लिए प्रोन्नति के लिए केवल एक ही नियम था। (देखिए--**रोशन लाल टण्डन** बनाम **भारत संघ**[3])

36. **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा और अन्य**[4] में इस न्यायालय ने यह कहा कि व्यवहारिक अभ्यावश्यकताओं से मार्गदर्शन हो सकता है जिस प्रकार विधानमण्डल हानि मात्राओं को मानने के लिए स्वतंत्र है और वह निर्बन्धनों को मामलों के उन्हीं वर्गों तक सीमित रख सकता है जिनमें कि आवश्यकता अत्यधिक स्पष्ट समझी जाए। उस मामले में शैक्षणिक अर्हताओं को वर्गीकरण की विधिमान्यता का अवधारण करने के लिए कसौटी माना गया था। विभेद भर्ती के स्रोत के सम्बन्ध में नहीं है, जैसा कि **रोशन लाल के मामले**[3] में था।

37. अनुच्छेद 14 और 16(1) में समता के सिद्धान्त का किसी ऐसे नियम से अतिक्रमण नहीं होगा जो प्रशासन की दक्षता की आधारभूत जरूरतों को पूरा करने के पश्चात् सेवाओं में उन व्यक्तियों का समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता हो, जिनका प्रतिनिधित्व नहीं

---

1 (1967) 2 एस० सी० आर० 29.

2 (1970) 1 एस० सी० सी० 377.

3 (1968) 1 एस० सी० आर० 185.

4 (1974) 1 एस० सी० आर० 771=[1973] 3 उम० नि० प० 1341.

है। अनुच्छेद 16(2) मूल वंश, जाति, उद्भव, जन्म-स्थान आदि सहित वर्गीकरण के कुछ आधारों का खंडन करता है। अनुच्छेद 16(4) यह स्पष्ट करता है कि पिछड़ेपन के आधार पर किया गया वर्गीकरण अनुच्छेद 16(2) के अन्तर्गत नहीं आता है और वह अनुच्छेद 16(1) के प्रयोजनार्थ विधिसम्मत है। यदि अखिल भारतीय सेवा में पिछड़े वर्गों या उस राज्य से, जिसका कम प्रतिनिधित्व हुआ हो, भिन्न किसी अन्य कम प्रतिनिधित्व प्राप्त विशिष्ट समुदाय को अधिमान दिया जाएगा तो ऐसा नियम अनुच्छेद 16(2) का उल्लंघन करेगा। पिछड़े हुए ऐसे समुदाय को जिसका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है, अधिमान देने वाला ऐसा ही सिद्धान्त विधिमान्य है और वह अनुच्छेद 14, 16(1) और 16(2) का उल्लंघन नहीं करेगा। अनुच्छेद 16(4) इस बाबत किसी भी संदेह को दूर कर देता है।

38. समता का सिद्धान्त सभी प्रक्रमों पर नियोजन को और सभी पहलुओं की बाबत अर्थात् आरम्भिक भर्ती, प्रोन्नति, सेवोन्मुक्ति, पेंशन और उपदान के संदाय को लागू होता है। प्रोन्नति के बारे में सामान्य सिद्धान्त या तो योग्यता एवं ज्येष्ठता या ज्येष्ठता एवं योग्यता होता है। ज्येष्ठता एवं योग्यता से यह अभिप्रेत है कि यदि प्रशासन की दक्षता के लिए अपेक्षित न्यूनतम अनिवार्य योग्यता हो तो ज्येष्ठ व्यक्ति को अधिमान दिया जाएगा, भले ही वह कम योग्य हो। इससे अनुच्छेद 14, 16(1) और 16(2) का अतिक्रमण नहीं होगा। इसी प्रकार ऐसे नियम से जिसमें यह उपबन्ध हो कि यदि अनिवार्य अपेक्षित योग्यता हो तो पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए पिछड़े हुए वर्ग के किसी सदस्य को अधिमान दिया जाएगा, अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 16(1) और 16(2) का अतिक्रमण नहीं होगा। विधिमान्यता की सुसंगत कसौटी यह ज्ञात करती है कि क्या अधिमान का नियम उस पिछड़े हुए समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करता है जिसका प्रतिनिधित्व नहीं है या उससे परे जाता है।

39. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को प्रोन्नति के लिए विशेष परीक्षाएं पास करने के लिए दो वर्ष की बढ़ी हुई कालावधि अनुज्ञात करने के लिए उनका वर्गीकरण न्यायपूर्ण और युक्तियुक्त वर्गीकरण है जिसका राज्याधीन नौकरी के विषय में सभी नागरिकों के लिए अवसर समता का उपबन्ध करने वाले उद्देश्य से तर्कपूर्ण

सम्बन्ध है। कार्यपालक आदेशों द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के व्यक्तियों को विशेष परीक्षाएं पास करने से अस्थायी छूटें देना 1 नवम्बर, 1956 को केरल के पृथक्करण से ही उसकी सेवा की शर्तों का एक अभिन्न अंग रहा है। त्रावनकोर-कोचीन राज्य में वही पद्धति थी। सरकारी सेवा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के साथ किया जाने वाला विशेष व्यवहार, जो कि कई वर्षों से सेवा की शर्तों का अंग बन गया है, आक्षेपकृत नियम और आक्षेपकृत आदेशों द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के वर्गीकरण को पूर्ण रूप से न्यायोचित ठहराता है। जो चीज सरकारी आदेशों द्वारा प्राप्त की गई थी अब उसे नियम 13-एए द्वारा कानूनी आधार प्रदान कर दिया गया है। इन नियमों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के व्यक्तियों को विशेष परीक्षाओं से छूट देने के प्रयोजनार्थ उनका वर्गीकरण न्यायोचित ठहराती है जिससे कि उनके पिछड़ेपन और राज्याधीन नौकरी में उनके कम प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखते हुए नौकरी के विषय में उनके लिए समान व्यवहार और अवसर समता को सुनिश्चित किया जा सके।

40. संविधान में कई ऐसे उपबन्ध हैं जिनमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का वर्गीकरण किया गया है और उसमें राज्य को यह विशेष आदेश दिया गया है कि वह उनके साथ विशेष और पक्षपातपूर्ण व्यवहार करे। अनुच्छेद 46 में राज्य की नीति का निदेशक तत्व अन्तर्विष्ट है जो कि देश के शासन में आधारभूत है। उक्त अनुच्छेद में राज्य को यह व्यादेश दिया गया है कि वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करे और सामाजिक अन्याय और शोषण से उनका संरक्षण करे। अनुच्छेद 335 में यह व्यादेश दिया गया है कि संघ या राज्य में सेवाओं और पदों पर नियुक्तियों के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा। अनुच्छेद 338 में राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए एक विशेषाधिकारी की नियुक्ति का उपबन्ध किया गया है जो संविधान के अधीन उनके लिए उपबन्धित रक्षोपायों से सम्बन्धित विषयों की जांच करेगा। अनुच्छेद 341 राष्ट्रपति को लोक अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूल वंशों या जनजातियों को विनिर्दिष्ट करने में समर्थ बनाता है जिन्हें

1975(9) eILR(PAT) SC 1

राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में अनुसूचित जातियां समझा जाएगा। अनुच्छेद 342 में अनुसूचित जनजातियों के बारे में ऐसी ही अधिसूचना के लिए उपबन्ध अन्तर्विष्ट है। अनुच्छेद 366(24) और (25) में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को परिभाषित किया गया है। आक्षेपकृत नियम और आदेशों में किया गया वर्गीकरण राज्य की सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की दृष्टि से ही किया गया है अन्यथा वे राज्य सेवाओं में निम्नतम स्तर पर ही पड़े रह जाएंगे।

41. संविधान के अनुच्छेद 335 में यह वर्णित है कि संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा। आक्षेपकृत नियम और आक्षेपकृत आदेश इसी सांविधानिक अधिदेश (मैं० डेट) से संबंधित हैं। अस्थायी कालावधि के लिए विशेष परीक्षाओं से शिथिलीकरण का उपबन्ध किए बिना अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के निम्न श्रेणी लिपिकों को उच्च श्रेणी लिपिकों के पदों पर पर्याप्त प्रोन्नतियां देना संभव न होता। केवल वे ही निम्न श्रेणी लिपिक, जो कि सेवा में ज्येष्ठ थे, नियम 13-एए और आक्षेपकृत आदेशों में अनुध्यात शिथिलीकरण का फायदा प्राप्त करेंगे। निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी को प्रोन्नति को केवल अर्हित परीक्षाएं पास करने के अधीन रहते हुए, ज्येष्ठता का नियम लागू होता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में परीक्षण सम्बन्धी अर्हता के अस्थायी शिथिलीकरण का समर्थन सेवाओं में उनके अपर्याप्त प्रतिनिधित्व और उनके सर्वांगीण पिछड़ेपन से होता है। पहले से ही सेवा में के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का नियम 13-एए के अधीन किया गया वर्गीकरण और विशेष परीक्षा पास करने से अस्थायी कालावधि के लिए उन्हें छूट देने के लिए पारित किए गए आक्षेपकृत आदेश लोक-सेवा में संतुलन स्थापित करने और लोक-सेवाओं में सब समुदायों में समता लाने के उनके दावों को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 335 के अधीन सांविधानिक अधिदेश के भीतर आ जाते हैं।

42. उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष गलत था कि आक्षेपकृत नियम और आदेशों के लागू करने का परिणाम अतिशयकारी है अर्थात्

51 पदों में से 34 पद अनुसूचित जातियों और अनसूचित जनजातियों के सदस्यों को दे दिए गए हैं। सेवाओं में पूर्ण रूप से की गई प्रोन्नतियां पदों की कुल संख्या के पचास प्रतिशत के लगभग भी नहीं हैं। अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां राज्य की जनसंख्या का दस प्रतिशत हैं। राज्य की राजपत्रित सेवा में उनकी संख्या दो प्रतिशत अर्थात् 8,740 में से 184 कही गई है। अराजपत्रित नियुक्तियों में उनकी संख्या केवल सात प्रतिशत अर्थात् 162,784 में से 11,437 है। अतः यह ठीक है कि नियम 13-एए और आदेश न केवल अनुच्छेद 335 के अधीन के निदेश को क्रियान्वित करने के लिए हैं अपितु अनुच्छेद 46 के अधीन नीति के निदेशक तत्व को भी क्रियान्वित करने के लिए हैं।

43. अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां जाति के मामूली अर्थ के अन्तर्गत जाति नहीं हैं। **भैयालाल** बनाम **हरिकिशन सिंह और अन्य**[1] में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि इस बारे में जांच कि क्या उसमें का अपीलार्थी दोहार जाति का था जिसे कि अनुसूचित जाति नहीं माना गया था और उसकी यह घोषणा कि यह चमार जाति का था जिसे कि अनुसूचित जाति माना गया था, अनुच्छेद 341 के उपबन्धों के कारण अनुज्ञात नहीं की जा सकती थी। कोई भी न्यायालय यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है कि कोई जाति या कोई जनजाति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति है। अनुसूचित जाति अनुच्छेद 366 (25) के अधीन यथा अधिसूचित जाति होती है। विस्तृत जांच के फलस्वरूप अनुच्छेद 341 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचना जारी की जाती है। अनुच्छेद 341 का उद्देश्य अनुसूचित जातियों के सदस्यों को, उस आर्थिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन को, जिससे वे ग्रस्त हैं, ध्यान में रखते हुए संरक्षण प्रदान करना है।

44. हमारे संविधान का लक्ष्य उन व्यक्तियों सहित, जो कि सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, सब नागरिकों को हैसियत की समता और अवसर समता प्रदान करना है। पिछड़े वर्गों के सदस्यों के दावे विधायी और कार्यपालक निकायों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व की अपेक्षा करते हैं। यदि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के वे सदस्य, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा पिछड़े वर्गों के सदस्य कहा गया है, प्रशासनिक दक्षता की न्यूनतम अनिवार्य अध्यपेक्षा रखते हैं तो समता कायम

[1] (1965) 2 एस० सी० आर० 877.

रखने के लिए और असमता को समाप्त करने के लिए न केवल प्रतिनिधित्व ही अपितु उन्हें अधिमान भी दिया जाना चाहिए। अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) पिछड़े वर्गों को समानता दिए जाने की स्थिति स्पष्ट करते हैं। पिछड़े वर्गों के विकास के लिए और उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए नियुक्तियों और पदों के आरक्षण के लिए विशेष उपबन्ध किए गए हैं। ये उपबन्ध अनुच्छेद 14, 15 (1) और 16 (1) में गारण्टीकृत समता की अन्तर्वस्तु को स्पष्ट करेंगे। समता की आधारभूत धारणा नियुक्ति के लिए अवसर समता है। प्रशासनिक दक्षता को सम्यक् रूप से ध्यान में रखते हुए पिछड़े वर्गों के सदस्यों के साथ अधिमानी व्यवहार का ही अर्थ सब नागरिकों के लिए अवसर समता हो सकता है। अनुच्छेद 16 के अधीन समता की अन्तर्वस्तु अनुच्छेद 14 के अधीन समता से भिन्न नहीं हो सकती। असमानों के लिए अवसर समता का अर्थ केवल असमता को बढ़ाना ही हो सकता है। अवसर समता तर्क सहित विभेद अनुज्ञात करती है और तर्क के बिना विभेद का प्रतिषेध करती है। तर्क सहित विभेद से विभेदपूर्ण व्यवहार के लिए तर्कसंगत वर्गीकरण अभिप्रेत है जिसका कि सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय उद्देश्य के साथ सम्बन्ध हो। प्रशासनिक दक्षता को सम्यक् रूप से ध्यान में रखते हुए सेवाओं में पिछड़े वर्गों का अधिमानी प्रतिनिधित्व अनुज्ञेय उद्देश्य है और पिछड़े वर्गों का वर्गीकरण तर्कसंगत वर्गीकरण है जिसे हमारे संविधान द्वारा मान्यता दी गई है। अतः चयन के स्तरों में भेदपूर्ण व्यवहार समता की धारणा के भीतर आता है।

45. प्रशासन की दक्षता की आधारभूत आवश्यकताओं को विनिर्दिष्ट करते हुए न्यून प्रतिनिधित्व वाले पिछड़े समुदाय के पक्ष में बनाया गया कोई नियम अनुच्छेद 14, 16(1) और 16 (2) का उल्लंघन नहीं करेगा। इस मामले में नियम प्रशासन की दक्षता की कसौटी का ह्रास नहीं करता है क्योंकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उन सदस्यों को, जिन्हें प्रोन्नत किया गया है, परीक्षाएं पास करने की अर्हता अर्जित करनी है। उनकी दशा में केवल इतना ही शिथिलीकरण किया गया है कि उन्हें अर्हता अर्जित करने के लिए अन्य व्यक्तियों की तुलना में दो वर्ष का अधिक समय दिया गया है। अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां पिछड़ेपन की द्योतक हैं। उन्हें अक्षम स्थिति से सुधार की ओर लाना हमारे संविधान का लक्ष्य है। यदि वर्गीकरण अनुच्छेद 14 के अधीन अनुज्ञेय है तो अनुच्छेद 16 के अधीन भी वह समान रूप से अनुज्ञेय है

क्योकि दोनों ही अनुच्छेदों में समता का सिद्धान्त अधिकथित किया गया है। समता और समता की धारणा यह है कि यदि व्यक्ति समान स्थिति में नहीं हैं तो उन्हें एक जैसा व्यवहार करके समान नहीं बनाया जा सकता है। आक्षेपकृत नियमों और आदेशों के अधीन अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों की प्रोन्नति अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से किए गए वर्गीकरण पर आधृत है। दक्षता को ध्यान में रखा गया है और उसका त्याग नहीं किया गया है।

46. अनुच्छेद 16(1) के अधीन सेवाओं में अवसर समता के लिए सभी विधिसम्मत ढंग उपलभ्य हैं। अनुच्छेद 16(1) की भाषा सकारात्मक है जब कि अनुच्छेद 14 की भाषा नाकारात्मक है। अनुच्छेद 16(1) में समाविष्ट समता को प्राप्त करने के ढंगों में से एक ढंग अनुच्छेद 16(4) में उपदर्शित है। अनुच्छेद 16(1) में 'समता' पद का प्रयोग करके उसे नियुक्ति से प्रोन्नति और सेवा के पर्यवसान तथा पेंशन और उपदान के संदाय तक नियोजन के सब मामलों से सम्बन्धित कर दिया गया है। अनुच्छेद 16(1) अनुच्छेद 16(2) द्वारा प्रतिषिद्ध विभेदों के आधार पर किए गए वर्गीकरण के सिवाय विधि के उद्देश्य और प्रयोजन या राज्य की कार्रवाई के आधार पर वर्गीकरण अनुज्ञात करता है। विधियों के समान संरक्षण में अनिवार्य रूप से वर्गीकरण भी आता है। वर्गीकरण की विधिमान्यता का निर्णय विधि के प्रयोजन के प्रति निर्देश से किया जाना चाहिए। इस मामले में वर्गीकरण न्यायोचित है क्योकि वर्गीकरण का प्रयोजन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को एक परिसीमित विस्तार तक प्रोन्नति द्वारा प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में समर्थ बनाना है। समय की दृष्टि से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के साथ उन्हें समता देने के प्रयोजनार्थ दक्षता की संगति के अनुसार भेदपूर्ण व्यवहार किया गया है।

47. पूर्वोक्त कारणों से मैं नियम 13-एए और प्रदर्श पी-2 और पी-6 की विधिमान्यता की पुष्टि करता हूं। अपील मंजूर की जाती है। उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है। पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं देंगे और वर्दाश्त करेंगे।

ज०/मि०

न्यायाधिपति एच० आर० खन्ना के मतानुसार (विसम्मत निर्णय)।

न्यायाधिपति खन्ना—

क्या राज्य सरकार संविधान के अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) के अधीन प्रोन्नति के प्रयोजन के लिए विभागीय परीक्षा पास करने से केवल अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को किसी विशिष्ट अवधि के लिए छूट प्रदान कर सकती है, एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जो इस अपील में विचारार्थ उत्पन्न हुआ है जिसे केरल राज्य और रजिस्ट्रेशन महा-निरीक्षक द्वारा प्रमाणपत्र लेकर केरल उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध फाइल किया गया है। उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन केरल राज्य के रजिस्ट्रेशन विभाग के एक कनिष्ठ श्रेणी लिपिक एन० एम० टॉमस, प्रत्यर्थी संख्या 1, द्वारा फाइल किए गए पिटीशन में इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में दिया था।

49. संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन विरचित केरल स्टेट एण्ड सबोर्डिनेट सर्विसिज, रूल्स, 1958 (जिसे इसमें इसके पश्चात् नियम कहा गया है) के भाग II में नियम 13 में खंड (ए) के अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी सेवा, वर्ग, प्रवर्ग या उसके काडर में की किसी श्रेणी या किसी पद पर नियुक्ति के लिए तब तक पात्र न होगा जब तक कि उसके पास विशेष ऐसी अर्हताएं न हों और उसने ऐसी विशेष परीक्षाएं पास न कर ली हों जैसी कि विशेष नियमों में उस निमित्त विहित की जाएं। जनवरी, 1963 में उच्च श्रेणी लिपिकों के पद पर प्रोन्नति के लिए कनिष्ठ श्रेणी लिपिकों के हेतु केरल सरकार द्वारा एक सम्मिलित परीक्षा विहित की गई थी। रजिस्ट्रेशन विभाग में उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में कनिष्ठ श्रेणी लिपिकों की प्रोन्नति के लिए कार्यालय प्रक्रिया की नियमावली, लेखा परीक्षा और रजिस्ट्रेशन-परीक्षा पास करना आवश्यक था। तथापि नियम 13-ए में दो वर्ष की अवधि के लिए नये सिरे से विहित की गई विशेष या विभागीय परीक्षा पास करने से अस्थायी छूट का उपबंध किया गया है। नियम 13-ए इस प्रकार है—

> *"नियम 13 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी जहां किसी प्रवर्ग, श्रेणी या उसमें के किसी पद के लिए या उसके किसी

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Notwithstanding anything contained in rule 13, where a pass in a special or departmental test is newly

वर्ग के लिए सेवा के विशेष नियमों द्वारा कोई विशेष या विभागीय परीक्षा पास करना नए सिरे से विहित किया गया हो वहां सेवा के ऐसे सदस्य को, जिसने उक्त परीक्षा पास न की हो किन्तु जो ऐसे वर्ग, प्रवर्ग, श्रेणी या पद पर नियुक्ति के लिए अन्यथा अर्ह और योग्य हो, परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने के दो वर्ष के भीतर उस पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया जा सकेगा। यदि इस प्रकार नियुक्त सदस्य उक्त परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने की तारीख से दो वर्ष के भीतर या जहां उक्त परीक्षा के अन्तर्गत व्यवहारिक प्रशिक्षण भी हो तो वहां ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त करने के प्रथम अवसर के पश्चात् दो वर्ष के भीतर परीक्षा पास नहीं कर लेता है तो उसे ऐसे वर्ग, प्रवर्ग या श्रेणी या पद पर प्रतिवर्तित कर दिया जाएगा जिससे उसे नियुक्त किया गया था और वह इस नियम के अधीन नियुक्ति के लिए पुनः पात्र नहीं होगा; 6

परन्तु यह कि इस प्रकार प्रतिवर्तित व्यक्ति इस नियम के अधीन केवल नियुक्ति के कारण ही यथास्थिति ऐसे वर्ग, प्रवर्ग, श्रेणी या पद की भावी नियुक्ति के किसी अधिमानी दावे का हकदार नहीं होगा जिस पर उसे इस नियम के अधीन नियुक्त किया गया था ।

---

prescribed by the Special Rules of a service for any category grade or post therein or in any class thereof, a member of a service who has not passed the said test but is otherwise qualified and suitable for appointment to such class, category, grade or post may within 2 years of the introduction of the test be appointed thereto temporarily. If a member so appointed does not pass the test within two years from the date of introduction of the said test or when the said test also involves practical training, within two years after the first chance to undergo such training he shall be reverted to the class, category, or grade or post from which he was appointed and shall not again be eligible for appointment under this rule :

Provided that a person so reverted shall not by reason only of the appointment under this rule be entitled to any preferential claim to future appointment to the class, category, grade or post, as the case may be to which he had been appointed under this rule :

परन्तु यह और कि अस्थायी छूट की कालावधि अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के किसी व्यक्ति की दशा में दो वर्ष तक बढ़ा दी जाएगी;

परन्तु यह भी कि यह नियम पुलिस विभाग के उप निरीक्षकों की पंक्ति से नीचे के कार्यपालक कर्मचारिवृन्द की प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित परीक्षाओं को लागू नहीं होगा।"

13 जनवरी, 1972 को नियम 13-एए नियमों में अंतःस्थापित किया गया था। यह इस प्रकार है:

*"13-एए. इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी सरकार आदेश द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य या सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हों, उक्त नियमों के नियम 13 या नियम 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाओं को पास करने से किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट दे सकेगी;

परन्तु यह कि यह नियम पुलिस विभाग के उपनिरीक्षकों की पंक्ति से नीचे के कार्यपालक कर्मचारिवृन्द की प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित परीक्षाओं को लागू नहीं होगा।"

13 जनवरी, 1972 को राज्य सरकार द्वारा निम्नलिखित आदेश जारी किया गया था—

Provided further that the period of temporary exemption shall be extended by the two years in the case of a person belonging to any of the Scheduled Castes or Scheduled Tribes:

Provided also that this rule shall not be applicable to tests prescribed for purposes of promotion of the executive staff below the rank of Sub-Inspectors belonging to the Police Department."

*"13-AA. Notwithstanding anything contained in these rules, the Government may, by order, exempt for a specified period, any member or members, belonging to a Schepuled Caste or a Scheduled Tribe, and already in service, from passing the tests referred to in rule 13 or rule 13-A of the said Rules:

Provided that this rule shall not be applicable to tests prescribed for purposes of promotion of the executive staff below the rank of Sub-Inspector belonging to the Police Department."

"केरल हरिजन संस्कारिका क्षेम समिति, त्रिवेन्द्रम, के अध्यक्ष ने सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया है कि बहुत बड़ी संख्या में हरिजन कर्मचारी परीक्षा सम्बन्धी अर्हताओं के न होने के कारण अपने पदों से तुरन्त प्रतिवर्तित किये जा रहे हैं और इसलिए उसने यह निवेदन किया है कि सभी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को दो वर्ष की कालावधि के लिए अनिवार्य विभागीय परीक्षाएं पास करने से तुरन्त अस्थायी छूट दी जाए।

(2) सरकार ने केरल लोक सेवा आयोग से परामर्श करके इस विषय में जांच की है और वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचिन जनजातियों के ऐसे सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हैं, सभी परीक्षाएं (एकीकृत और विशेष या विभागीय परीक्षाएं) पास करने से, दो वर्ष की कालावधि के लिए अस्थायी छूट देती है।

(3) उक्त छूट का फायदा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उन कर्मचारियों को उपलब्ध होगा जो पहले से ही साधारण नियम 13-ए के अधीन नये सिरे से विहित की गई परीक्षाओं को पास करने से अस्थायी छूट के फायदे उठा रहे हैं। उनके मामले में अस्थायी छूट उक्त पैरा 2 में वर्णित अस्थायी छूट के अवसान की तारीख को या विद्यमान अस्थायी छूट के अवसान की तारीख को, दोनों में से जो भी बाद में हो, समाप्त हो जाएगी।

(4) यह आदेश इस आदेश की तारीख से प्रभावी होगा।"

उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन के लम्बित रहने के दौरान छूट की अवधि बढ़ाने के लिए 11 जुलाई, 1974 को राज्य सरकार द्वारा एक और आदेश निम्नलिखित रूप में जारी किया गया था—

"(1) स० आ० (एम० एस०) सं० 22/पी० डी० तारीख 13-1-1974 . . . .

. . . .

. . . .

. . . .

आदेश

सरकार यह आदेश देती है कि ऊपर उल्लिखित सरकारी आदेश में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को सभी परीक्षाएं (एकीकृत और विशेष या विभागीय परीक्षाएं) पास करने से

दी गई अस्थायी छूट की कालावधि 13 जनवरी, 1974 से बढ़ा दी जाए जिससे कि उसके अन्तर्गत वह कालावधि भी आ जाए जिसके दौरान लोक सेवा आयोग द्वारा दो परीक्षाएं ले ली जाएं और उनके परिणाम प्रकाशित कर दिए जाएं जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति को परीक्षा में बैठने के दो अवसर प्राप्त हो सकें। सरकार यह भी आदेश देती है कि इन प्रवर्गों के कर्मचारियों के लिए परीक्षा-सम्बन्धी अर्हताएं अर्जित करने के लिए और समय नहीं बढ़ाया जाएगा ।"

50. प्रत्यर्थी सं० 1 ने 2 नवम्बर, 1971 तक सभी परीक्षाएं पास कर ली थीं। अन्य प्रत्यर्थियों को जो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य हैं और जो स्वयं भी राज्य के रजिस्ट्रेशन विभाग में कार्यकारी कनिष्ठ श्रेणी लिपिक थे, उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में प्रोन्नत कर दिया गया था यद्यपि उन्होंने वर्णित परीक्षाएं उत्तीर्ण नहीं की थीं। तथापि, प्रत्यर्थी संख्या 1 को इस तथ्य के बावजूद भी प्रोन्नत नहीं किया गया था कि उसने अपेक्षित परीक्षाएं पास कर ली थीं। 1972 में उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में प्रोन्नत 51 कनिष्ठ श्रेणी लिपिकों में से 34 व्यक्ति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के थे। तदुपरि प्रत्यर्थी सं० 1 ने 15 मार्च, 1972 को अनुच्छेद 226 के अधीन इस घोषणा के लिए पिटीशन फाइल किया कि नियम 13-एए जिसके अधीन प्रोन्नति के मामले में अन्य प्रत्यर्थियों को छूट दी गई है, संविधान के अनुच्छेद 16 का अतिक्रमण करता है। ऊपर उल्लिखित तारीख 13 जनवरी, 1972 वाले आदेश को अभिखंडित करने के लिए भी निवेदन किया गया था जिसके द्वारा दो वर्ष की अवधि के लिए आवश्यक विभागीय परीक्षा पास करने से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को वास्तव में छूट दी गई थी।

51. पिटीशन का अपीलार्थियों और अन्य प्रत्यर्थियों द्वारा प्रतिवाद किया गया था और उनकी ओर से यह प्रकथन किया गया था कि आक्षेपित नियम और आदेश अनुच्छेद 16 का अतिक्रमण नहीं करते हैं। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि नियम 13-एए शून्य है क्योंकि वह संविधान के अनुच्छेद 16 के खंड (1) और (2) का

अतिक्रमण करता है। तारीख 13 जनवरी, 1972 और 11 जनवरी, 1974 के आदेश तथा उन अन्य आदेशों को, जिनके द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उन सदस्यों को जिन्होंने विहित परीक्षा पास नहीं की थी, प्रोन्नत किया गया था, अभिखण्डित कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि 51 व्यक्तियों में से 34 व्यक्तियों की प्रोन्नति, यद्यपि उन्होंने आवश्यक परीक्षा पास नहीं की थी, प्रशासन कार्यपटुता बनाए रखने के लिए साधक नहीं हैं। इस बावत आदेश के बारे में यह उल्लेख किया गया था कि वह संविधान के अनुच्छेद 335 का अतिक्रमण करता है।

52. हमारे समक्ष अपील में अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील दी है कि आक्षेपित नियम और आदेश अनुच्छेद 16 के खंड (1) के अधीन सांविधानिक रूप से विधिमान्य हैं। इस संबंध में उसने हमारा ध्यान संविधान के अनुच्छेद 46 और 335 की ओर आकर्षित किया है। तथापि, महाधिवक्ता की ओर से यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि वह आक्षेपित नियम और आदेशों की विधिमान्यता कायम रखने के लिए संविधान के अनुच्छेद 16 के खंड (4) का अवलंब नहीं लेता है। अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलील को, महासोलिसिटर तथा प्रत्यर्थी संख्या 1 से भिन्न प्रत्यर्थियों की ओर से श्री गर्ग द्वारा भी समर्थन मिलता है। उक्त दलील के विपरीत प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से श्री कृष्णमूर्ति ने उच्च न्यायालय की दलील की सत्यता के पक्ष में दलील दी है और यह कहा है कि आक्षेपित नियम और आदेशों की विधिमान्यता अनुच्छेद 16 के खंड (1) के अधीन न्यायोचित नहीं ठहराई जा सकती।

53. संविधान के अनुच्छेद 16, 46 और 335 का इस प्रक्रम पर पुनः उल्लेख करना उचित होगा—

> "16(1) राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।
>
> (2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म-स्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जाएगा।

(3) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद् को कोई ऐसी विधि बनाने में बाधा न होगी जो प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अथवा उसके राज्यक्षेत्र में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी में या पद पर नियुक्ति के विषय में वैसी नौकरी या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य के अंदर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती हो।

(4) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिए उपबंध करने में कोई बाधा न होगी।

(5) इस अनुच्छेद की किसी बात का किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव न होगा जो उपबंध करती हो कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्य से सम्बद्ध कोई पदधारी अथवा उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का अनुयायी अथवा किसी विशिष्ट संप्रदाय का ही हो।

46. राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा ।

335. संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में प्रशासन-कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा।"

54. संविधान के अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समता का सिद्धांत अन्तर्निहित है। अनुच्छेद 15 केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद करने का प्रतिषेध करता है। अनुच्छेद 16 समता की गारण्टी के एक पहलू को दर्शित करता है। इस अनुच्छेद के अनुसार, राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर समता होगी। आगे यह उपबंध किया गया है कि कोई भी नागरिक केवल धर्म, मूलवंश

जाति, लिंग, उद्भव, जन्म-स्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में अपात्र न होगा और न उसके साथ विभेद किया जाएगा। अनुच्छेद 14, 15 और 16 के अन्तर्गत वह महत्व अन्तर्निहित है जो हमारे संविधान निर्माताओं ने समान व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए दिया था। राज्याधीन नौकरियों के मामले में ऐसी समता का एक विशेष महत्व है। उस क्षेत्र में किसी विभेद को रोकने के उद्देश्य से ही राज्याधीन किसी पद पर रोजगार या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर समता की गारण्टी देने के लिए अभिव्यक्त उपबंध किया गया था।

55. साथ ही साथ संविधान निर्माता जनता के अधिकांश वर्गों के पिछड़ेपन के बारे में भी जागरूक थे। यह भी स्पष्ट है कि उनके पिछड़ेपन के कारण जनसंख्या के वे वर्ग समाज के उन उन्नत वर्गों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में न होंगे जिन्हें समृद्धि और बेहतर शिक्षा की सभी सुविधाएं प्राप्त हैं। यह तथ्य कि प्रतिस्पर्धा के दरवाजे उनके लिए भी खुले हुए थे, पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों के लिए संतुष्टि मात्र होता क्योंकि प्रतिस्पर्धा में उनकी सफलता के अवसर उन अन्तर्निहित कमियों और असुविधाओं के परिणामस्वरूप बहुत कम थे जिनसे वे ग्रस्त रहे थे। परिणाम यह होता कि कुछ आपवादिक मामलों को छोड़कर पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों को उन नौकरियों में मुश्किल से ही कोई प्रतिनिधित्व मिल पाता जिनमें शैक्षणिक पृष्ठभूमि अपेक्षित है। इस प्रकार यह वस्तुतः उन व्यक्तियों का दमन करना होता जो पहले से ही शोषित हैं। चूंकि संविधान निर्माता उन उक्त असुविधाओं के बारे में जागरूक थे जिनसे पिछड़ा हुआ वर्ग ग्रस्त था इसलिए उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 46 में राज्य से यह अपेक्षा की कि वह जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशिष्टतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा। लोक नियोजन के क्षेत्र में उस उद्देश्य को कार्य रूप देने के लिए अनुच्छेद 16 के खंड (4) में एक उपबंध किया गया था कि इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिए उपबंध करने में कोई बाधा न होगी। और उस दशा में

जिसमें राज्य यह पाता है कि राज्याधीन नौकरियों में पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, यह उस पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों के पक्ष में नियुक्ति या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध बना सकता है। तथापि पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों के लिए स्थानों का आरक्षण इस प्रकार न किया जाएगा जिससे प्रशासन कार्यपटुता में कमी हो। यह तथ्य अनुच्छेद 335 में प्रकट किया गया है जिसके अनुसार संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों का ध्यान रखा जाएगा। उस दृष्टि से सेवा की कार्यपटुता को बनाए रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम शैक्षिक अर्हता और अन्य मानकों की अपेक्षा का अधित्यजन करना अनुज्ञेय नहीं है।

56. आगे यह और स्पष्ट है कि जनसंख्या के एक वर्ग के लिए पदों के आरक्षण का प्रभाव जनसंख्या के उस वर्ग को विशेष प्रसुविधाएं प्रदान करने का है क्योंकि इससे उस वर्ग के सदस्य राज्याधीन नौकरी या पदों को प्राप्त कर सकेंगे जिन्हें वे आरक्षण के अभाव में अन्यथा प्राप्त नहीं कर सकते थे। ऐसा अधिमानी व्यवहार राज्याधीन नौकरी या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर समता का स्पष्ट रूप से अस्वीकार करना है। अतः, अनुच्छेद 16 के खंड (4) का इस रूप में अर्थ लगाया गया है कि वह उस अनुच्छेद के खंड (1) का परन्तुक या अपवाद है। (देखिए—**महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे** बनाम **रंगाचारी**[1] और **टी० देवदासन** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[2])।

57. अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि व्यवहार की समता युक्तियुक्त वर्गीकरण करने का निषेध नहीं करती। इस संदर्भ में एक सर्वमान्य सिद्धांत का उल्लेख किया गया है कि संविधान का अनुच्छेद 14 वर्ग संबंधी विधान का निषेध करता है, किन्तु वर्गीकरण का निषेध नहीं करता। यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि अनुज्ञेय वर्गीकरण ऐसे बोधगम्य अंतर पर आधारित होना चाहिए जो उन व्यक्तियों या वस्तुओं को, जिन्हें साथ-साथ वर्गबद्ध कर दिया गया है, ऐसे व्यक्ति या वस्तुओं से विभेद करता है जिन्हें समूह के बाहर रखा गया है और अंतर का प्रश्नगत कानून द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से युक्तियुक्त

---

1 (1962) 2 एस० सी० आर० 586.

2 (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

संबंध होना चाहिए। यह दलील दी गई है कि यही सिद्धांत उस समय भी लागू होना चाहिए जब कि न्यायालय का राज्याधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता से संबंध हो। इस संबंध में मैं यह मत व्यक्त कर सकता हूं कि न्यायालय ने उन मामलों में अनुच्छेद 16 के खंड (1) के संदर्भ में वर्गीकरण के सिद्धांत को मान्यता दी है जहां नियुक्तियां दो विभिन्न स्रोतों से की गई हैं, अर्थात् गार्ड और स्टेशन मास्टर, प्रोन्नत और सीधे भर्ती किए गए व्यक्ति, डिग्री धारक और डिप्लोमा धारक (देखिए--**अखिल भारतीय स्टेशन मास्टर और सहायक स्टेशन मास्टर संगम और अन्य** बनाम **महाप्रबन्धक, मध्य रेलवे और अन्य**[1], **एस० जी० जयसिंघानी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] और **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा और अन्य**[3])। तथापि वह प्रश्न जिससे हमारा संबंध है यह है कि क्या वर्गीकरण के उक्त सिद्धांत का हम इस प्रकार विस्तार कर सकते हैं जिससे कि कर्मचारियों के प्रति इस आधार पर अधिमानी व्यवहार अनुज्ञात किया जा सके कि वे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य हैं। जहां तक इस प्रश्न का संबंध है मेरा यह मत है कि पिछड़े वर्ग के सदस्यों के लिए जिसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां भी हैं, अधिमानी व्यवहार का उपबंध वह है जो अनुच्छेद 16 के खंड (4) में अन्तर्निहित है जो उनके लिए पदों का आरक्षण अनुज्ञात करता है। अनुच्छेद 16 के खंड (1) की भाषा से ऐसे अधिमानी व्यवहार का अर्थ निकालने की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि उस खंड की भाषा से अन्य नागरिक के विरुद्ध किसी नागरिक के प्रति किसी अधिमान की अपेक्षा नहीं है। अनुच्छेद 16 के खंड (4) के इन प्रारंभिक शब्दों से, कि इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिए उपबंध करने में कोई बाधा न होगी, यह संकेत मिलता है कि यह खंड (4) ही के कारण है अन्यथा नागरिकों के किसी पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों का आरक्षण करना अनुज्ञेय नहीं होता।

---

[1] (1960) 2 एस० सी० आर० 311.

[2] (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

[3] (1974) 1 एस० सी० आर० 771 = [1973] 3 उम० नि० प० 1341.

58. **अखिल भारतीय स्टेशन मास्टर और सहायक स्टेशन मास्टर संगम वाले मामले**[1] में केन्द्रीय रेलवे के मार्ग-पार्श्व (रोड साइड) स्टेशन मास्टरों ने उच्चतर श्रेणी के स्टेशन मास्टरों के पदों पर गार्डों की प्रोन्नति की संवैधानिकता को चुनौती दी थी। पिटीशनरों की दलील यह थी कि प्रोन्नति के मार्ग (चैनल) प्रोन्नति के मामले में मार्ग-पार्श्व स्टेशन मास्टरों और गार्डों के बीच अवसर समता इंकार किए जाने की कोटि में आते हैं और इस प्रकार इससे संविधान के अनुच्छेद 16 के खंड (1) का अतिलंघन होता है। यह दलील दी गई थी कि प्रोन्नति के इस मार्ग का फायदा लेकर गार्ड उन मार्ग-पार्श्व स्टेशन मास्टरों की बजाय, जिन्हें वह वेतन उस समय मिला था जब कि वे काफी ज्येष्ठ हो चुके थे, काफी युवावस्था में स्टेशन मास्टर बन गए। पिटीशनरों के अनुसार मार्ग-पार्श्व स्टेशन मास्टर और गार्डों से कर्मचारियों के एक ही और उसी वर्ग का गठन होता है। इस न्यायालय ने वह दलील अस्वीकार कर दी और यह अभिनिर्धारित किया कि मार्ग-पार्श्व स्टेशन मास्टर गार्डों से पूर्णतया सुभिन्न और पृथक् श्रेणी के हैं और इसलिए मार्ग-पार्श्व स्टेशन मास्टरों और गार्डों के बीच प्रोन्नति के मामलों में अवसर समता का कोई प्रश्न नहीं हो सकता था। आगे यह अधिकथित किया गया था कि समान अवसर के इंकार किए जाने के प्रश्न पर केवल उसी श्रेणी के सदस्यों के बीच गंभीर विचार किए जाने की अपेक्षा है। नियोजन के मामले में समान अवसर का संविचार राज्य के अधीन विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के बीच लागू नहीं होता। नियोजन के मामले में अवसर समता केवल ऐसे व्यक्तियों के बीच ही प्रतिपादित की जा सकती है जो या तो समान रोजगार प्राप्त कर रहे थे या जिन्होंने समान रोजगार प्राप्त किया था। प्रोन्नति के मामलों में अवसर समता से कर्मचारियों के उसी वर्ग के सदस्यों के बीच समता अभिप्रेत होनी चाहिए, न कि पृथक्, स्वतंत्र श्रेणी के सदस्यों के बीच समता। **जगसिंघानी वाले मामले**[2] में विवाद आयकर सेवा की दो श्रेणियों वर्ग I श्रेणी II पर सीधे भर्ती किए गए व्यक्ति और वर्ग II से वर्ग I, श्रेणी II में प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों के बीच ज्येष्ठता के बारे में था, प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए सरकार ने सीधे भर्ती किए गए और प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए 2 से 1 का अनुपात नियत किया था। उसी संदर्भ और उन तथ्यों के आधार पर ही इस न्यायालय ने यह अधिकथित किया था कि यह कहना सही नहीं है कि

[1](1960) 2 एस० सी० आर० 311.
[2](1967) 2 एस० सी० आर० 703.

वर्ग I श्रेणी II सेवा पर नियुक्त सभी अधिकारी एक ही वर्ग का गठन करते हैं और यह कि यदि अधिकारियों की एक बार भर्ती कर ली गई हो तो सीधे भर्ती किए गए और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच कोई भी विभेद नहीं हो सकता था। यह वास्तव में ऐसा मामला है जिसमें दो विभिन्न स्रोतों से सेवा में भर्ती की गई है और उनके बीच ज्येष्ठता का समायोजन किया गया है। प्रोन्नति के मामले में समता का संविचार केवल तभी प्रतिपादित किया जा सकता है जब कि प्रोन्नत व्यक्तियों को एक ही स्थान से लिया गया हो। यदि अन्य स्रोत के संबंध में एक स्रोत का अधिमानी व्यवहार दो स्रोतों के बीच अंतर पर आधारित है और उक्त अंतर का पद की प्रकृति से युक्तियुक्त संबंध है तो विधिमान्य वर्गीकरण के आधार पर इसमें विधिसम्मत रूप से कायम रखा जा सकता है। उस मामले में वर्गीकरण का कारण यह था कि उच्च पद ऐसे अनुभवी अधिकारियों द्वारा भरे जाने चाहिएं थे जिनके पास न केवल योग्यता की उच्च उपाधि हो अपितु उन्हें प्रथम दर्जे का अनुभव भी हो। **त्रिलोकी नाथ खोसा वाले मामले**[1] में इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न उस नियम की विधिमान्यता की बाबत था जो यह उपबंध करता है कि केवल वे ही सहायक इंजीनियर, कार्यपालक इंजीनियरों के रूप में प्रोन्नति के लिए पात्र होंगे जिनके पास इंजीनियरी की उपाधि है। इस नियम की विधिमान्यता को उन सहायक इंजीनियरों द्वारा चुनौती दी गई थी। जो डिप्लोमा धारक थे और जिनके पास इंजीनियरी की उपाधि नहीं थी। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यद्यपि सीधे और प्रोन्नति द्वारा नियुक्त किए गए व्यक्तियों से सहायक इंजीनियरों के एक समान वर्ग का गठन होता है किन्तु फिर भी कार्यपालक इंजीनियरों के काडर में प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए शैक्षिक अर्हताओं के आधार पर उनका वर्गीकरण किया जा सकता है। उस नियम के बारे में जो यह उपबंध करता है कि डिप्लोमा धारकों को छोड़ कर ऐसी प्रोन्नति के लिए स्नातक ही पात्र होंगे, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण नहीं करता है। अतः यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त प्रत्येक मामले में इस न्यायालय का, कर्मचारियों की दो श्रेणियों से संबंध था जिनमें से प्रत्येक श्रेणी पृथक् और सुभिन्न वर्ग का गठन करती है इसलिए उन वर्गों के लिए विभेदकारी व्यवहार, उनकी शैक्षिक और अन्य अर्हताओं के संदर्भ में और इस तथ्य के परिणामस्वरूप

[1] (1974) 1 एस० सी० आर० 711=[1973]3 उम० नि० प० 1341.

कि उनसे सुभिन्न और एक पृथक् वर्ग का गठन होता है, कायम रखा गया था। यह दर्शित करने के लिए किसी और दलील की आवश्यकता नहीं है कि वह नियम, जो यह अपेक्षा करता है कि उस अधिकारी के पास इससे पूर्व कि उसे कार्यपालक इंजीनियर के पद पर प्रोन्नत किया जाए, इंजीनियरी की उपाधि होनी चाहिए, सेवा की कार्यपटुता के हित में परिकल्पित है। इस विचार पर आधारित वर्गीकरण स्पष्ट रूप से विद्यमान है। इसी प्रकार इस बात पर आधारित वर्गीकरण, कि एक श्रेणी के कर्मचारी सीधे भर्ती किए गए व्यक्ति हैं जब कि अन्य कर्मचारी प्रोन्नत व्यक्ति हैं, अनुज्ञेय वर्गीकरण है क्योंकि दोनों श्रेणियों के कर्मचारी दो पृथक् और सुभिन्न वर्गों का गठन करते हैं। यही बात मार्ग-पार्श्व स्टेशन मास्टरों और गार्डों के बारे में भी सही है। इनमें से प्रत्येक मामले में कर्मचारियों के वर्गीकरण को उनके प्रारंभिक नियोजन या शैक्षिक अर्हताओं की प्रकृति के साथ जोड़ा गया था और इसका इस तथ्य से कोई संबंध नहीं था कि वे जनता के किसी विशेष वर्ग के थे। पहली दो बातों पर आधारित वर्गीकरण को इसलिए कायम रखा गया था क्योंकि यह सेवा की कार्यपटुता के हित में परिकल्पित था और चूंकि उनसे इस तथ्य की दृष्टि से दो विभिन्न श्रेणियों का गठन होता था कि वे विभिन्न श्रेणियों के पदों पर प्रारंभिक रूप से नियुक्त किए गए थे। ऐसा वर्गीकरण अवसर समता के नियम से असंगत नहीं हैं। इसके विपरीत, इस बात पर आधारित वर्गीकरण, कि प्रोन्नति के लिए अधिमानी व्यवहार की दृष्टि से कर्मचारी जनता के एक विशेष वर्ग का है, अनुच्छेद 16(1) में सन्निविष्ट समता का स्पष्ट रूप से अतिक्रमण करता है। किसी भी मामले में न्यायालय ने अनुच्छेद 16(1) के अधीन ऐसे कर्मचारियों के बीच प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए वर्गीकरण और विभेदकारी व्यवहार को स्वीकार नहीं किया है और न ही कायम रखा है जिन कर्मचारियों के पास एक-सी शैक्षिक अर्हताएं होते हुए उन्हें पदों की एक ही श्रेणी पर, जैसा कि वर्तमान मामले में है, कनिष्ठ श्रेणी लिपिक के पद पर प्रारंभिक रूप से नियुक्त किया गया था। वर्तमान मामला पूर्ण रूप से **अखिल भारतीय स्टेशन मास्टर और सहायक स्टेशन मास्टर संगम वाले मामले**[1] में अधिकथित इस उक्ति के अंतर्गत आता है कि नियोजन के मामलों में अवसर की समता ऐसे व्यक्तियों के बीच प्रतिपादित की जा सकती है जो या तो एक ही प्रकार का रोजगार प्राप्त कर रहे थे या उन्होंने एक ही

[1] (1960) 2 एस० सी० आर० 311.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

प्रकार का नियोजन प्राप्त किया था। राज्याधीन पदों पर नियुक्ति और उच्चतर पदों पर प्रोन्नति का उल्लेख करने वाले विभिन्न नियमों का आवश्यक उद्देश्य सेवा की कार्यपटुता सुनिश्चित करना है। अनुच्छेद 16 के खंड (1) के अधीन कायम रखा गया वर्गीकरण का उद्देश्य प्रगति हेतु है और वह किसी मामले में उस उद्देश्य की प्राप्ति के विरुद्ध नहीं जाता। ऐसी विभागीय परीक्षाएं पास करने से जिन्हें प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित किया गया है, कर्मचारियों की किसी श्रेणी को दी गई छूट भले ही वह सीमित अवधि के लिए हो, सेवा की कार्यपटुता सुनिश्चित करने के उद्देश्य के लिए स्पष्ट रूप से हानिकर होगी। इस बाबत विवाद नहीं किया जा सकता कि विभागीय परीक्षाएं विभिन्न कर्मचारियों की कार्यपटुता आंकने और सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विहित की जाती हैं। कर्मचारियों को प्रोन्नत करना यद्यपि उन्होंने ऐसी कार्यपटुता विषयक परीक्षा पास न की हो शायद ही प्रशासन में कार्यपटुता सुनिश्चित करने की आवश्यकता से संगत हो सकता है।

59. इस तथ्य के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है कि विभागीय परीक्षाएं पास करने से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को दी गई छूट आत्यंतिक नहीं है अपितु एक सीमित अवधि के लिए ही है। हमारी राय में यह तथ्य आक्षेपित नियम और आदेशों को कोई विधिमान्यता प्रदान नहीं करेगा। कर्मचारियों के एक वर्ग को दी गई छूट में जब कि यह छूट शेष कर्मचारियों को नहीं दी जा रही है, उन व्यक्तियों के बीच स्पष्ट विभेद का संकेत है जिन्हें यह दी गई है और जिनको यह छूट नहीं दी गई है। यदि विभागीय परीक्षाओं का पास किया जाना प्रोन्नति की आवश्यक शर्त है तो एक वर्ग के कर्मचारियों की दशा में शर्तों का अनुपालन करने के लिए कहना और जबकि दूसरे प्रकार के कर्मचारियों की दशा में ऐसा न करना ईर्ष्यास्पद होगा। प्रारंभिक प्रश्न यह है कि क्या छूट दिया जाना सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय है। यदि उस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में हो तो इस तथ्य से कि छूट एक सीमित अवधि के लिए है, कोई तात्विक फर्क नहीं पड़ेगा। इनमें से किसी भी दशा में विभेद का वह दोष जो छूट दिए जाने के साथ लगा हुआ है इसे दूषित कर देगा और असांविधानिक बना देगा। सांविधानिक रूप से विधिमान्य होने के लिए, सीमित अवधि के लिए छूट

कर्मचारियों के एक ही वर्ग को नहीं दी जा सकती और यह छूट दूसरों को देने से नहीं रोकी जा सकती।

60. जो कुछ अनुच्छेद 16 का खंड (1) सुनिश्चित करता है वह राज्याधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित मामलों में व्यक्तिगत तौर पर सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता है। यह उन सभी को लागू होता है भले ही वह कम योग्य हों या अधिक योग्य हों। राज्याधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति के मामले में कुछ नागरिकों के लिए अधिमानी और पक्षपाती व्यवहार अवसर समता के सिद्धांत के प्रतिकूल होगा। अनुच्छेद 16 के खंड (1) द्वारा गारण्टी किए गए नियोजन के मामलों में अवसर समता के बारे में यह आशा है कि वह वास्तविक और कारगर हो। यह अमूर्त या भ्रामक नहीं है। यह एक ऐसा समादेश है जिसका पालन किया जाना है न कि इसकी अवहेलना की जानी है। इसे किसी छद्मवेष में कम नहीं किया जा सकता। किसी वर्ग को दिए गए विशेषाधिकार या छूट का, चाहे वह कितनी भी सीमित हो, प्रभाव यह होना चाहिए कि वह उस वर्ग को पक्षपाती व्यवहार दे और ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध विभेद का सृजन करे जिनको ऐसा विशेषाधिकार या छूट नहीं दी गई है। अवसर समता हमारे संविधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका संविधान की प्रस्तावना में पर्याप्ततः उल्लेख किया गया है और यह ऐसा मानदंड है जिससे राष्ट्र के सामाजिक, राजनैतिक और प्रशासनिक ढांचे को समर्थन और शक्ति मिलती है। जनता के एक वर्ग के लिए विशेष रूप से नियत विशेषाधिकार, फायदे, रियायत, छूट, समता के अवसर के संविचार के प्रतिकूल हैं। वे वास्तव में उस संविचार के महत्व को कम करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अधिमानी व्यवहार देने के प्रयोजन के लिए जिनकी विभिन्न स्रोतों से भर्ती नहीं की गई है और ऐसी दशा में जो अनुच्छेद 16 के खंड (4) के अंतर्गत नहीं आते हैं, वर्गीकरण को अस्वीकार करने का प्रभाव अनुच्छेद 16 के खंड (1) में सन्निविष्ट अवसर समता के सिद्धांत को यदि पूर्णतया समाप्त करना नहीं तो कम करना अवश्य होगा।

61. यह सिद्धांत कि वर्गीकरण को कम करने से समता कम हो जाती है, अनुच्छेद 16(1) के संदर्भ में विशेष रूप से सही है। अनुच्छेद 16(1) में वर्गीकरण के नए भावों को प्रारंभ करने से जैसा कि वर्तमान

मामले में किया गया है, आवश्यक रूप से यह प्रभाव होगा कि वर्गीकरण करने के छद्म रूप में राज्य में ऐसी शक्ति निहित हो जाएगी जिससे वह लोक नियोजन के लिए जनता के एक वर्ग के साथ पक्षपाती वर्ग के रूप में व्यवहार कर सकता है । अनुच्छेद 16 के खंड (2) द्वारा अधिरोपित परिसीमा भी अत्यधिक प्रभावी साबित नहीं हो सकती क्योंकि जैसा कि दलील के दौरान बताया गया है, वह खंड केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म स्थान, निवास-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में विभेद को रोकता है । खंड (2) में वर्णित आधारों से भिन्न आधारों का उल्लेख करके उस खंड को सीमित करना कठिन नहीं होगा ।

62. उन आधारों से परे जिन्हें अनुच्छेद 16 के खंड (1) के अधीन अब तक मान्यता प्रदान की गई है, वर्गीकरण के मामले का विस्तार करने का परिणाम यह होगा कि लोक नियोजन के लिए पक्षपाती और अधिमानी व्यवहार के लिए वर्ग पैदा होंगे और इस प्रकार इससे राज्याधीन नियोजन से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों को अवसर समता के संविचार का हनन होगा ।

63. संविधान के उपबन्धों का अर्थ लगाने में हमें सैद्धांतिक दृष्टिकोण से बचना चाहिए । संविधान राष्ट्रीय जीवन की गाड़ी है और वह सरकार की व्यावहारिक समस्याओं का उल्लेख करता है । अतः यह आवश्यक है कि संविधान के उपबंधों का अर्थ लगाते समय न्यायालयों द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धति वास्तविक होनी चाहिए न कि ऐसी होनी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप न्यायालय अवास्तविक सिद्धांत के जाल में फंस जाएं । वास्तव में जहां तक सिद्धांतों का संबंध है मानवीय विचार प्रतिबंध और अवरोध से मुक्त अपने पूर्ण प्रस्फुटन में ऐसे विभिन्न रूप ले सकते हैं जो प्रत्यक्षतः तार्किक और स्पष्ट कारणों को देखते हैं और उसका कारण देते हैं जो एक विशेष सिद्धांत के पक्ष में और उसके विरोध में पाए जा सकते हैं । यदि एक प्रख्यात विचारक एक दृष्टिकोण का समर्थन करता है तो विपरीत विचार के लिए समर्थन उतने ही समान विद्वान् विचारक के लेखों में पाया जा सकता है। वास्तव में जो भी निष्कर्ष हो ऐसी दलील जो तर्कयुक्त हैं, ऐसे निष्कर्ष के समर्थन में मिल सकती हैं । संविधान के अनुच्छेदों के अर्थान्वयन करने का महत्वपूर्ण कार्य मात्र अनुमान

प्रक्रिया नहीं है । इससे वह सही प्रयोजन और उद्देश्य मालूम करने का प्रयत्न करना आवश्यक हो जाता है जो उस अनुच्छेद के पीछे निहित है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समय के द्वारा अनुभव की गई आवश्यकताएं, विरोधी हितों का संतुलन कायम रखना सभी उस समय दृष्टि में होने चाहिए जब कि न्यायालय संविधान के उपबन्धों के अर्थान्वियन करने के महत्वपूर्ण कार्य में संलग्न हो । होम्स के इन शब्दों का कि विधि का जीवन तर्क नहीं है अपितु अनुभव है, उक्त संदर्भ में सीधा संबंध है ।

64. एक अन्य बात जिसे संविधान के उपबन्धों का अर्थान्वियन करते समय दृष्टि में रखना चाहिए यह है कि इस बात का पूर्वानुमान लगाना चाहिए कि उस अर्थान्वियन का न केवल प्रस्तुत मामले पर अपितु ऐसे भावी मामलों पर भी क्या असर होगा जो उन उपबंधों के अधीन पैदा हो सकते हैं । किसी एक मामले के तथ्यों के लिए अपनी चिंतावश हमें ऐसा अर्थान्वियन नहीं करना चाहिए जिसका प्रभाव यह हो कि उससे अवसर समता जैसे महान और अभीष्ट आदर्श का अतिक्रमण करने के सभी प्रकार के द्वार खुल जाएं । इसी प्रकार, आवश्यक कारण के अभाव में हमें ऐसे मार्ग से बचना चाहिए जिसका प्रभाव एक ऐसी सांविधानिक स्थिति को उलझन में डालने का है जो अनेक विनिश्चयों द्वारा अनेक वर्षों से सुनिश्चित रही है ।

65. एक उदार दृष्टिकोण, जो अनुच्छेद 14 के अधीन वर्गीकरण कायम रखने में कभी-कभी अपनाया जा सकता है, स्वयं मामले की प्रकृति में अनुच्छेद 16 के संदर्भ के अनुकूल नहीं होगा जब कि हम अनुच्छेद 14 के अधीन अन्तर्निहित उद्देश्य को दृष्टि में रखें । अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण का अत्यधिक विस्तृत और व्यापक क्षेत्र आता है । अतः यह अनुज्ञेय है कि इसकी परिधि के भीतर तभी तक नाना प्रकार के वर्गीकरणों को लाया जा सकता है जब तक कि वे युक्तियुक्त हों और उनका उसके उद्देश्य से युक्तियुक्त संबंध हो । इसके विपरीत अनुच्छेद 16 राज्याधीन पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर समता के सीमित क्षेत्र में प्रवर्तित होता है । लोक नियोजन के मामलों में पक्षपाती व्यवहार के लिए नागरिकों के वर्ग का वर्गीकरण, सिवाय ऐसे मामले के जिसके लिए अनुच्छेद 16 के खंड (4) में अन्तर्विष्ट अभिव्यक्त उपबंध

है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, स्वयं मामले की प्रकृति की दृष्टि से अनुच्छेद 16 के खंड (1) की अन्तर्निहित भावना के विपरीत होगा ।

66. इस मामले पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है । यदि यह अनुज्ञेय था कि अनुच्छेद 16 के खंड (1) के अधीन पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया जाए तो अनुच्छेद 16 में खंड (4) के अंतःस्थापित करने की कोई आवश्यकता न होती । ऐसी दशा में अनुच्छेद 16 में खंड (4) पूर्णतया कृत्रिम और व्यर्थ माना जाता। निर्वचन करने का सामान्य नियम यह है कि संविधान के किसी भी उपबंध के बारे में यह न समझा जाएगा कि वह व्यर्थ और कृत्रिम है । अतः न्यायालय ऐसा मत स्वीकार नहीं करेंगे जिसका प्रभाव अनुच्छेद 16 के खंड (4) को व्यर्थ और कृत्रिम बनाना हो ।

67. **मद्रास राज्य** बनाम **श्रीमती चम्पाकम दोराईराजन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से ऐसी दलील को अस्वीकार कर दिया था जिसका प्रभाव अनुच्छेद 16 के खंड (4) को पूर्णतया अनावश्यक और व्यर्थ मानना होगा। इस मामले में विचारार्थ जो प्रश्न पैदा हुआ वह यह था कि क्या मद्रास राज्य के इंजीनियरिंग और मैडिकल कालेज में प्रवेश के लिए जनता के विभिन्न वर्गों के लिए स्थानों का प्रतिशत निर्धारित करने वाले जाति पर आधारित सरकारी आदेश से मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उस जाति पर आधारित सरकारी आदेश से जिसके द्वारा स्थानों का प्रतिशत विभाजित किया गया था, संविधान के अनुच्छेद 29(2) का अतिलंघन होता है। उस मामले में इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की खंड न्यायपीठ ने संविधान के अनुच्छेद 16 के खंड (4) का उल्लेख किया और यह मत व्यक्त किया —

> "यदि अनुच्छेद 46 पर आधारित दलील सुदृढ़ होती तो अनुच्छेद 16 का खंड (4) पूर्णतया अनावश्यक और व्यर्थ होता। तथापि यह देखकर कि खंड (4) अनुच्छेद 16 में अन्तःस्थापित किया गया था, अनुच्छेद 29 से ऐसे अभिव्यक्त उपबन्ध के लोप की बाबत निश्चित रूप से यह माना

[1] (1951) एस० सी० आर० 525.

है कि वह महत्वपूर्ण है। यह भी हो सकता है कि संविधान का आशय किसी ऐसी शैक्षिक संस्था में, जो राज्य द्वारा संचालित है या राज्य की निधियों से सहायता प्राप्त करती है, प्रवेश पाने के मामलों में सांप्रदायिक बातों की शुरुआत करना कतई नहीं था। पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों का संरक्षण राज्याधीन नौकरियों में पिछड़े हुए वर्ग के सदस्यों की नियुक्ति की अपेक्षा कर सकता है और वह कारण, जिसकी वजह से यह शक्ति पिछड़े वर्ग के सदस्यों के लिए ऐसी नियुक्तियों के आरक्षण का उपबन्ध करने के लिए राज्य सरकार को दी गई है, उन परिस्थितियों में समझा जा सकता है। तथापि, वह विचार शैक्षिक संस्था में प्रवेश पाने की दशा में स्पष्ट रूप से आवश्यक नहीं समझा गया था और संभवतः अनुच्छेद 29 में से ऐसे खंड के लोप का जो अनुच्छेद 16 के खंड (4) के समान हो। यही कारण हो सकता है।"

इस न्यायालय के उक्त विनिश्चय के पश्चात् अनुच्छेद 15 का खंड (4) संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा संविधान में जोड़ा गया था और वह निम्नलिखित रूप में है—

"इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की किसी बात से राज्य को सामाजिक और शिक्षात्मक दृष्टि से पिछड़े हुए किन्हीं नागरिक वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने में बाधा न होगी।"

68. यदि पिछड़े हुए वर्गों के लिए स्थानों के आरक्षण की शक्ति पहले से ही अनुच्छेद 15 के खंड (1) में निहित थी तो ऊपर वर्णित मामले में परिभाषा स्वयं मामले की प्रकृति के कारण भिन्न होती और संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम के माध्यम से अनुच्छेद 15 में खंड (4) के पुरःस्थापित किए जाने की कोई आवश्यकता न होती। इस तथ्य पर कि अनुच्छेद 15 का खंड (4) अनुच्छेद 16 के खंड (4) के समान है। इस न्यायालय द्वारा **एम० आर० बालाजी और अन्य वनाम मैसूर राज्य**[1] वाले मामले में भी बल दिया गया था।

[1] (1963) सप्लीमेण्ट 1 एस० सी० आर० 439, 473.

69. यह दलील दी गई है कि **चम्पाकम वाले मामले** में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों से सम्बन्धित मत व्यक्त किए गए हैं जिनके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वे **केशवानन्द भारती के मामले**[2] में इस न्यायालय के विनिश्चय द्वारा उलट दिए गए हैं। हमारी राय में, इस पहलू पर कोई भी मत व्यक्त करना आवश्यक नहीं है। उन मतों की बावत किसी के जो भी कोई मत हों वे उस मामले में इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के इस सर्वसम्मत विनिश्चयों की सत्यता से विचलित नहीं होंगे कि अनुच्छेद 15 के खण्ड (4) जैसे उपबन्ध के न होने पर पिछड़ेपन के आधार पर इंजीनियरिंग और मेडिकल कालेजों में प्रवेश के लिए स्थानों का आरक्षण करना अनुज्ञेय नहीं था।

70. इस मामले पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। विभागीय परीक्षाएं कर्मचारियों की कार्यपटुता के मानक सुनिश्चित करने के लिए विहित की जाती हैं। 51 व्यक्तियों में से 34 व्यक्तियों को प्रोन्नत करना, यद्यपि उन्होंने विभागीय परीक्षाएं पास नहीं की हैं, और इसी दौरान ऐसे कर्मचारियों को प्रोन्नत न करना जिन्होंने विभागीय परीक्षाएं पास कर ली हैं, मुश्किल से ही प्रशासन कार्यपटुता के लिए साधक हो सकता है। अतः उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष में कोई कमी प्रतीत नहीं होती कि आक्षेपित प्रोन्नतियों से संविधान के अनुच्छेद 335 का भी अतिक्रमण होता है।

71. मैं यह बता दूं कि जहां तक पिछड़े हुए वर्गों की, जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य भी हैं, दशा सुधारने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने की आवश्यकता के बारे में प्रश्न का संबंध है इस बावत कोई विवाद नहीं है। हम सभी इस पर सहमत हैं। जनता के इन वर्गों का पिछड़ापन हमारी सामाजिक पद्धति पर कलंक है और इसे समाप्त करना होगा, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 46 में परिलक्षित है। इन वर्गों के व्यक्तियों की अतीत की उपेक्षा और शोषण का अन्त करने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की तुरन्त आवश्यकता हो सकती है ताकि उन्हें आम जनता के उन्नत वर्गों की समानता के आधार पर, जो वास्तविक और कारगार हो लाया जा सके। तथापि, वह प्रश्न, जिससे हमारा संबंध है, यह है कि क्या अपीलार्थियों

[1] (1951) एस० सी० आर० 525.

[2] (1973) सप्लीमेंट्री एस०सी०आर० 1. = [1973] 2 उम० नि० प० 159.

द्वारा अपनाया गया तरीका अनुच्छेद 16 के खंड (1) के अधीन सांविधानिक दृष्टि से अनुज्ञेय है। मेरी राय में उक्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में होगा। इस तथ्य के अलावा, कि अपीलार्थियों की दलील के स्वीकार करने का यह परिणाम होगा कि अनुच्छेद 16 के खंड (1) में अन्तर्विष्ट अवसर समता के सिद्धांत का ह्रास होगा, इससे यह भी आवश्यक हो जाएगा कि उन मतों को उलटना होगा जो अब तक **चम्पाकम**[1], **रंगाचारी**[2] और **देवदासन वाले मामलों**[3] में इस न्यायालय द्वारा कायम रखे गए हैं। मुझे ऐसे मार्ग की अपेक्षा करने का कोई पर्याप्त आधार प्रतीत नहीं होता। मेरी राय में राज्य को अनुच्छेद 16 के खंड (4) के अधीन पिछड़े हुए वर्गों के हितों की रक्षा करने के लिए उपबन्ध बनाने की पर्याप्त शक्ति है जो ऐसे पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के लिए नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का उल्लेख करता है जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवा में पर्याप्त नहीं है। मेरी राय में अनुच्छेद 16 के खंड (4) के अधीन राज्य की निष्क्रियता के कारण अनुच्छेद 16 के खंड (1) का अस्वाभाविक अर्थान्वयन न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। हमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा करने के लिए अपने काल्पनिक उत्साह के विरुद्ध भी जागरूक रहना है जिससे कि हमारी दृष्टि ऐसे विचलित न हो जाए और हमारे निर्णय पर हावी है न हो जाए जिससे हम अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) की अन्तर्वस्तु के सार से विचलित हो जाएं और उस खण्ड में अन्तर्निहित लोक नियोजन के मामले में अवसर समता के सिद्धांत से इस प्रकार हट जाएं जिससे कि यह मात्र पवित्र इच्छा और दुःसाध्य भ्रम बन जाए। लोक नियोजन के क्षेत्र में योग्यता, सेवा की कार्य कुशलता की सर्वोच्चता और विभेद के अभाव के आदर्श स्पष्ट रूप से समाप्त हो जाएंगे, यदि हम एक बार यह स्वीकार कर लें कि अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) द्वारा अपेक्षित सिद्धांतों से परे महत्वपूर्ण सिद्धांतों का भी अतिक्रमण किया जा सकता है।

72. अपील खर्चे सहित खारिज की जाती है।

सु०/क०

---

[1] (1951) एस० सी० आर० 525.

[2] (1962) 2 एस० सी० आर० 586.

[3] (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

न्यायाधिपति मैथ्यू के मतानुसार ।

न्यायाधिपति मैथ्यू—

इस मामले के तथ्य विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के निर्णय में वर्णित कर दिए गए हैं और उन्हें दोहराने की जरूरत नहीं है। विचारार्थ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या केरल स्टेट एण्ड सबॉर्डिनेट सर्विसिज़ रूल्स, 1958 (केरल राज्य और अधीनस्थ सेवा नियम, 1958) (प्रदर्श पी-1) में संशोधन द्वारा जोड़ा गया नियम 13-एए और उस नियम के अधीन सरकार द्वारा अपनी शक्ति के प्रयोग में पारित आदेश प्रदर्श पी-2 और पी-6 विधिमान्य हैं। वह नियम इस प्रकार है—

> *"नियम 13-एए. इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी सरकार आदेश द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य या सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हों, उक्त नियमों के नियम 13 या 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाओं को पास करने से किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट दे सकेगी।"

74. नियम 13-एए 13 जनवरी, 1972 को प्रवृत्त हुआ था और उसी दिन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उन सदस्यों को, जो कि पहले से ही सेवा में थे, कोई परीक्षा (एकीकृत और विशेष या विभागीय परीक्षाएं) पास करने से दो वर्ष की कालावधि के लिए अस्थायी छूट प्रदान करते हुए आदेश प्रदर्श पी-2 पारित किया गया था। तत्पश्चात् आदेश (प्रदर्श पी-6) और दो वर्ष की कालावधि के लिए छूट प्रदान करते हुए 11 जनवरी, 1974 को पारित किया गया था।

75. उच्च न्यायालय का मत यह था कि नियम 13-एए से अनुच्छेद 16(1) का अतिक्रमण हुआ था और अनुच्छेद 16(4), जिसमें नागरिकों के उन पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबन्ध किया गया है, लागू नहीं होता है। न्यायालय

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "13AA. Notwithstanding anything contained in these rules, the Government may, by order exempt for a specified period, any member or members, belonging to a Scheduled Caste or a Scheduled Tribe, and already in service, from passing the tests referred to in Rule 13 or Rule 13A of the said Rules."

1975(9) eILR(PAT) SC 1

ने **महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे और अन्य** बनाम **रंगाचारी**[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलम्बन किया था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 16(4) अनुच्छेद 16(1) का अपवाद है और इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 16(1) में आने वाले सभी विषय नहीं आते हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध केवल पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों और पदों के आरक्षण से है और अनुच्छेद 16(4) के बिना नियोजन के मामले में अवसर समता की गारण्टी के अधीन पिछड़े वर्गों के पक्ष में पदों का कोई आरक्षण नहीं हो सकता था।

76. केरल के विद्वान् महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि संविधान में अनुच्छेद 46 द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के प्रति बेहतर व्यवहार का व्यादेश दिया गया है और नियम 13-एए जोकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के ऐसे सदस्यों को जो कि पहले से ही सेवा में हैं नियमावली के नियम 13 और 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाएं पास करने से किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट देने के लिए सरकार को सशक्त करता है; समुदाय के कमजोर वर्ग के हितों की उन्नति के मूलभूत दायित्व के अनुसरण में राज्य द्वारा पारित विधि है। उन्होंने यह कहा कि अनुच्छेद 46 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्व का क्रियान्वयन किसी भी तरह से अनुच्छेद 16(1) के अधीन गारण्टीकृत अवसर समता के सिद्धान्त से असंगत नहीं होगा और एक ऐसा नियम, जो कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की दशा में कोई परीक्षा या परीक्षाएं पास करने से एक विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए अभिमुक्ति प्रदान करता हो किसी भी तरह से समुदाय के अन्य वर्गों को गारण्टीकृत अवसर समता के प्रतिकूल नहीं होगा। अनुच्छेद 46 में यह उपबन्ध किया गया है—

> 46. "राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"

77. न्यायाधिपति ब्राण्डीज़ ने यह कहा है कि किसी चीज़ को

---

[1] ए०आई०आर० 1962 एस०सी० 36.

समझने के पूर्व उनकी जानकारी होनी चाहिए और निर्णय देने के पूर्व उसकी समझ होनी चाहिए। अतः इस बात को प्रारम्भ में ही समझते हुए मामले पर विचार करना विचारों की स्पष्टता के लिए आवश्यक होगा कि अवसर समता से क्या अभिप्रेत है। अनुच्छेद 16(1) में नियोजन के मामले में सब नागरिकों के लिए अवसर समता का उपबन्ध किया गया है और इस बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि गारण्टीकृत समता एक व्यक्तिगत अधिकार है। अवसर समता की धारणा समता की अधिक व्यापक धारणा का एक पहलू है। समता के विचार के भिन्न-भिन्न अर्थ और अभिप्राय हैं। इसके कई पहलू और विवक्षाएं हैं। विधि के बारे में प्लेटो का यह टिप्पण समता की धारणा के सम्बन्ध में भी समान रूप से लागू होता है--"एक पूर्णतः साधारण सिद्धान्त कभी भी ऐसी वस्तुस्थिति को लागू नहीं किया जा सकता जो साधारण के विपरीत हो।" ('स्टेट्समैन' 294, जोवेट द्वारा अनूदित)। विभिन्न लेखक समता के एक प्रकार को दूसरे प्रकार की तुलना" में अधिक महत्व देते हैं, जैसे कि--विधि के समक्ष समता, आधारभूत मानवीय अधिकारों की समता, आर्थिक समता, अवसर समता या सभी व्यक्तियों के लिए विचार की समता।

78. औपचारिक समता सभी व्यक्तियों को समान मान कर प्राप्त की जा सकती है--'प्रत्येक व्यक्ति को एक गिना जाना है और किसी को भी एक से अधिक नहीं गिना जाना है'। किन्तु व्यक्ति सभी पहलुओं में एकसमान नहीं हैं। समता का दावा वस्तुतः अन्यायपूर्ण, अवांछित और अन्यायोचित असमताओं का विरोध है। यह सम्भाविता, आकस्मिक असमता, अन्यायपूर्ण शक्ति और स्पष्ट विशेषाधिकारों के विरुद्ध मानव का विद्रोह है। यद्यपि समता प्रदान करने का विनिश्चय बाह्य रूप से इस अभिकथित कारण से प्रेरित होता है कि सभी व्यक्ति एकसमान हैं तो भी जैसे ही हम नैतिक अर्थ में समता और भौतिक अर्थ में समता के बीच भ्रान्ति को दूर कर लेते हैं, हमें यह अहसास हो जाता है कि विपरीत बात सत्य है क्योंकि हमारे विचार में उचित रूप से इस कमी को पूरा करने के लिए कि व्यक्ति वास्तव में भिन्न-भिन्न ही पैदा होते हैं, कुछ समताओं का संप्रवर्तन किया गया है। अतः हमें न्याय प्राप्त करने के लिए कई पहलुओं में किसी प्रकार की आनुपातिक समता का आश्रय लेना होता है।

79. आनुपातिक समता का सिद्धान्त केवल तभी पूरा होता है है जब कि समान व्यक्ति के साथ समानता से व्यवहार किया जाए और असमान व्यक्तियों से असमानता से व्यवहार किया जाए। यह बात इस पेचीदा प्रश्न को उत्पन्न कर देगी—किस बात में समान और असमान ? अतः आनुपातिक समता के सिद्धांत में एक ऐसी कसौटी अन्तर्विष्ट है जिसके अनुसार भेदपूर्ण व्यवहार न्यायोचित होता है। यदि कोई ऐसा महत्वपूर्ण पहलू नहीं है जिसमें व्यक्तियों को प्रभेदित किया जा सकता है तो भेदपूर्ण व्यवहार अन्यायोचित होगा। किन्तु किस बात को ऐसे महत्वपूर्ण भेद के रूप में अनुज्ञात किया जाना है जो कि भेदपूर्ण व्यवहार को न्यायोचित ठहराएगी।

80. किसी राज्य के पदों के वितरण में किसी प्रकार की वैयक्तिक समता सुसंगत नहीं होती है, क्योंकि जब तक हम प्रश्नगत क्षेत्र में समुचित कसौटी को लागू न करें, यह प्रकट होगा कि किसी व्यक्ति का कद या उसका रंगरूप किसी पद के लिए उसकी पात्रता या उपयुक्तता का अवधारण कर सकता है। जैसा कि अरस्तू ने कहा है 'राजनीतिक पद पर दावे खेल की प्रतियोगिताओं में वीरता के आधार पर नहीं किए जा सकते। उस पद के अभ्यर्थियों के पास वे अर्हताएं होनी चाहिएं जिनसे कि उस पद का प्रभावशील उपयोग किया जा सकता है। किन्तु यह सिद्धान्त भी इस प्रश्न का कोई समाधानप्रद उत्तर नहीं देता है कि कब भेदपूर्ण व्यवहार किया जा सकता है। जैसा कि मैंने कहा है निस्सन्देह इस सिद्धान्त के संबंध में कोई अपवाद नहीं है कि यदि व्यक्तियों के साथ भिन्न रूप से व्यवहार किया जा रहा है या भिन्न व्यवहार किया जाना है तो उनके बीच कुछ सुसंगत अन्तर होना चाहिए। अन्यथा कुछ भेदपूर्ण बातों के अभाव में एक का भोजन दूसरे के लिए ज़हर हो सकता है। वास्तविक कठिनाई यह ज्ञात करने में उत्पन्न होती है कि सुसंगत भेद क्या है ?

81. यदि सब के साथ एक ही रीति से व्यवहार किया जाना है तो इसके साथ यह महत्वपूर्ण अपेक्षा होनी चाहिए कि हम में से कोई भी पालन-पोषण और शिक्षा में किसी अन्य व्यक्ति की तुलना में अच्छा या खराब नहीं होना चाहिए जो कि ऐसी मानवजाति के जैसी कि आजकल हम देखते हैं, लिए अप्राप्य आदर्श हैं। कुछ लोगों का विचार है कि अवसर समता की धारणा एक सन्तोषजनक धारणा है क्योंकि इसका

पूर्ण निरूपण इसे मानव समाज के किसी भी रूप से असंगत बना देता है। उदाहरणार्थ शिक्षा के लिए अवसर समता को देखा जा सकता है। यह समता स्कूलों में प्रारम्भ नहीं हो सकती है और इसलिए कुटुम्बों में एक समान व्यवहार की अपेक्षा करती है जो कि एक प्रकट अनधिसम्भाव्यता है। इस चीज को दूर करने के लिए सब बच्चों का राज्य के शिशुगृहों में पालन किया जाना चाहिए, किन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिशुगृहों को पूर्णतः एक ही ढंग से चलाया जाना होगा। क्या हम उन परिस्थितियों में भी किशोरों को अवसर समता की गारण्टी दे सकते हैं? लास्की ने इस मत को अच्छी तरह से व्यक्त किया है—

> "समता से दूसरी बात यह अभिप्रेत है कि सब व्यक्तियों के लिए पर्याप्त अवसर उपलभ्य हों। पर्याप्त अवसरों से हम इस अर्थ में समान अवसरों की विवक्षा नहीं कर सकते हैं कि इससे आरम्भिक अवसर की समानता विवक्षित है। व्यक्तियों की जन्मजात प्रतिभाएं किसी भी तरह से समान नहीं होती हैं। ऐसे बच्चे, जिनका ऐसे वातावरण में पालन-पोषण किया जाता है जहां कि बौद्धिक बातों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है, अवश्य ही ऐसे फायदों के साथ जीवन प्रारम्भ करेंगे जो कि कोई भी विधान प्रदान नहीं कर सकता है। माता-पिता का चरित्र अनिवार्य रूप से उन बच्चों के गुणों को बहुत अधिक प्रभावित करेगा जो उनके सम्पर्क में आते हैं। इसलिए जब तक कुटुम्ब प्रयास करता है—और इस बात के न होने की प्रत्याशा या वांछा करने के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता है—वे भिन्न-भिन्न वातावरण जो कि वह सृजित करेगा समान अवसरों की धारणा को बिल्कुल विलक्षण बना देंगे (देखिए—ली रेनवाटर द्वारा सम्पादित सोशल प्रॉबलम्स एण्ड पब्लिक पालिसी : इनइक्वैलिटी एण्ड जस्टिस, 'लिबर्टी एण्ड इक्वैलिटी' पृष्ठ 26 से 31)"

82. यद्यपि अवसर समता का पूर्ण अस्तित्व इस संसार में असम्भव है, तो भी प्रतिकारात्मक स्वरूप के अध्युपायों को जो कि अवसर समता को सुनिश्चित करने के लिए पार की जाने योग्य बाधाओं को कम करने के लिए परिकल्पित हैं, हानि पहुंचाने की दृष्टि से अनुच्छेद 16(1) लागू नहीं हो सकता है।

83. अवसर समता की धारणा यह है कि कोई सीमित माल वस्तुतः उन आधारों पर आवंटित किया जाएगा जो कि निगम्य रूप से उनके किसी ऐसे वर्ग को अपवर्जित न करे जो उसकी वांछा करता हो। देखिए —जस्टिस एण्ड इक्वैलिटी में विलियम्स का ('दि आइडिया ऑफ इक्वैलिटी, ह्यज ए० ब्यूडेन पृष्ठ 116) लोगों के सभी वर्ग देश की लोक सेवा में प्रतिनिधित्व की वांछा और उसका दावा करते हैं। किन्तु उपलभ्य पदों की संख्या परिसीमित होती है और इसलिए भले ही जनता के सभी वर्ग पदों को प्राप्त करने की वांछा करें, व्यवहारिक रूप से सब की इच्छा को पूरा करना असाध्य है। अतः प्रश्न यह है—किसी नागरिक या नागरिकों के वर्ग को प्रतिनिधित्व के उसके उचित अंश से किस आधार पर अपवर्जित किया जा सकता है? अनुच्छेद 335 यह धारणा करता है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का संघ और साथ ही राज्यों की लोक सेवा में प्रतिनिधित्व का दावा होता है और उस दावे पर संघ और राज्यों की सेवाओं पर नियुक्तियां करने में प्रशासन की दक्षता की संगति के अनुसार विचार किया जाना है। जैसा कि मैंने कहा है, अवसर समता की धारणा का अर्थ केवल तभी होता है जब कि कोई सीमित माल, या इस संदर्भ में, पदों की सीमित संख्या ऐसे आधारों पर आवंटित की जानी चाहिए जो निगम्य रूप से नागरिकों के उन वर्गों को जो उसकी वांछा करते हैं, अपवर्जित न करे।

84. अब प्रश्न यह है कि निगम्य अपवर्जन क्या है? इससे प्रश्नगत माल (पदों) के लिए समुचित या तर्कपूर्ण आधारों से भिन्न आधारों पर अपवर्जन अभिप्रेत है। यह धारणा केवल इतनी ही अपेक्षा नहीं करती है कि प्रश्नगत माल तक समुचित या तर्कसंगत आधारों से भिन्न आधारों पर पहुंच से अपवर्जन नहीं होना चाहिए अपितु माल के लिए समुचित समझे गए आधार स्वयं भी ऐसे होने चाहिएं कि समुदाय के सभी वर्गों के लोगों को अपनी तुष्टि करने का समान अवसर प्राप्त हो।

85. बर्नार्ड ए० सी० विलियम्स ने अपने लेख 'दि आइडिया ऑफ इक्वैलिटी' में (जस्टिस एण्ड इक्वैलिटी, ह्यज ए० ब्यूडेन) अवसर समता के सिद्धान्त के क्रियान्वयन का एक दृष्टान्त दिया है जो कि इस प्रकार है—

"मान लीजिए कि किसी समाज में योद्धा वर्ग की सदस्यता को बहुत अधिक सम्मान दिया जाता है, जिसके कर्त्तव्य अत्यधिक शारीरिक बल की अपेक्षा करते हैं। विगत काल में यह वर्ग कुछ धनी

1975(9) eILR(PAT) SC 1

परिवारों में से भर्ती किया जाता था; किन्तु समतावादी सुधारवादियों ने नियमों में परिवर्तन करा लिया जिसके द्वारा योद्धा एक उपयुक्त प्रतियोगिता के परिणाम के आधार पर समाज के सब वर्गों में से भर्ती किए जाते हैं। तथापि, इसका प्रभाव यह है कि अब भी लगभग सभी योद्धा धनी परिवारों से ही आते हैं क्योंकि शेष जनता गरीबी के कारण इतनी न्यूनपोषित है कि उनका शारीरिक बल इतने सुपोषित व्यक्तियों की तुलना में बहुत कम होता है। सुधारवादी यह विरोध करते हैं कि अवसर समता वस्तुतः प्राप्त नहीं की गई है और धनी व्यक्तियों का उत्तर यह है कि वस्तुतः यह प्राप्त हो गई है और अब निर्धनों को योद्धा बनाने का अवसर प्राप्त है—यह मात्र दुर्भाग्य है कि उनकी विशेषताएं ऐसी हैं कि वे परीक्षा पास नहीं करते हैं। वे यह कह सकते हैं कि 'हम किसी व्यक्ति को निर्धन होने के कारण अपवर्जित नहीं कर रहे हैं। हम व्यक्तियों को दुर्बल होने के कारण अपवर्जित करते हैं और यह दुर्भाग्य की बात है कि जो लोग दुर्बल हैं वे निर्धन भी हैं'।"

86. यह एक समाधानप्रद उत्तर नहीं है यद्यपि यह तर्कपूर्ण प्रतीत हो सकता है। अनुमानित अवसर समता पूर्णतः निरर्थक है। हम यह जानते हैं कि निर्धन होने और न्यून पोषित होने के बीच तथा न्यूनपोषित होने और शारीरिक रूप से दुर्बल होने के बीच मात्र कार्यकारण सम्बन्ध है। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि धन के वितरण को बदलने के लिए समाज में जो भी आर्थिक दशाएं विद्यमान हों, उनके अधीन रहते हुए कुछ किया जाना चाहिए। पूरी स्थिति ऐसी होने पर धनी व्यक्तियों द्वारा निर्धनों के दुर्भाग्य की दुहाई देना कुटिल प्रतीत होता है।

87. यह बात स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति 'क' और 'ख' दोनों को एक ही कसौटी लागू करके अपनी तुष्टि कर लेता है तो वह वस्तुतः 'क' और 'ख' को अवसर समता प्रस्थापित नहीं कर रहा है। ऐसी दशा में वह इतना ही करता है कि अनुकूल स्थितियों द्वारा यथा प्रभावित 'क' को वही कसौटी लागू करता है। ऐसी दशा में दशाओं को समान करने की बहुत आवश्यकता होती है। 'क' और 'ख' को अवसर समता देने में उनकी दशाओं की बावत जो कुछ 'क' और 'ख' के साथ किया जाता है,

जहां साध्य हो, वे स्वयं ही उसके भाग के रूप में उसमें आते हैं न कि स्वयं 'क' और 'ख' का भाग अन्तर्वलित होता है । इस प्रयोजनार्थ उनके अस्तित्व में उनका वह वातावरण नहीं होता जो स्वयं ही असमान है और असमता में योगदान देता है। (देखिए—विलियम कृत 'दि आइडिया ऑफ इक्वैलिटी')

88. **अहमदाबाद सेण्ट जेवियर कालेज सोसाइटी और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[1] में न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ और मैंने अपनी ओर से दिए गए निर्णय में पृष्ठ 798 पर इस प्रकार कहा है—

> "अल्पसंख्यकों की समस्या, वास्तव में, समानता की स्थापना की समस्या नहीं है क्योंकि यदि इस पर शाब्दिक रूप से विचार किया जाए तो ऐसी समानता से अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों का पूर्ण समरूप व्यवहार अभिप्रेत होगा। यह तो केवल विधिक दृष्टि से समानता का रूप लेगा किन्तु वस्तुतः असमानता ही होगी ।"

और यह कि—

> "यह स्पष्ट है कि विधि के क्षेत्र में समानता किसी भी प्रकार के भेदभाव को अपवर्जित करती है जब कि वास्तविक समानता के अन्तर्गत भिन्न व्यवहार की आवश्यकता अन्तर्वलित हो सकती है जिससे कि ऐसे परिणाम पर पहुंचा जा सके जो भिन्न-भिन्न स्थितियों के बीच सन्तुलन की स्थापना रखता है ।"

89. इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि यदि हम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को नियोजन के लिए अवसर समता प्रदान करना चाहते हैं तो हमें उनके सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक वातावरण पर भी विचार करना होगा । अनुच्छेद 46 में समाविष्ट निदेशक सिद्धान्त न केवल विधि निर्माता पर ही आबद्धकर होता है, जैसा कि मामूली तौर पर समझा जाता है, अपितु जब न्यायालय कोई विनिश्चय करे तब उसका दृष्टिकोण भी उस सिद्धान्त द्वारा समान रूप से प्रेरित होना चाहिए क्योंकि न्यायालय भी अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत 'राज्य' है और विधि बनाता है यद्यपि वह चाहे बड़े या छोटे रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाला ही हो । मैंने इस बात के लिए कारण कि न्यायालय

[1] (1974) 1 एस० सी० सी० 717=[1974] 2 उम० नि० प० 1303.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अनुच्छेद 12 के अधीन 'राज्य' किस प्रकार है **पूज्य श्री केशवानन्द भारती श्रीपदगालवरु और कुछ अन्य** बनाम **केरल राज्य और कुछ अन्य**[1] वाले मामले में अपने निर्णय में विस्तारपूर्वक स्पष्ट किए हैं।

90. अवसर समता केवलमात्र विधिक समता का विषय नहीं है। इसका अस्तित्व न केवल असमर्थताओं के अभाव पर निर्भर करता है अपितु समर्थताओं की विद्यमानता पर निर्भर करता है । यह वहीं तक और केवल वहीं तक प्रवृत्त होती है जहां तक कि समुदाय के प्रत्येक सदस्य को उसका जन्मस्थान या व्यवसाय या सामाजिक स्थिति चाहे जो कुछ भी हो, प्राप्त होती है और न केवल प्ररूपिक रूप से शारीरिक गठन के चरित्र के और ज्ञान के उसके प्राकृतिक सामर्थ्यों का पूर्ण रूप से उपभोग करने के समान अवसर [देखिए—आर० एच० टॉने, 'इक्वैलिटी' (1965) पृष्ठ 103]।

91. विधि के समक्ष समता या नियोजन के मामलों के अवसर समता की गारण्टी उससे कुछ अधिक की गारण्टी है जो कि औपचारिक समता द्वारा अपेक्षित है । इसमें उन व्यक्तियों के साथ भेदपूर्ण व्यवहार विवक्षित है जो असमान हैं । अतः समतावादी सिद्धान्त ने बढ़ते हुए इस विश्वास को बल दिया है कि असमताओं को दूर करना और मानवीय अधिकारों और दावों के प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करना सरकार का एक निश्चयात्मक कर्त्तव्य है। संविधान के भाग 3 में यथा अधिनियमित मूल अधिकार, यदि पूर्ण रूप से विचार किया जाए तो, अनिवार्यतः नकारात्मक स्वरूप के हैं । वे उस क्षेत्र को सीमाबद्ध कर देते हैं जिसमें सरकार को कोई अधिकारिता नहीं होनी चाहिए । इस क्षेत्र में यह धारणा की गई थी कि किसी नागरिक को स्वतन्त्र छोड़ दिए जाने के सिवाय सरकार के प्रति और कोई दावा करने का अधिकार नहीं है । किन्तु अनुच्छेद 16(1) की भाषा और अनुच्छेद 14 की भाषा में परस्पर विरोध है । जब कि अनुच्छेद 14 में इस निषेधाज्ञा पर जोर दिया गया है कि राज्य किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं रखेगा जो कि राज्य के कर्त्तव्य का नकारात्मक स्वरूप है, अनुच्छेद 16(1) में बल आज्ञापक पहलू अर्थात् इस बात पर दिया गया है कि राज्याधीन किसी पद पर नौकरी या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सब नागरिकों को अवसर समता प्राप्त होगी जिससे यह विवक्षित है कि

---

[1] (1973) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1=[1973] 2 उम० नि० प० 159.

सरकार की सकारात्मक कार्यवाही उस दशा में इस अनुच्छेद के अनुरूप होगी जब कि वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परिकल्पित है। यदि हमें समता प्राप्त करनी है तो हम बेपरवाह नहीं हो सकते। 'जब कि असमता सरल है क्योंकि यह किसी धारा के साथ ही प्रवाहित होने से अधिक किसी बात की मांग नहीं करती है, समता कठिन है क्योंकि इसमें धारा की विपरीत दशा में तैरना होता है।' [देखिए—आर० एच० टॉने, 'इक्वैलिटी' (1952) पृष्ठ 47]।

92. अब उस राजनीतिक सिद्धान्त का, जो कि संविधान के भाग 4 के अधीन नौकरियां, चिकित्सीय देख-रेख और वार्धक्य पेंशन आदि का उपबन्ध करने की सरकार की बाध्यता को स्वीकार करता है, मानवीय अधिकारों तक भी विस्तार है और वह समता और स्वतन्त्रता की उन्नति की सकारात्मक बाध्यता अधिरोपित करता है। अपने समुदाय के कमजोर वर्गों की सहायता करने की बाध्यता सहित 'राज्य के विचार के बल का प्रभाव सांविधानिक विधि में बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। इस विचार को अमरीका के मूलवंश के विभेद वाले कई मामलों में और काउन्सेल, अपील का प्रतिलेख, विशेषज्ञ साक्षियों आदि की व्यवस्था करके गरीबी के प्रभावों को दूर करने की राज्य से अपेक्षा करने वाले विनिश्चयों में भी अभिव्यक्त किया गया है। वर्तमान युग में यह भावना कि सामाजिक, आर्थिक या अन्य असमताओं को दूर करने के लिए सरकार का एक निश्चित उत्तरदायित्व है, सांविधानिक विधि की एक प्रबल धारणा है। जब कि न्यून विशेषाधिकारयुक्त व्यक्तियों के लिए विशेष रियायतों को सरलता से अनुज्ञात किया गया है, पारम्परिक रूप से उनकी अपेक्षा नहीं की गई है। अमरीका में दण्ड प्रक्रिया, मत देने के अधिकारों और शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए विनिश्चयों से यह ज्ञात होता है कि पारम्परिक दृष्टिकोण पूर्ण रूप से पर्याप्त नहीं हो सकता है। इन क्षेत्रों में इस बात की जांच कि क्या समता प्राप्त कर ली गई है, अब संख्यात्मक समता से ही समाप्त नहीं हो जाती है; अपितु समता सम्बन्धी खण्ड के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वह आनुपातिक समता के स्तर की अपेक्षा करता है जो राज्य से विधान बनाते समय धन की, शिक्षा की और अन्य परिस्थितियों की निजी असमताओं पर भी विचार करने की अपेक्षा करता है। (देखिए—'डेवेल्पमेण्ट—इक्वल प्रोटेक्शन' 82 हार्वर्ड ला रिव्यू, 1165)।

1975(9) eILR(PAT) SC 1

93. उन व्यक्तियों को, जो कि धन, शिक्षा और सामाजिक वातावरण की दृष्टि से वस्तुतः असमान हैं, विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में समान बनाने के लिए प्रतिकारात्मक राज्य कार्रवाई का विचार संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सुप्रीम कोर्ट द्वारा विकसित किया गया था। रूसो ने कहा है कि "ठीक इसलिए कि परिस्थितियों के बल की प्रवृत्ति समता को नष्ट करने की होती है, विधान के बल की प्रवृत्ति सदैव उसे बनाए रखने की होनी चाहिए (देखिए—'कण्ट्रेक्ट, सोशल,' ii, 11)।

94. **ग्रिफिन** बनाम **इलिनॉयस**[1] में एक निर्धन प्रतिवासी इलिनॉयस विधि द्वारा अनुदत्त एक अपील के अधिकार का फायदा उठाने में असमर्थ था क्योंकि वह आवश्यक प्रतिलेख नहीं खरीद सकता था। ऐसे प्रतिलेख एक समान फीस के संदाय पर सब प्रतिवादियों को उपलभ्य किए जाते थे; किन्तु व्यवहार में केवल धनी व्यक्ति ही प्रतिलेख खरीदने में और अपील करने में समर्थ होते थे। न्यायालय ने यह कहा कि "वहां पर समान न्याय नहीं हो सकता है जहां कि व्यक्तियों को जो विचारण प्राप्त होता है वह उस धनराशि पर निर्भर करता है जो कि उनके पास है" और यह अभिनिर्धारित किया कि इलिनॉयस की प्रक्रिया समान संरक्षण खण्ड का अतिक्रमण करती थी। राज्य को अपील पुनर्विलोकन उपलभ्य करना ही नहीं होता था किन्तु यदि वह ऐसा करता था तो वह उसे इस रीति से नहीं कर सकता था जो प्रतिवादियों को केवलमात्र उनकी निर्धनता के कारण पुनर्विलोकन प्राप्त करने से वंचित करने के लिए प्रवृत्त हो। इस अपेक्षा में भी ऐसा ही सिद्धान्त अन्तर्निहित है कि अपील में निर्धनों के लिए काउन्सेल की व्यवस्था की जाए। **डगलस** बनाम **कैलिफोर्निया**[2] के मामले में कैलिफोर्निया की प्रक्रिया अन्तर्वलित थी जो विचारण में दोषसिद्ध अपराधी प्रतिवादियों के लिए एक अपील के अधिकार की गारण्टी देती थी। निर्धनों की दशा में अपील न्यायालय यह ज्ञात करने के लिए अभिलेख की जांच करता था कि क्या अपील के लिए काउन्सेल नियुक्त करना प्रतिवादी के लिए लाभकर या अपील न्यायालय के लिए सहायताप्रद होगा। नकारात्मक उत्तर का यह अर्थ था कि निर्धन व्यक्ति को, यदि अपील करनी ही है तो अपने आप करनी होगी। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह प्रक्रिया विधियों के समान संरक्षण से प्रतिवादी

---

[1] 351 यू० एम० 12.

[2] 372 यू० एम० 353.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

को वंचित रखती थी । भले ही राज्य केवल सारवान दावों के लिए ही काउन्सेल की व्यवस्था करने के ग्रन्यथा विधिसम्मत उद्देश्य का ग्रनुसरण करता था तो भी उसने एक ऐसी स्थिति सृजित कर दी थी जिसमें केवल धनी व्यक्ति ही वकील कर सकते थे भले ही वह निस्सार ग्रपीलों के लिए हो--जब कि निर्धन व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकते थे ।

95. **ग्रिफ़िन**[1] **और डगलस**[2] दोनों मामलों में विसम्मति प्रकट करते हुए न्यायाधिपति हारलेन ने यह कहा कि उनमें इस पारम्परिक मत को त्यागा गया था कि संख्यात्मक रूप से समान व्यवहार समान संरक्षण खंड का ग्रतिक्रमण नहीं कर सकता है । उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इन विनिश्चयों का प्रभाव राज्य से विभेद की ग्रपेक्षा करना था । उन्होंने यह कहा--

> "इस प्रकार न्यायालय कम से कम दाण्डिक ग्रपीलों के इस क्षेत्र में, यह ग्रभिनिर्धारित करता है कि समान संरक्षण खण्ड राज्यों पर ग्रार्थिक परिस्थितियों के भेदों के फलस्वरूप होने वाली ग्रक्षमताग्रों को दूर करने का निश्चित कर्त्तव्य ग्रधिरोपित करता है। यह ग्रभिनिर्धारित करने से यह विलक्षण परिणाम निकलता है कि सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करने की राज्य को दी गई सांविधानिक चेतावनी से इस दृष्टान्त में यह ग्रभिप्रेत है कि इलिनॉयस को कुछ व्यक्तियों को वह देना होगा जिसके संदाय के लिए वह दूसरों से ग्रपेक्षा करता है............। उचित रूप से यह कहा जा सकता है कि इस मामले में वास्तविक विवाद्यक यह नहीं है कि क्या इलिनॉयस ने विभेद किया है ग्रपितु यह कि क्या विभेद करना उसका कर्त्तव्य है ।"

96. यद्यपि एक ग्रर्थ में न्यायाधिपति हारलेन के मत को ठीक समझा जा सकता है किन्तु यदि उनके मत के वास्तविक प्रभाव पर विचार किया जाए तो, हम यह समझने के लिए प्रेरित होते हैं कि उनके मत में इस बात को नहीं समझा गया है कि समता पर विचार करने के विभिन्न ढंग हैं ग्रौर एक पहलू में लोगों के साथ समान व्यवहार करने का परिणाम सदैव कुछ ग्रन्य पहलुग्रों में ग्रसमान व्यवहार होता है । न्यायाधिपति

[1] 351 यू० एस० 12.

[2] 372 यू० एस० 353.

हार्लेन के लिए समता का केवलमात्र महत्वपूर्ण प्रकार उन निबन्धनों पर संख्यात्मक समता थी जिन पर कि प्रतिलेख प्रतिवादियों को दिए जाते थे। दूसरी ओर बहुमत ने वह मत अपनाया जो कि सभी व्यक्तियों को **ग्रिफ़िन के मामले**[1] में दाण्डिक अपीलों के समान रूप से उपलभ्य करने की अपेक्षा करके और **डगलस के मामले**[2] में काउन्सेल सहित दाण्डिक अपीलें उपलभ्य करने की अपेक्षा करके वस्तुत: समता प्रदान करेगा। इस परिणाम को प्राप्त करने के लिए विधानमण्डल को समता के एक आनुपातिक स्तर का आश्रय लेना पड़ा था। ये मामले महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये मामले यह दर्शित करते हैं कि इस विशिष्ट संदर्भ में समता के किस प्रकार को महत्वपूर्ण समझा जाता है और इसलिए यह वह पहलू दर्शित करते हैं जिसमें लोगों के साथ समान रूप से व्यवहार करना आवश्यक है (देखिए—'डेवेल्पमेण्ट—इक्वल प्रोटेक्शन, 82 हार्वर्ड ला रिव्यू, 1165)।

97. **हारनर** बनाम **विरजीनिया बोर्ड ऑफ इलैक्शन्स**[3] में संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट का दृष्टिकोण देखा जा सकता है। उस मामले में न्यायालय ने प्रति व्यक्ति 1.50 डालर के विरजीनिया मतदान कर को, जो कि सब व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के लागू किया गया था, असांविधानिक घोषित कर दिया था। जैसा कि **ग्रिफ़िन**[1] और **डगलस के मामले**[2] में था, राज्य ने संख्यात्मक रूप से फीस की बाबत प्रत्येक व्यक्ति के साथ एकसमान व्यवहार किया था। जो कुछ विभेद था भी वह जरूरत के आधार पर फीस को समानुपातिक करने की राज्य की असफलता या दूसरे शब्दों में स्वयं मत की बाबत संख्यात्मक रूप से समान वितरण को लागू करने का परिणाम था। इसके परिणामस्वरूप पुन: यह अपेक्षा प्रकट होती है कि विधानमण्डल को अपनी नीतियां बनाते समय निजी परिस्थितियों के भेदों पर ध्यान देना चाहिए।

98. इसके लिए कोई कारण नहीं है कि इस न्यायालय को राज्य से यह अपेक्षा क्यों नहीं करनी चाहिए कि वह आनुपातिक समता का

---

[1] 351 यू० एस० 12.

[2] 372 यू० एस० 353.

[3] 383 यू० एस० 663.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

स्तर अपना ले जिसमें कि नागरिकों के किसी वर्ग की भिन्न-भिन्न दशाओं और परिस्थितियों को, जब कभी ऐसी दशाएं और परिस्थितियां आधारभूत अधिकारों या दावों के उपभोग तक उनकी समान पहुंच के मार्ग में रुकावट डालती हैं, ध्यान में रखा जाता है।

99. नियोजन के विषयों में अवसर समता की धारणा इतनी व्यापक है कि इसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को अन्य समुदायों के सदस्यों के बराबर बनाने के लिए प्रतिकारात्मक अध्युपाय भी आ जाते हैं जो कि उन्हें लोक सेवाओं में अपने प्रतिनिधित्व का हिस्सा प्राप्त करने में समर्थ बनाएं। तथाकथित उन्नत समुदायों का कोई सदस्य लोक सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के प्रतिनिधित्व का सम्यक् हिस्सा सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा बनाए गए किसी प्रतिकारात्मक अध्युपाय के संबंध में प्रतिवाद किस प्रकार कर सकता है ?

100. यह कहा गया है कि अनुच्छेद 16 (4) में पिछड़े वर्गों के पक्ष में पदों के आरक्षण के लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबन्ध किया गया है जिसके अन्तर्गत इस न्यायालय के विनिश्चय के अनुसार प्रोन्नति के प्रक्रम पर भी आरक्षण करने की राज्य की शक्ति होगी और इसलिए अनुच्छेद 16 (1) की व्याप्ति के अन्तर्गत विधान द्वारा या अन्यथा पिछड़े वर्गों को कोई ऐसी आकस्मिक सहायता देना नहीं आएगा जो कि यथार्थ संख्यात्मक समता का अल्पीकरण करेगी। यदि आरम्भिक प्रक्रम पर या प्रोन्नति के प्रक्रम पर या दोनों पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए नियोजन के मामले में अवसर-समता सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण करना आवश्यक है तो मुझे इसके लिए कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह बात अनुच्छेद 16 (1) के अधीन अनुज्ञेय क्यों नहीं है क्योंकि केवल यही उपबन्ध उस परिणाम को प्राप्त करने में जो कि अवसर समता उत्पन्न करेगी, उन्हें उन्नत समुदायों के बराबर बना सकता है। इस बात का अनुमान कि क्या अवसर समता है, परिणाम में प्राप्त होने वाली समता से ही लगाया जा सकता है। औपचारिक अवसर समता केवल अधिक शिक्षा और ज्ञान वाले व्यक्तियों को ही सभी पद हासिल कर लेने और शिक्षा तथा बुद्धि में कम भाग्यवान व्यक्तियों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ बनाएगी भले ही प्रतियोगिता निष्पक्ष हो। परिणाम की समता अवसर समता की कसौटी है।

101. अमरीका के शहराती क्षेत्र के एक प्रमुख विद्वान् डैनियल पी० मोयनिहान ने उस लेख में जिसका कि बहुत अधिक प्रचार किया गया था और जो कि उसने उस समय तैयार किया था जब कि वह असिस्टेण्ट सेक्रेटरी ऑफ लेबर था, इस समस्या को प्रकट किया है। मोयनिहान रिपोर्ट, जिस नाम से वह लेख ज्ञात हुआ था, में एक अवतरण में जो कि पूरा ही उद्धृत किए जाने योग्य है, इस प्रश्न पर इस प्रकार विचार किया गया है—

> "इस बात की मांग बढ़ती जा रही है कि एक समूह के बीच के लोगों की सफलता और असफलता के वितरण की अन्य समूहों के बीच के लोगों की सफलता और असफलता के साथ मोटे तौर पर तुलना की जानी चाहिए। यह बात पर्याप्त नहीं है कि सब व्यक्ति एक जैसी दशाओं में ही आरम्भ करें, यदि एक समूह के सदस्य लगभग प्रारम्भ से ही आगे हों और दूसरे समूह के व्यक्ति प्रारम्भ से ही पीछे हों। अमरीका में जाति सम्बन्धी राजनीति इसी के बारे में है और मुख्य रूप से इस नई पारम्परिक और स्थापित रूपरेखा में नीग्रो अमरीकियों की मांगें पेश की जा रही हैं।
>
> इसमें शब्दार्थ सम्बन्धी बात को समझना है। अवसर समता की मांग को गोरे अमरीकियों ने साधारण तौर पर स्वाधीनता के लिए मांग के रूप में समझा है जो कि —मतदान स्थल पर, छात्रवृत्ति परीक्षाओं में, कार्मिक कार्यालय में, प्रसाधन बाजार में—जीवन की प्रतियोगिताओं से अपवर्जित न किए जाने की मांग है। वस्तुतः स्वाधीनता की यह मांग है कि प्रत्येक व्यक्ति ऐसे विषयों में अपने भाग्य को आजमाने या अपनी निपुणता को परखने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए। किन्तु इन अवसरों से अनिवार्य रूप से समता उत्पन्न नहीं होती है। इसके विपरीत इस सीमा तक कि विजेताओं में पराजित विवक्षित हैं, अवसर समता लगभग परिणामों की असमता सुनिश्चित करती है।
>
> शब्दार्थ की दृष्टि से बात यह है कि अब अवसर समता का नीग्रो व्यक्तियों के लिए उससे भिन्न अर्थ है जो कि गोरे व्यक्तियों के लिए उसका है। यह केवल स्वाधीनता के लिए ही मांग नहीं है (या कम-से-कम अब नहीं रह गई है) अपितु समूह परिणामों

के रूप में समता के लिए मांग भी है। बेयार्ड रस्टिन के शब्दों में 'अब इसका सम्बन्ध न केवल पूर्ण अवसर के मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करने से है अपितु इसका सम्बन्ध समता के तथ्य को प्राप्त करने के साथ भी है।' समता से रस्टिन का अभिप्राय नीग्रो व्यक्तियों के बीच प्राप्तियों का वितरण था जिसकी गोरे व्यक्तियों के बीच के वितरण से मोटे तौर पर तुलना की जा सकती हो। (देखिए—दि मोयनिहान रिपोर्ट एण्ड दि पोलिटिक्स ऑफ कण्ट्रोवरसी, सम्पादक ली रेनवाटर और विलियम एल० यान्फे, पृष्ठ 49)।"

102. संयुक्त राज्य अमरीका ने 1954 में स्कूल पृथक्करण की सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चय द्वारा निन्दा किए जाने से प्रारम्भ करते हुए अन्ततः अपने आदर्शों और काले व्यक्तियों के प्रति अपने व्यवहार के बीच के अन्तर को कम करना प्रारम्भ कर दिया था। जैसा कि न्यायालयों के विनिश्चयों और कांग्रेस की सिविल अधिकारों से संबंधित विधियों में प्रतिबिम्बित होता है, प्रथम कदम द्वारा मूलवंशीय विभेदों के विधिक और विधिककल्प प्रकारों को ही हटाया गया था। जब कि इन कार्रवाईयों द्वारा वास्तविक समता या अवसर समता भी उत्पन्न नहीं हुई थी, इन से तर्कसंगत रूप से आगामी कदमों को उठाना अनिवार्य हो गया अर्थात्—वास्तविक समता की अधिसम्भाव्यता सृजित करने के लिए सरकारी शक्ति का निश्चित प्रयोग। प्रोफेसर लिप्सेट के शब्दों में—'सम्भवतः अमरीकी नीग्रो की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बृहत्तर समाज में संचरण सुनिश्चित करने के लिए (विधिक) समता पर्याप्त नहीं है।' (देखिए—दि अमेरिकन डेमोक्रेसी, मैग्रेथ, कार्नवैल और गुडमैन, पृष्ठ 18)।

103. मैं इस बात से सहमत हूं कि अनुच्छेद 16 (4) का निर्वचन उस दशा में अनुच्छेद 16 (1) के अपवाद के रूप में किया जा सकता है जब कि अनुच्छेद 16 (1) में अनुध्यात अवसर समता निस्सार हो और उसे संख्यात्मक समता की धारणा में परिवर्तित कर दिया जाता है जिसमें कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि को ध्यान में नहीं रखा जाता है। यदि अनुच्छेद 16 (1) के अधीन गारण्टीकृत अवसर समता से प्रभावशील सारवान समता अभिप्रेत है तो अनुच्छेद 16 (4) अनुच्छेद

1975(9) eILR(PAT) SC 1

16 (1) का अपवाद नहीं है। यह केवल उस सीमा को दर्शित करने का प्रबल ढंग है जिस तक अवसर समता को ले जाया जा सकता है अर्थात् आरक्षण करने की सीमा तक भी।

104. राज्य कोई भी ऐसा अध्युपाय अपना सकता है जो कि लोक सेवा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करे और अवसर समता सुनिश्चित करने के लिए प्रतिकारात्मक अध्युपाय के रूप में उसे न्यायोचित ठहरा सकता है बशर्ते कि उस अध्युपाय में प्रशासन की दक्षता के लिए अनिवार्य न्यूनतम आधारभूत अर्हता के अर्जन से अभिमुक्ति न दे दी गई हो।

105. इस बात से बिल्कुल कोई अन्तर नहीं पड़ता कि क्या नियम 13-एए का फायदा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के केवल उन्हीं सदस्यों तक परिसीमित है जो कि उस समय सेवा में हैं और इसे पिछड़े हुए वर्गों के सब सदस्यों तक विस्तारित नहीं किया गया है। विधि निर्माता को उस स्थान पर बुराई को दूर करने की स्वाधीनता होनी चाहिए जहां पर कि वह बहुत गम्भीर प्रतीत हो।

106. अनुच्छेद 16 (1) सभी क्षेत्रों में समता सुनिश्चित करने की व्यापक स्कीम का एक भाग मात्र है। यह अनुच्छेद 14 और 15 में समाविष्ट विधि के अधीन समता की बृहत्तर धारणा को लागू करने का एक दृष्टान्त है। अनुच्छेद 16 (1) उसी प्रकार वर्गीकरण अनुज्ञात करता है जिस प्रकार कि अनुच्छेद 14 (देखिए—**एस० जी० जयसिंघानी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1]; **मैसूर राज्य और एक अन्य** बनाम **वी० पी० नरसिंह राव**[2] और **सी० ए० राजेन्द्रन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3])। किन्तु वर्गीकरण द्वारा, केवल मूलवंश, जाति या अनुच्छेद 16 (2) में उल्लिखित अन्य बातों के आधार पर कोई प्रभेद नहीं किया जा सकता है।

107. अनुच्छेद 16 (2) में 'जाति' शब्द के अन्तर्गत 'अनुसूचित जाति' नहीं है। अनुच्छेद 366 (24) में 'अनुसूचित जातियों' की परिभाषा से ऐसी जातियां, मूलवंश या जनजातियां अभिप्रेत हैं जो कि अनुच्छेद 341

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 703, 712.

[2] (1968) 1 एस० सी० आर० 407, 410.

[3] (1968) 1 एस० सी० आर० 721, 729.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जातियां समझी जाती हैं । यह परिभाषा यह दर्शित करती है कि राष्ट्रपति की अधिसूचना के आधार पर ही अनुसूचित जातियां अस्तित्वशील हो जाती हैं। यद्यपि अनुसूचित जातियों के सदस्य जातियों, मूलवंशों या जनजातियों से ही आते हैं तो भी राष्ट्रपति की अधिसूचना के आधार पर वे एक नई हैसियत अर्जित कर लेते हैं। इसके अलावा यद्यपि जनजाति के सदस्यों को अनुसूचित जातियों में सम्मिलित किया जा सकता है, इस रूप में जनजाति को अनुच्छेद 16 (2) में उल्लिखित नहीं किया गया है।

108. कोई वर्गीकरण उस दशा में युक्तियुक्त होता है जब कि उसमें वे सब व्यक्ति सम्मिलित हों जो विधि के प्रयोजन की बाबत समान स्थिति में हों। दूसरे शब्दों में वर्गीकरण किसी युक्तियुक्त आधार पर किया जाना चाहिए जो कि उन व्यक्तियों को, जिन्हें एक समूह में रखा गया है, प्रभेदित करे और प्रभेद के आधार का नियमों द्वारा या प्रश्नगत नियमों द्वारा भी प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों से तर्कसंगत सम्बन्ध होना चाहिए। निगम्य रूप से यह धारणा करना भूल है कि एक ही वर्ग के भीतर अर्थात् निम्न श्रेणी लिपिकों के बीच वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। यदि ऐसा बोधगम्य भेद है जो उस वर्ग के एक समूह को शेष समूहों से पृथक् करता है और उस भेद का वर्गीकरण के उद्देश्य के साथ सम्बन्ध है तो उस वर्ग के भीतर ही और अधिक वर्गीकरण के बारे में मुझे कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। निस्सन्देह यह विरोधाभास है कि यद्यपि एक अर्थ में वर्गीकरण से असमता हो जाती है, उस दशा में यह समता का सम्प्रवर्तन करता है जब कि उसका उद्देश्य एक वर्ग के अधीन उन व्यक्तियों के साथ पर्याप्त और न्यायपूर्ण कारणों से भेदपूर्ण व्यवहार करना है जिनकी विशेषताएं एक जैसी ही हैं। इस दृष्टि से मुझे इस बारे में कोई सन्देह नहीं है कि **अखिल भारतीय स्टेशन मास्टर और सहायक स्टेशन मास्टर संगम** बनाम **महाप्रबन्धक, मध्य रेलवे और अन्य**[1], **एस० जी० जयसिंघानी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] तथा **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा और अन्य**[3] में अधिकथित सिद्धान्त इस मामले को लागू नहीं होता है।

---

[1] (1960) 2 एस० सी० आर० 311.

[2] (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

[3] (1974) 1 एस० सी० आर० 771=[1973] 3 उम० नि० प० 1341.

109. अनुच्छेद 16(1) और अनुच्छेद 16(2) नियुक्ति या प्रोन्नति के लिए युक्तियुक्त अर्हता विहित किए जाने का प्रतिषेध नहीं करते हैं। किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति के लिए उचित रूप से नियत की गई किसी अर्हता के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध जो सब लोगों को लागू होता हो, अनुच्छेद 16(1) के अधीन अवसर समता के सिद्धान्त के अनुरूप होगा। (देखिए—**महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे** बनाम **रंगाचारी**[1])।

110. नियम 13 में यह उपबन्ध किया गया है कि कोई व्यक्ति किसी सेवा में नियुक्ति का पात्र तब तक नहीं होगा जब तक कि वह विशेष अर्हता न रखे और जब तक उसने ऐसी विशेष परीक्षाएं पास न कर ली हों जो कि उस निमित्त विशेष नियमों द्वारा विहित की गई हों या ऐसी विशेष अर्हता न रखता हो जो कि उक्त विशेष अर्हता या विशेष परीक्षाओं के समतुल्य समझी जाती है।

111. नियम 13-एए के मुख्य उपबन्ध में यह उपबन्ध किया गया है कि नियम 13 में किसी बात के होते हुए भी, जहां पर किसी विशेष या विभागीय परीक्षा को पास करना किसी प्रवर्ग, श्रेणी या उसमें के पद या उसके किसी वर्ग के लिए सेवा के विशेष नियमों द्वारा अब विहित किया गया हो वहां सेवा का ऐसा सदस्य जिसने उक्त परीक्षा पास न की हो किन्तु जो ऐसे वर्ग, प्रवर्ग, श्रेणी या पद में नियुक्ति के लिए अन्यथा अर्हित और समुपयुक्त हो तो वह परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने से दो वर्ष के भीतर उस पद पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया जा सकेगा।

112. नियम 14 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की नियुक्ति के आरक्षण के लिए उपबन्ध किया गया है।

113. नियम 13-एए उच्चतर प्रवर्ग या वर्ग में प्रोन्नति के लिए अपेक्षित न्यूनतम अर्हता से अभिमुक्ति प्रदान करने के विचार से अधिनियमित नहीं किया गया है, अपितु केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को वह अर्हता अर्जित करने में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त समय देने के विचार से अधिनियमित किया गया है। नियम 13-एए में किए गए वर्गीकरण का अर्थात् अनुसूचित जातियों और अनुसूचित

1 (1962) 2 एस० सी० आर० 586.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

जनजातियों के सदस्यों को एक वर्ग में रखनें ग्रौर नियम 13 ग्रौर नियम 13-ए द्वारा परीक्षा सम्बन्धी अर्हता अर्जित करने के लिए उनके लिए समय बढ़ाने का प्रयोजन परीक्षा के पास करने में निहित दक्षता का त्याग किए बिना उच्चतर प्रवर्ग में ग्रपने प्रतिनिधित्व का सम्यक् दावा करने में उन्हें समर्थ बनाना है। कुछ परीक्षाग्रों को पास करना दक्षता की न्यूनतम ग्राधारभूत ग्रपेक्षा के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं रखता, यह बात नियम 13-ए से स्पष्ट है। किसी भी दशा में उस नियम में परीक्षा के प्रारम्भ किए जाने से दो वर्ष के भीतर संब कर्मचारियों द्वारा परीक्षा का पास किया जाना ग्रनुध्यात है जिससे यह दर्शित होता है कि परीक्षा सम्बन्धी ग्रर्हता का ग्रर्जन पदों को धारण करने के लिए ग्रनिवार्य नहीं था। नियम 13(बी) से, जिसमें परीक्षा को पास करने से छूट प्रदान की गई है, भी यह दर्शित होगा कि परीक्षा का पास किया जाना, पद को धारण करने के लिए पूर्ण रूप से ग्रनिवार्य नहीं है। नियम 13-एए में किए गए वर्गीकरण का विधि के प्रयोजन से ग्रर्थात् ग्रनुसूचित जातियों ग्रौर ग्रनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को, प्रशासन की दक्षता का ह्रास किए बिना सेवा की उच्चतर श्रेणी में प्रोन्नति का ग्रपना सम्यक् हिस्सा प्राप्त करने में समर्थ बनाने से तर्कपूर्ण सम्बन्ध है। नियम 13-एए ग्रनुसूचित जातियों ग्रौर ग्रनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को परीक्षा पास करने से स्थायी छूट देने के लिए ग्राशयित नहीं है ग्रपितु ऐसा करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए केवल उचित समय देता है। किसी ग्रन्य शक्ति की तरह नियम के ग्रधीन छूट प्रदान करने की शक्ति का भी दुरुपयोग किया जा सकता है। यदि शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है ग्रौर ग्रनुसूचित जातियों तथा ग्रनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के साथ उस सीमा तक पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है जिसका कि उनके विधिसम्मत दावों द्वारा समर्थन नहीं होता है तो न्यायालय निस्सहाय नहीं है। यह बात कि इस शक्ति का दुरुपयोग किया जा सकता है, यह ग्रभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण नहीं है कि नियम ग्रर्थात् नियम 13-एए स्वयं ही ग्रवैध है।

114. पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों के लिए समता की मांग के लिए सबसे बड़ा कारण नैतिक दृष्टिकोण से है जो मानवजाति के स्वाभाविक मूल्य की ग्रभिपुष्टि करता है ग्रौर ऐसे समाज की ग्रपेक्षा करता है जो जीवन की ऐसी दशाएं प्रदान करे जिनकी व्यक्तियों को ग्रपनी भिन्न-भिन्न

क्षमताओं के विकास के लिए जरूरत है। यह वात इस अर्थ में मानव समता का प्रकथन है कि इसके द्वारा सब व्यक्तियों के कल्याण के लिए समान चिन्ता प्रकट की गई है। एक ओर इसमें उन रुकावटों और बाधाओं के हटाए जाने की मांग है जो कि मानव क्षमताओं के विकास के मार्ग में आते हैं—अर्थात् यह अन्यायपूर्ण असमताओं के उत्सादन के लिए आह्वान है। दूसरी ओर स्वयं मांग को उसका अर्थ और नैतिक प्रेरणा इस वात की मान्यता से मिलते हैं कि 'इंग्लैण्ड में रहने वाले निर्धनतम व्यक्ति को भी महानतम व्यक्ति के समान जीने योग्य अवसर उपलब्ध होते हैं" (देखिए जॉन—रीज, 'इक्वैलिटी', पृष्ठ 123)।

115. मैं विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि अपील मंजूर की जानी चाहिए।

ज०/मि०

न्यायाधिपति एम० एच० बेग के मतानुसार।

न्यायाधिपति बेग—

मैं विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति और अपने विद्वान् बन्धु मैथ्यू, कृष्ण अय्यर और मुर्तजा फ़ज़ल अली के निष्कर्षों से सहमत हूं। तथापि मैं ससम्मान यह और कहना चाहूंगा कि उस मत के बारे में जिस पर यद्यपि इस न्यायालय में केरल के महाधिवक्ता ने संभवत: इसलिए कोई बल नहीं दिया था क्योंकि केरल उच्च न्यायालय ने इसे अस्वीकार कर दिया था, मुझे यह प्रतीत होता है कि वह मत सेवा की उच्च श्रेणी अर्थात् केरल राज्य में निम्न श्रेणी लिपिकों के पद से उच्च श्रेणी लिपिकों के पद पर प्रोन्नति के लिए अर्थात् अर्हक परीक्षा पास करने के लिए पिछड़े वर्ग के सरकारी कर्मचारियों के पक्ष में बढ़ाई गई अवधि के रूप में प्रदत्त प्रसुविधाओं के लिए अधिक संतोषजनक विधिक न्यायोचितता प्रदान करता है। मैं समझता हूं कि ऐसे मामले में हमें आवश्यक रूप से इस बात पर विचार करना होगा कि क्या वह रीति, जिसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सरकारी कर्मचारियों के साथ विचाराधीन नियमों और आदेशों द्वारा व्यवहार किया गया है, संविधान के अनुच्छेद 16(4) के भीतर आती है।

117. वास्तव में मेरे विद्वान् बन्धु खन्ना द्वारा अपनाया गया यह मत, कि लोक सेवा से संबंधित मामलों में अवसर समता के विशेष संरक्षण के विस्तार का, जो पिछड़े हुए किन्हीं नागरिक वर्गों के सदस्यों को उपलभ्य कराया जा सकता है, हमारे संविधान के अनुच्छेद 16(4) द्वारा निश्शेष हो गया है, अनिवार्य प्रतीत होता है। तथापि अनुच्छेद 16 ऐसे उत्कृष्ट सिद्धांतों का एक खंड है जो हमारे संविधान के अनुच्छेद 14 में समाविष्ट हैं। यह अनुच्छेद लोक नियुक्ति के मामलों में अवसर समता की गारण्टी देता है। यह ऐसा आत्यंतिक शब्दों में करता है। ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र में जहां अवसर समता से वंचित किया जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता वहां यह अनुच्छेद 14 का एक आवश्यक परिणाम और उसका विशेष रूप से लागू किया जाता है। जब कि अनुच्छेद 16(1) राज्याधीन नौकरी से संबंधित मामलों में अवसर समता के एक निश्चित पहलू का उल्लेख करता है, अनुच्छेद 16(2) संविधान के अनुच्छेद 16(1) के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में अनुच्छेद 16(2) में दिए गए आधारों पर नकारात्मक रूप से विभेद का प्रतिषेध करता है। यदि अनुसूचित जातियां अनुच्छेद 16(2) की परिधि के भीतर नहीं आती हैं अपितु पिछड़े हुए नागरिक वर्गों के रूप में प्रत्यक्ष प्रतिषेध से बच जाती हैं तो यह अनुच्छेद 16(4) के उपबन्धों ही के परिणामस्वरूप है जो ऐसी छूट उनके लिए संभव बनाता है। वे अनुच्छेद 16(1) की निश्चित आज्ञा के आवश्यक परिणामों से भी बच सकते हैं यदि वे संविधान के अनुच्छेद 16(4) में अन्तर्निहित एकमात्र अपवाद के भीतर आते हैं। मैं अपने विद्वान् बन्धु खन्ना और गुप्ता से इस बाबत ससम्मान सहमत हूं कि संरक्षण की सीमाओं का इस क्षेत्र में अवसर समता के सिद्धांत के प्रवर्तन के विरुद्ध अनुच्छेद 16(4) द्वारा अभिव्यक्त सांविधानिक प्राधिकार से परे विस्तार करना खतरनाक होगा।

118. जब किसी विशेष श्रेणी में सरकारी सेवकों के रूप में नागरिक पहले से ही नियोजन में हैं तो ऐसे स्रोतों से संबंधित बातों का जिनसे उन्हें भर्ती किया गया है, अधिक महत्व नहीं रह जाता। उस श्रेणी के लोक सेवकों के रूप में उनके बारे में पूर्णतः युक्तियुक्त और तर्कसंगत आधार पर यह कहा जा सकता है कि कम से कम ऐसी लोक सेवा में प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए वे एक ही श्रेणी के हैं

जिसके लिए अवसर की वास्तविक समता होनी चाहिए, यदि हम चाहते हैं कि इस वर्ग में व्याप्त ईर्ष्या या अन्याय या कुंठा की भावना न रहे। न तो इस अकेले वर्ग के सदस्यों के रूप में और न ही अवसर की उस समता के प्रयोजनों के लिए, जो इस वर्ग को प्रदान को जाएगी, क्या यह तथ्य, कि इनमें से कुछ आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए किसी वर्ग के नागरिक हैं, तात्विक बना हुआ है या सही अर्थों में सुसंगत भी है। अन्य वर्ग के व्यक्तियों की भांति उसी सुसंगत श्रेणी में उनके प्रवेश पाने की बावत यह समझा जाना चाहिए कि इससे यह संकेत मिलता है कि वे पिछड़े हुए वर्ग की असुविधाओं से अब और अधिक ग्रस्त नहीं हैं। सरकारी सेवा के प्रयोजनों के लिए वह स्रोत जिनसे उनकी भर्ती की गई है, महत्वहीन रह जाना चाहिए। सरकारी सेवकों के रूप में प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए वे सही अर्थों में केवल एक ही वर्ग का गठन करते हैं।

119. जैसा कि माननीय मुख्य न्यायाधिपति द्वारा बताया गया है, अनुच्छेद 16(1) का संरक्षण सेवा की पूर्ण अवधि तक बना रहता है। यदि अनुच्छेद 16(1) केवल एक ऐसा विशेष क्षेत्र या खंड है जिसमें अनुच्छेद 14 के व्यापक सिद्धांतों के लागू किए जाने का उस रूप में पूर्णरूपेण उल्लेख किया गया है जिस रूप में कि इसके होने को उपधारणा की जानी चाहिए तो इसमें अनुच्छेद 14 में से कोई अन्य और विचार लेने की कोई गुंजाइश नहीं है। पुनः अनुच्छेद 16(4) के अभिव्यक्त उपबन्धों के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि उनसे पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में किए गए सभी अपवादों का जो वहां अन्तर्विष्ट नहीं है, निःशेष हो गया है, यदि हम 'एक बात के अभिव्यक्त उल्लेख से अन्य बात का अपवर्जन हो जाता है' वाले सिद्धांत को लागू करें। यह सही है कि युक्तियुक्त वर्गीकरण का सिद्धांत अनुच्छेद 16(4) द्वारा इंगित संदर्भ से भिन्न किसी पहलू या संदर्भ में अनुच्छेद 16(1) के भीतर भी अवसर समता के सही महत्व को जानने के लिए मान्य या सुसंगत हो सकता है, किन्तु अनुच्छेद 16(4) की दृष्टि से पहलू या संदर्भ, उससे भिन्न होना चाहिए जो सरकारी सेवा के क्षेत्र में अनुच्छेद 46 और 335 के उद्देश्यों की प्राप्ति का लक्ष्य हो। अनुच्छेद 16(4) में अन्तर्विष्ट इन उद्देश्यों की प्राप्ति के विनिर्दिष्ट और अभिव्यक्त ढंग से ऐसी अन्य रीतियों की संभावना

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अपवर्जित होनी चाहिए जो इस क्षेत्र में उनकी प्राप्ति के लिए अनुच्छेद 16(1) में विवक्षित हो सकती थी और उसे उसमें समझा जा सकता था। कोई भी व्यक्ति, ऐसे अन्य क्षेत्रों में, जिनमें किसी वर्ग के पक्ष में विभेद के प्रयोजनों के लिए कुछ नहीं किया गया है और जिनमें बहुत कुछ किया जा सकता है, समुचित विधायी कार्रवाई के द्वारा, सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर करने के ऐसे अनेक वैध रूप से अनुज्ञात और संभवतः बेहतर या कम से कम अधिक प्रत्यक्ष तरीकों के बारे में सोच सकता था।

120. प्रोन्नति के सम्बन्ध में अवसर समता से केवल यह अभिप्राय हो सकता है कि प्रोन्नति के लिए समान शर्तें विहित की जाएं और समान और एक ही प्रकार की परीक्षाएं निर्धारित की जाएं। वास्तव में, यह गारण्टी इस बात के लिए आशयित थी ताकि बाह्य बातों की बहुलता से योग्यता और कार्यपटुता के दावों का संरक्षण किया जा सके। अनुच्छेद 16(1) में निहित गारण्टी का उद्देश्य स्वयं अपने-आप में उस पिछड़ेपन को दूर करना नहीं है जो इस वर्ग के सामाजिक अत्याचार, शोषण या अवनति के अतीत के इतिहास द्वारा पैदा की गई सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक असमानताओं के परिणामस्वरूप विद्यमान है। वास्तव में अवसर समता का उपबन्ध करने के लिए प्रक्रिया के भाग रूप में दक्षता विषयक परीक्षाएं, सक्षमता और योग्यता या कार्यकुशलता में वस्तुतः विद्यमान असमानताओं को प्रकट करने और उनका मूल्यांकन करने के लिए विहित की गई हैं ताकि अभ्यर्थियों के बीच न्यायसंगत विभेद के उचित और तर्कसंगत आधार का उपबन्ध किया जा सके। ऐसे असमान कार्य-प्रदर्शन के जो भी वास्तविक कारण रहे हों, जो परीक्षाओं के विहित किए जाने से प्रकट हों, परीक्षाओं के माध्यम से अवसर समता का उद्देश्य सरकारी सेवाओं में पद और प्रोन्नति उपलब्ध करने में केवल उचित प्रतिस्पर्धा का सुनिश्चित करना है न कि उन पदों या प्रोन्नतियों के लिए प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं में असमान कार्य-प्रदर्शनों के कारणों को दूर करना है। इस प्रकार, अनुच्छेद 46 और 335 के उद्देश्यों को जो वास्तव में अनुच्छेद 16(1) के उद्देश्यों के लिए बाह्य है, ऐसे संदर्भ में ऐसे नियमों द्वारा ही पूरा किया जा सकता है जो पिछड़े हुए वर्ग के व्यक्तियों के लिए

अधिमानी व्यवहार सुनिश्चित करते हैं और जो अनुच्छेद 16(1) और 16(2) के साधारण अर्थ और स्पष्ट विवक्षाओं को कम करते हैं। ऐसा विशेष व्यवहार अनुच्छेद 16(1) में निहित सिद्धांत के यथावत लागू किए जाने की सख्ती को कम करता है। इससे दक्षता की एक समान परीक्षाओं के लागू किए जाने में अवसर की अत्यधिक समता के सिद्धांत से विचलन हो जाता है। अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(1) की जो ऐसी शर्तों में जिनके अधीन अभ्यर्थी सरकारी सेवा में पदों के लिए वास्तव में प्रतिस्पर्धा करते हैं, समता के रूप में परिकल्पित न्याय की गतिशील शक्तियों को दर्शित करता है और अनुच्छेद 46 और 335 की जिनमें राज्य के ये कर्त्तव्य समाविष्ट हैं कि वह आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के हितों को ऐसे अग्रसर करेगा। ताकि उन्हें सामाजिक अन्याय के चंगुल से मुक्त किया जा सके, परस्पर 'विरोधी कशमकश में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अन्तःस्थापित किया गया था। अनुच्छेद 16(1) के क्षेत्र में ये अतिलंघन केवल उस विस्तार तक ही अनुज्ञात किए जा सकते हैं जिस तक वे अनुच्छेद 16(4) द्वारा अपेक्षित हैं। स्वयं अनुच्छेद 16(1) में सामाजिक न्याय और समता के व्यापक संविचार को समझने से स्वयं यह उपबन्ध निष्फल और अनुच्छेद 16(4) निरर्थक हो जाएगा।

121. पिछड़े हुए वर्ग के सदस्यों के साथ विभेद किया गया तभी कहा जा सकता था जब कि उनके लिए कठिन परीक्षाएं विहित की गई होतीं। किन्तु, हमारे समक्ष वाले मामले में स्थिति यह नहीं है। सभी प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए भले ही वे किसी वर्ग, जाति या धर्म के हों, एक ही प्रकार और मानक की दक्षता विषयक परीक्षाएं विहित की गई हैं। आक्षेपित नियम किसी वर्ग या समूह को इन परीक्षाओं से अभिमुक्ति प्रदान नहीं करते। वास्तव में, संविधान के अनुच्छेद 335 के उपबन्धों को दृष्टि में रखते हुए अनुसूचित जातियों के कर्मचारियों को, पिछड़े हुए वर्ग के रूप में भी ऐसी परीक्षाओं से, अभिमुक्त नहीं किया जा सकता। यहां जो कुछ हुआ है वह यह है कि पिछड़े हुए वर्ग के कर्मचारियों को दक्षता विषयक परीक्षाएं पास करने के लिए और ऐसी परीक्षाओं द्वारा यथा अवधारित अपनी योग्यता साबित करने के लिए अधिक समय दिया गया है। अतः दलील दी गई है कि इस बाबत पर्याप्त समता है। दूसरे शब्दों में, दलील यह है कि यदि अनुच्छेद 16(1)

का थोड़ा कम कड़ाई के साथ और अधिक उदारतापूर्वक निर्वचन किया जा सकता तो अन्तर्वलित विभेद इसके बाहर नहीं जाएगा। यदि यह मत मान्य भी हो तो भी मैं यहां दिए गए सभी कारणों से, अनुच्छेद 16(4) के अभिव्यक्त उपबन्धों में, यदि यह संभव हो तो, न्यायोचितता देखना चाहूंगा क्योंकि यही वह अनुच्छेद है जहां वास्तव में ऐसी न्यायोचितता होनी चाहिए।

122. हमारे समक्ष वाले मामले में यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी पिटीशनर की व्यथा यह थी कि पिछड़े वर्ग के रूप में अनुसूचित जातियों के कुछ सदस्यों को उसके मुकाबले वरीयता दी गई थी चूंकि उसे प्रोन्नत नहीं किया गया था यद्यपि उसने दक्षता विषयक परीक्षा पास कर ली थी किन्तु पिछड़े हुए वर्ग के कुछ सदस्यों को दक्षता विषयक परीक्षाएं पास किए बिना भी अस्थायी प्रोन्नत व्यक्तियों के रूप में उच्चतर पदों में बने रहने दिया गया था। इस प्रकार, पिटीशनर ने उस योग्यता के आधार पर पूर्वाधिकार का दावा किया जिसका पहले दक्षता विषयक परीक्षा देने और पास करने के मात्र आधार पर निर्णय किया गया था। प्रत्यक्षतः, उसे प्रोन्नत भी नहीं किया गया था जब कि पिछड़े हुए वर्ग के कर्मचारियों को जिनके बारे में यह कहा, गया है कि उन्हें उनके मुकाबले वरीयता दी गई थी, संभवतः, पूर्ण संतोषजनक रूप में उस उच्चतर श्रेणी में अपने कर्त्तव्यों का निर्वचन कर रहे थे, जिसमें अस्थायी प्रोन्नत कर्मचारियों के रूप में वे पहले से ही कार्यरत थे। वह यह भी स्वीकार करता है कि वे प्रत्यर्थी, जिन पर प्रोन्नति के लिए वह वरीयता का दावा करता है, सेवा में उससे ज्येष्ठ थे जिन्होंने उच्च श्रेणी लिपिकों की श्रेणी में अपनी अस्थायी सशर्त प्रोन्नति से पूर्व काफी अर्से तक कुल सेवा की थी। मुझे यह प्रतीत होता है कि अन्य कर्मचारियों के मुकाबले लिखित परीक्षा में पहले सम्मिलित होना और उसमें पास होना सरकारी सेवक के रूप में प्रोन्नति के लिए योग्यता और कार्यपटुता के आधारों पर ज्येष्ठता या वरीयता के दावे का विनिश्चय करने का मात्र आधार नहीं हो सकता।

123. सुसंगत नियम 13-ए से यह दर्शित होता है कि उस व्यक्ति को भी जिसे विशेष दक्षता विषयक परीक्षा पास किए बिना भी प्रोन्नत व्यक्तियों के काडर में कार्य करने के लिए अस्थायी तौर पर

अनुज्ञात कर दिया गया है, नियुक्ति के लिए अन्यथा अर्ह होने और योग्य होने की परीक्षा को पास करना चाहिए। इस प्रकार, अनुसूचित जाति के कर्मचारी को, इससे पूर्व के उसे इसी प्रकार प्रोन्नत कर्मचारियों के साथ कार्य करने का अवसर दिया जाए, अन्यथा अर्ह होना चाहिए। अंतर केवल यह है कि जहां दूसरे कर्मचारियों को नई परीक्षा के लागू किए जाने के समय मे केवल दो वर्ष ही मिलते हैं जिसके भीतर नए सिरे से प्रारम्भ की गई परीक्षा के अनुसार उसे परीक्षा में उत्तीर्ण होना होता है, जब कि समान स्थिति वाले अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के कर्मचारी को द्वितीय परन्तुक के अधीन दो वर्ष और मिलते हैं। तथापि, आक्षेपित नियम 13-एए सरकार को इस बात की शक्ति देता है कि वह छूट की लम्बी अवधि विनिर्दिष्ट करे, यदि वह इसे आवश्यक समझे। सरकार ने नियम 13-ए के अधीन 13 जनवरी, 1972 का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया जिसके द्वारा अवधि और अधिक बढ़ा दी गई थी। इस आदेश और सुसंगतनियमों 13-ए और 13-ए का माननीय मुख्य न्यायाधिपति के निर्णय में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। अतः यहां उनका पुनः उल्लेख करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है।

124. नियम 13-ए और 13-एए और 13 जनवरी, 1972 के आदेश के उपबन्धों का क्या प्रभाव है? क्या यह ऐसा नहीं है कि उस व्यक्ति को जो प्रत्यर्थी पिटीशनर की स्थिति में है, उस स्थान के लिए, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति, जिसे पिछड़े हुए वर्ग के रूप में माना जाता है, के कर्मचारी द्वारा धारित है या जो उसके लिए आरक्षित है, तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक कि यह दर्शित न कर दिया जाए कि पिछड़े हुए वर्ग का कर्मचारी उसको दी गई अधिक अवधि के बावजूद भी नई परीक्षा देने और उत्तीर्ण करने में असफल रहा है। नियमों के शिथिलीकरण का प्रभाव यह है कि पिछड़े हुए वर्ग का कर्मचारी या तो पुष्ट किए जाने या प्रतिवर्तित किए जाने से पूर्व लंबी अवधि तक अस्थायी तौर पर पद पर बना रहता है। इस अवधि तक पद उसके लिए आरक्षित रहता है। यदि वह इस बढ़ाई गई अवधि के भीतर भी दक्षता विषयक परीक्षाएं पास नहीं कर पाता तो उसे निचली श्रेणी में प्रतिवर्तित होना होता है। यदि वह इस बढ़ाई गई अवधि में विशेष दक्षता विषयक परीक्षा पास कर लेता है तो उसकी

1975(9) eILR(PAT) SC 1

उन प्रोन्नत व्यक्तियों के वर्ग में पुष्टि कर दी जाती है जिसमें आरक्षण के परिणामस्वरूप उसकी भर्ती हुई थी। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में दिए गए 'रिजर्व' शब्द के अर्थों में निम्नलिखित है—रखे रहना या आने वाले समय या स्थान के लिए सुरक्षित रखना, किसी उद्देश्य या किसी दृष्टि से अलग रखना। वैब्सटर्स न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी द्वितीय संस्करण (पृष्ठ 2118) में निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं—"रखे रहना, भावी समय या स्थान के लिए प्रतिधारित करना, इसे तुरन्त न देना या हवाले न करना या प्रकट न करना"। ऊपर वर्णित नियमों और आदेशों के परिणाम के बारे में मुझे यह प्रतीत होता है कि वह एक प्रकार का आरक्षण है। यदि पिछड़े हुए वर्ग के कर्मचारियों के लिए अनुच्छेद 16(4) के अधीन पदों के आरक्षण के अन्तर्गत ऐसे उच्चतर पदों का पूर्ण आरक्षण सम्मिलित हो सकता था जिन पर उनकी प्रोन्नति की जा सकती थी, जिनके बारे में अब कोई संदेह नहीं हो सकता, तो मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह आंशिक या सेवा की अवधि के एक भाग के लिए क्यों नहीं हो सकता और इसमें यह शर्त क्यों नहीं लगाई जा सकती थी कि अस्थायी प्रोन्नति केवल तभी पूर्ण और पुष्ट प्रोन्नति के रूप में प्रवृत्त होगी जब कि अस्थायी तौर पर प्रोन्नत व्यक्ति किसी निश्चित समय के भीतर कुछ परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लें।

125. यदि आक्षेपित नियमों और आदेशों पर ऊपर इंगित रीति में अर्हक या आंशिक या सशर्त आरक्षण की नीति के कार्यान्वयन के रूप में दृष्टिपात किया जा सकता था जो अनुच्छेद 335 के अनुरूप पर्याप्त समता की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते थे और संविधान के अनुच्छेद 46 को व्यापक दृष्टि से देखने पर समता और न्याय की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते थे, तो वे मेरी दृष्टि में, संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अधीन भी न्यायोचित हो सकते थे। यह हो सकता है कि अपीलार्थी राज्य की ओर से विद्वान् महाधिवक्ता ने इस आधार पर कोई बल नहीं दिया कि आक्षेपित नियम और आदेश उन परीक्षाओं के कारण अनुच्छेद 16(4) द्वारा शासित होते हैं जो ऐसे पूर्ण या आत्यंतिक आरक्षण के लिए अपेक्षित है जिनका **टी० देवदासन बनाम भारत संघ और एक अन्य**[1] और **एस० आर० बालाजी और अन्य**

[1] (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

बनाम **मैसूर राज्य**[1] वाले मामलों में उल्लेख किया गया है जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पिछड़े हुए वर्ग के लिए 50% से अधिक आरक्षण करने से युक्तियुक्तता की अपेक्षाओं का अतिलंघन होगा क्योंकि इससे अन्य वर्ग के व्यक्तियों के अधिकांश हिस्से का अपवर्जन हो जाएगा। इस तथ्य के अलावा भी कि हमारे समक्ष वाला मामला विभेदनीय है क्योंकि यह केवल आंशिक या अस्थायी और सशर्त आरक्षण का ही मामला है, यहां यह विवादास्पद है कि पक्षपाती वर्ग के कर्मचारियों में इस वर्ग अर्थात् (लिपिकों) के सरकारी सेवकों की कुल संख्या का 50% से अधिक का वास्तव में गठन होता है यदि सभी सरकारी विभागों में कर्मचारियों की संख्या का हिसाब लगाकर समग्र स्थिति पर विचार किया जाए। आगे, यह बताया गया है कि इस श्रेणी के पिछड़े हुए वर्ग के सरकारी सेवकों कि अधिकांश अस्थायी प्रोन्नतियां 1972 में रजिस्ट्रेशन विभाग में हुई थी जिसमें पिटीशन करने वाला प्रत्यर्थी काम करता था, क्योंकि पिछड़े हुए वर्ग के कर्मचारियों की प्रोन्नतियां उन नियमों में आवश्यक उपबन्धों के अभाव के परिणामस्वरूप रुकी हुई थीं जो सरकारी सेवा में इस श्रेणी के पिछड़े हुए वर्ग के कर्मचारियों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व की नीति को कार्य रूप देने के लिए सरकार को समर्थ बनाते हैं। इस मामले के पूर्ण तथ्य उनके प्रभावी होने में उन मामलों से विभेदनीय हैं जिन्हें हमारे समक्ष उद्धृत किया गया था। ऐसा कोई भी मामला उद्धृत नहीं किया गया था जिसके अन्तर्गत यह स्थिति पूर्णतया आ जाती जो अब हमारे समक्ष है।

126. मेरा इस बावत समाधान नहीं हुआ है कि पिछड़े हुए वर्ग के सरकारी सेवकों को आक्षेपित नियमों और आदेशों की प्रसुविधा देने से इंकार करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मात्र इस आधार को कि वे अनुच्छेद 16(4) की परिधि के बाहर आते हैं, साबित कर दिया गया था। प्रत्यर्थी पिटीशनर का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने विरुद्ध सांविधानिक रूप से अनपेक्षित विभेद साबित करने के भार का निर्वहन करता। मेरी राय में, उसका पिटीशन इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था कि वह अपने इस प्रारम्भिक भार का निर्वहन करने में असफल रहा है।

1 (1963) सप्लीमेण्ट 1 एस० सी० आर० 439.

127. तद्नुसार, मैं इस अपील को मंजूर करता हूं और उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को अपास्त करता हूं। पक्षकार आद्योपांत अपना-अपना खर्चा स्वयं बर्दास्त करेंगे।

स०/क०

न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर के मतानुसार।

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर--

यह ऐसा मामला है जिसका केन्द्र संविधान में व्याप्त राजनैतिक दर्शन है। इस मामले में प्राचीन सामाजिक दरिद्रता की सीमारेखा से नीचे के बहुत अधिक व्यक्ति प्रभावित होते हैं जिससे स्वाभाविकतया मैं पृथक् मत व्यक्त करने के लिए प्रेरित हुआ हूं जो सारभूत रूप से विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के मत के समान है। मौन रहना हमेशा ही उत्तम नहीं होता है।

129. उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध की गई इस सिविल अपील की विशिष्टता यह है कि इसमें राज्य अधीनस्थ सेवा नियम उच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिए गए थे जिससे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के निचली श्रेणी के पदधारियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। इस अपील को ग्रहण करने के लिए यही प्रारम्भिक विवाद्यक है। अनुच्छेद 16(1) में अवसर समता के नियम के भीतर वर्गीकरण का मानदण्ड भी इस मामले में अन्तर्वलित है तथा इन बहुत अधिक पिछड़े हुए वर्गों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 16(2) में अन्तर्विष्ट सिद्धान्त का घातक प्रभाव, जिसके द्वारा जाति के आधार पर वर्गीकरण प्रतिषिद्ध है, इस मामले में अन्तर्वलित है। व्यापक अर्थ में ये प्रश्न अनिर्णीत (रेस इंटेगरा) हैं और महत्वपूर्ण हैं और इन्हें न्यायाधिपति होम्स द्वारा व्यक्त की गई इस टिप्पणी के आधार पर सरलता से रद्द नहीं किया जा सकता कि "समान संरक्षण खण्ड धानिक सांविलीलों का अन्तिम शरण स्थल है।"[1]

130. विधि, जिसमें सांविधानिक विधि भी सम्मिलित है, एकाकी रूप से नहीं चल सकती और निर्वचनात्मक प्रक्रिया में उसे समाज शास्त्र और ज्ञान के अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों से प्रकाशित होना चाहिए। वास्तव में 'सांविधानिक विधि' शब्द विधि और राजनीति के प्रतिच्छेदन का प्रतीक है जिसमें राजनैतिक शक्ति के विवाद्यकों पर वे व्यक्ति कार्रवाई करते

---

[1] 274 यू० एस० 200, 208.

हैं जो विधिक परम्परा में प्रशिक्षित होते हैं, न्यायिक संस्थाओं में कार्य करते हैं और कानून की प्रक्रियाओं का अनुसरण करते हैं तथा उस प्रकार सोचते हैं जिस प्रकार वकील सोचते हैं[1]। यहां तक कि सांविधानिक विधि के विवाद्यकों को सुलझाने के लिए व्यापक परिप्रेक्ष्य की जरूरत है। यह हो सकता है कि कोई प्रसिद्ध न्यायविद् और भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति के इस मत से सहमत न हो : 'न्यायपालिका समग्र रूप से किसी विधायी अध्युपाय में हितवद्ध नहीं है' (श्री हिदायतुल्लाह—'डैमोक्रेसी इन इण्डिया एण्ड दि जुडीशियल प्रासेस'— 1965, पृष्ठ 70)। फिर भी भारतीय संविधान एक महान सामाजिक दस्तावेज है जिसका उद्देश्य एक मध्यकालीन पद परम्परायुक्त समाज को आधुनिक और समतावादी प्रजातंत्र में परिवर्तित करने का क्रान्तिकारी उद्देश्य है। संविधान के उपबंधों को व्यापक सामाजिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही समझा जा सकता है न कि किताबी पारम्परिक विधिवादिता द्वारा। यहां हमसे केरल राज्य के अधीन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (संक्षेप में इसमें इसके पश्चात् हरिजन के तौर पर निर्देश किया गया है) को नियोजन से सम्बन्धित दी गई कुछ विशेष रियायतों के संदर्भ में अनुच्छेद 16(1) को स्पष्ट करने की अपेक्षा की गई है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक स्थिति और आर्थिक दरिद्रता संविधान के वहुत से अनुच्छेदों में वास्तव में स्वीकार की गई है। विनिश्चित मामलों की जांच करने से समता खण्डों के परिवर्तनशील अर्थ का पुनः निर्वचन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है और यह निस्संदेह इस वात पर पुनः जोर देने की आवश्यकता प्रतीत होती है कि सर्वोपरि विधि जो मूलभूत है और हमारे देश के गतिशील जीवन को विनियमित करती है, के अन्तर्गत नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति और समाजशास्त्र आना चाहिए। हमारे समक्ष जो विवाद्यक उठाया गया है उसके सम्बन्ध में फ्रीडमैन ने इस प्रकार दुःख प्रकट किया है—

> "यह दुःखद बात होगी यदि विधि इस प्रकार पत्थर जैसी वन जाए कि वह समाज में विकासमूलक या क्रान्तिकारी परिवर्तनों की वावत समाप्त न होने वाली चुनौती के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने में असमर्थ हो जाए।"[2]

[1] (पर्सपैक्टिव्स इन कांस्टिट्यूशनल ला—चार्ल्स ब्लैक—फाउण्डेशन्स ऑफ माडर्न पोलीटिकल साइंस सिरीज, परेंटिक हाल, इन्कारपोरेटेड, न्यू जरसी (1963).

[2] ला इन चेंजिंग सोसाइटी—डब्ल्यू० फ्रीडमैन पृष्ठ 503.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

फ्रीडमैन द्वारा की गई मुख्य उपधारणाएं ये हैं--

> "प्रथम, होम्स के मुहावरे के अनुसार कानून शून्य में विचार-मग्न सर्वशक्ति नहीं है किन्तु वह सामाजिक व्यवस्था का लचकीला माध्यम् है जो उस समाज के राजनैतिक मूल्यों पर निर्भर है जिन्हें वह विनियमित करने के लिए तात्पर्यित है..........।"[1]

131. स्वभाविकतः यह प्रश्नवाचक चिह्न उभरता है कि परिवर्तन-शील मूल्यों की चुनौतियां क्या हैं जिसके प्रति समानता की गारण्टी की प्रतिक्रिया होनी चाहिए और वह प्रतिक्रिया किस प्रकार होनी चाहिए। हमारे समक्ष जो मामला है उसके प्रति निर्देश करते हुए यह प्रश्न उठता है कि क्या आक्षेपित नियम अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट अवसर समता के सिद्धान्त का उस समय उल्लंघन करता है जब उसके द्वारा शंकास्पद वर्गीकरण किया जाता है या विधिसम्मत् पृथक्करण द्वारा कम समान को अधिक समान बना कर पुनरुज्जीवित किया जाता है। **मैक्कुलक** बनाम **मैरीलैण्ड**[2] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति मार्शल के इस आदर्श कथन का **कज़नबेक** बनाम **मॉर्गन**[3] वाले मामले में न्यायाधिपति ब्रैनन द्वारा अनुसरण किया गया था जो अब तक प्रकाशस्तम्भ बना हुआ है—

> "उसे विधिसम्मत् होना चाहिए, उसे संविधान के व्याप्ति-क्षेत्र के अन्तर्गत होना चाहिए और सभी साधन जो उपयुक्त हैं, जो उस उद्देश्य के लिए प्रमुख रूप से अपनाए गए हैं, जो प्रतिषिद्ध नहीं हैं किन्तु संविधान के शब्द और भाव से संगत हैं, सांविधानिक हैं।"

132. पृष्ठभूमि से सम्बन्धित तथा संक्षेप में प्रारम्भिक रूप में वर्णित किए जाते हैं। केरल राज्य और सबार्डिनेट सर्विसिज रूल्स, 1958 (संक्षेप में नियम) निम्न श्रेणी के राज्य कर्मचारियों की सेवा की शर्तें विनियमित करते हैं। हमारा सम्बन्ध रजिस्ट्रीकरण विभाग में निम्न श्रेणी लिपिकों के उच्च श्रेणी लिपिकों के पदों पर प्रोन्नति के लिए विहित अर्हताओं

---

[1] ला इन चेंजिंग सोसाइटी—डब्ल्यू० फ्रीडमैन पृष्ठ 13.

1 और 2 पी० बी० गजेन्द्रगडकर द्वारा लीगल एजूकेशन इन इण्डिया—प्राब्लम्स एण्ड पर्सपैक्टिव्स; एन०एम० त्रिपाठी, बाम्बे और एस० के० अग्रवाल (1970) की प्रस्तावना में उद्धृत किए गए हैं।

[2] 17 यू० एस० (4 वीट) 316, 421 जो 384 यू० एस० 650 में उद्धृत।

[3] (1966) 384 यू० एस० 641.

से है। नियम 13 में प्रोन्नति सम्बन्धी पात्रता के लिए कुछ परीक्षाओं के पास करने पर जोर दिया गया है। जब परीक्षाएं नई-नई शुरू की गई थीं तब नियम 13-ए में उक्त नियम के शुरू होने के पश्चात् हरिजन और गैर-हरिजन सभी के लिए परीक्षा पास करने की अवधि दो वर्ष रखी गई थी, किन्तु पूर्ववर्तियों के लिए दो वर्ष की अनुग्रह कालावधि और दी गई। नियम 13-बी में हरिजनों को इन परीक्षाओं को पास करने से पूर्ण रूप से छूट दे दी गई। नियम 13-एए जिस पर संविधान के अनुच्छेद 16(1) और (2) के उल्लंघन के कारण आक्षेप किया गया है, 13 जनवरी, 1972 को प्रख्यापित किया गया था। वह इस प्रकार है--

* "13-एए इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी सरकार आदेश द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य या सदस्यों को, जो पहले से ही सेवा में हों, उक्त नियमों के नियम 13 या नियम 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाओं को पास करने से किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट दे सकेगा :

परन्तु यह नियम पुलिस विभाग के उपनिरीक्षकों की पंक्ति से नीचे के कार्यपालक कर्मचारिवृन्द की प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए विहित परीक्षाओं को लागू नहीं होगा ।"

नियम में संलग्न टिप्पण द्वारा इन नियमों के बनाए जाने का कारण दिया गया है--

"सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया गया है कि लोक सेवा में के बहुत अधिक हरिजन कर्मचारी परीक्षा की अर्हताओं के कारण अपने पदों से शीघ्र ही पदावनत होने की कठिनाई का सामना कर रहे हैं। अतः केरल राज्य एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज रूल्स, 1958 में एक समर्थ बनाने वाले उपबंध को समावेशित

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है--

"13AA. Notwithstanding anything contained in these rules, the Government may by order, exempt for a specified period, any member or members, belonging to a scheduled cast or a scheduled tribe, and already in service, from passing the tests referred to in Rule 13 or Rule 13A of the said Rules :

Provided that this rule shall not be applicable to tests prescribed for purposes of promotion of the executive staff below the rank of sub-Inspectors belonging to the Police Department."

करना आवश्यक समझा गया जिससे आदेश द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पहले से ही सेवा में रहने वाले सदस्यों को किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए सभी परीक्षाओं को पास करने से आदेश द्वारा अस्थायी छूट दी जा सके। यह अधिसूचना ऊपर वर्णित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आशयित है।"

133. नियमों के नियम 13-एए का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि उसके द्वारा सरकार को 'अधीनस्थ सेवाओं' के हरिजन पदधारियों को प्रोन्नति वाले पदों पर बने रहने के लिए विहित परीक्षाओं को पास करने के लिए समय बढ़ाने की शक्ति दी गई है। किन्तु उक्त नियम द्वारा इन व्यक्तियों को हमेशा के लिए छूट नहीं दी गई है किन्तु अनुमानतः थोड़े समय के लिए अभिमुक्ति दी गई है। उक्त नियम के द्वारा आधारभूत प्रशासनिक दक्षता की दृष्टि से इन पदों के लिए आवश्यक अभिनिर्धारित की गई न्यूनतम अर्हता में कमी नहीं की गई है। कतिपय नई परीक्षाओं को पास करने की आनुषंगिक आवश्यकता है जिसके लिए सभी कर्मचारियों को कुछ कालावधि दी जाती है। उनकी प्रोन्नति किए जाने के समय से हरिजन कर्मचारियों के मामले में नियम 13-ए के अधीन अधिक लम्बी कालावधि के लिए छूट दी गई है और नियम 13-एए के अधीन और भी अधिक छूट दी गई है। हम आशा करते हैं कि सरकार परीक्षाओं को पास करने के लिए दीर्घतर अनुग्रह समय नियत करते समय प्रशासनिक दक्षता का ध्यान रखेगी। प्रशासनिक क्षमता को पूर्ण रूप से नजर-अंदाज नहीं किया जा सकता और हरिजन कल्याण के नाम पर सरकार की गतिविधियों को रोका नहीं जा सकता। प्रशासन सुशासन के लिए होता है न कि हरिजनों को नौकरी देने के लिए। हमें इस नियम के अर्थ को इस कमजोर समूह को एक सीमित रियायत देने तक समझना चाहिए और इस आधार पर ही उसकी वैधता की परख करनी चाहिए।

134. इन महत्वपूर्ण बातों को दक्षता के सहकारी कारण के तौर पर बढ़ा-चढ़ा कर कहने के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए। निश्चय ही वे इतने महत्वपूर्ण नहीं थे क्योंकि नियम 13-ए पर इतने वर्षों से आक्षेप नहीं किया गया—सभी व्यक्तियों के लिए अर्हता की कालावधि दो वर्ष थी और हरिजनों के लिए चार वर्ष थी। साथ ही उन व्यक्तियों के लिए जो पचास वर्ष से अधिक की आयु के थे, इन परीक्षाओं को पास करना आवश्यक नहीं था (नियम 13-बी)। परीक्षा प्रकृति

1975(9) eILR(PAT) SC 1

की तुलना में उच्च श्रेणी लिपिकों के कार्य की तुलना और शासकीय सामर्थ्य के बारे में उनकी अपरिहार्यता रिट पिटीशन में स्पष्ट नहीं की गई है और इन गम्भीर बातों के अभाव में हमें यह अनुमान करना होगा कि सरकार (नियम 13 को बनाने वाले के तौर पर) छूट के लिए विभिन्न कालावधियों को उनकी वांछनीयता के कारण ही मंजूर कर सकती थी न कि पूर्वोदाहरण की जरूरत के कारण। थोड़ा और विस्तार से कहें तो किसी पद की पात्रता के लिए आधारभूत अर्हताओं को नियत करना प्रायिक नहीं है। पद के कृत्यों को ध्यान में रखते हुए उन अर्हताओं का होना अनिवार्य है। दूसरी ओर द्वितीय कोटि की अर्हता पर पद के कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए उपयोगी के तौर पर ज़ोर दिया जाता है, जैसे लेखा परीक्षा या सिविल और दण्ड न्याय से सम्बन्धित परीक्षा और इसी प्रकार की अन्य परीक्षाएं जो इस बात पर निर्भर करती हैं कि कोई व्यक्ति किस विभाग में काम करेगा। इस मामले में वह लिपिक वर्ग का व्यक्ति है न कि मजिस्ट्रेट, लेखा-अधिकारी, वन अधिकारी, उपरजिस्ट्रार, अन्तरिक्ष वैज्ञानिक या उच्च प्रशासक या ऐसा व्यक्ति जिसकी पहल करने पर विभाग की गतिविधि तेज या धीमी होती है। ऐसा होने पर भी इन बातों से उसका लिपिकीय कार्य और अधिक विवेकयुक्त और दक्ष बन जाता है। अत: और अच्छी तरह से कार्य करने के लिए न कि आधारभूत प्रवीणता के लिए ये बातें ज़रूरी हैं। किन्तु उपयुक्त मामलों में छूट भी मंजूर की जाती है क्योंकि उनके अभाव में दक्षता पर बहुत अधिक असर नहीं पड़ता है। तीसरी श्रेणी के गुण वे हैं जो किसी कर्मचारी को अत्यधिक दक्ष बनाते हैं किन्तु जो आधारभूत नहीं माने जाते हैं और वे अधिमान के तौर पर सूचीबद्ध किए जाते हैं। कारबार प्रबन्ध में डॉक्टर की डिग्री या विधि में मास्टर की डिग्री जहां आधारभूत डिग्री सामाजिक सेवा या नेतृत्व के प्रशिक्षण, या खेलकूद में प्रवीणता या बहुत-सी अन्य अतिरिक्त उपलब्धियों के लिए अपेक्षित हो जिससे उस अधिकारी की रुझान और उसके साधन में वृद्धि हो, किन्तु जो किसी भी अर्थ में आवश्यक न हो। ये अतिरिक्त बातें स्वागत योग्य हैं और अच्छी हैं और इनसे किसी कर्मचारी को वेतन में वृद्धि दी जा सकती है। किन्तु इनके सम्बन्ध में न तो सीधी भर्ती या न ही प्रोन्नत व्यक्तियों के मामले में ही किसी पद पर नियुक्ति के लिए जोर दिया जाता है। अर्हताओं के इन तीन प्रकारों से कोई भी नियोजक प्रभावित होता है और यह बात वह हर व्यक्ति जानता

1975(9) eILR(PAT) SC 1

है जो समाचारपत्रों में विज्ञापन देता है। आधारभूत अर्हताओं में ढील देना न्यूनतम प्रशासनिक दक्षता से समझौता करना है। थोड़े समय के लिए अतिरिक्त परीक्षा सम्बन्धी अर्हताओं में नरमी बरतना है, किन्तु ऐसा नियन्त्रित किन्तु संगणित खतरे को ध्यान में रख कर किया जाता है और काम करने के लिए आधारभूत मानदण्ड सुनिश्चित होता है। उच्चतर दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन देने का अर्थ लोक सेवक की दक्षता में वृद्धि करना है जिससे अन्ततः विभाग की दक्षता में ही वृद्धि हो जाती है। प्रस्तुत मामले में सार और तत्व की यही बात प्रशासनिक अपेक्षाओं के दृष्टिकोण या ऋजु नियोजन के मानदण्ड से देखने पर उद्भूत होती है।

135. अब मैं छूट के नियम और उसकी वैधता पर विचार करूंगा। यह स्पष्ट है कि यहां प्रत्यर्थियों ने 'परीक्षाएं' पास कर लीं थीं। और उनकी प्रोन्नति हरिजनों के लिए नए नियम के कारण रुक गई थी। व्यक्तियों के तौर पर अपने हरिजन भाइयों की तुलना में उनके अधिकार असमान माने गए हैं। कड़ाई से बढ़ते स्पर्धात्मक संदर्भ में या कार्य-क्षमता पर आधारित मानदण्ड के अनुसार नियम 13-एए हरिजनों और गैर हरिजनों के बीच विभेद करता है। प्रश्न यह है कि क्या अनुभूति क्षम, संवेदनशीलता 'अवसर समता' को व्यक्तियों की योग्यता के आधार पर नियोजन दिया जाना और दलित वर्ग की आवश्यकता के अनुसार नियोजन दिए जाने के बीच आलोचनात्मक प्रभेद करती है जो दक्षता के व्यापक मानदण्ड के अध्यधीन हो। अब हम वैचारिक संकट के क्षेत्र में आते हैं।

136. राज्य के कार्य तथ्यात्मक संदर्भों के अनुसार किए जाते हैं। किसी वर्ग पर किसी कानून के अलग-अलग प्रभाव से किसी वर्गीकरण की युक्तियुक्तता का मूल्यांकन न्यायिक रूप से प्रभावित होगा और उसकी युक्तियुक्तता ऐसे प्रयोजन से जुड़ी होगी जो अनुज्ञेय है। तथापि न्यायालय उस समय निर्बन्धित पुनर्विलोकन की नीति अपनाते हैं जब स्थिति जटिल होती है और वह सामाजिक, ऐतिहासिक और अन्य सारभूत मानवीय तथ्यों से आपस में सम्बद्ध होती है। न्यायिक अनुपालन न कि अधित्याग **लुइसविल्लै गैस एण्ड इलैक्ट्रिक कम्पनी** बनाम **कोलमैन**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति होम्स, ने अपने विसम्मत निर्णय में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है--

> "किन्तु जब यह देखा जाता है कि कोई सीमा या बिन्दु आवश्यक होना चाहिए और यह कि उसे निश्चित रूप से नियत

1 (1928) 277 यू० एस० 32.

करने के लिए गणितीय या तर्कसंगत कोई तरीका नहीं है तब विधान-मण्डल के विनिश्चय को अवश्य ही स्वीकार किया जाना चाहिए जब तक कि हमें यह न प्रतीत हो कि वह किसी भी प्रकार से युक्तियुक्त नहीं है।"

137. **बक** बनाम **बैल**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति होम्स ने यह मत व्यक्त किया--

"विधि वह सब करती है जो आवश्यक है, जब वह सब कुछ करती है जो वह कर सकती है तो वह एक नीति इंगित कर देती है। उस नीति को सीमा के भीतर के सभी व्यक्तियों पर लागू करती है और इसी प्रकार स्थित सभी को जहां तक और जिस सीमा तक सम्भव होता है, वह उन सीमाओं के भीतर लाने का प्रयत्न करती है।"

138. चुनने के लिए अध्यारोही विधिसम्मत प्रयोजन में न्यायालय कार्यान्वियन की पेचीदा रीति विधि निर्माताओं पर छोड़ते हुए आदेश पारित करता है। ऐसी स्थिति का सामना होने पर, जिसमें वर्गीकरण जातिकल्प अन्तर पर और दृश्यमान रूप से ऐसे अन्तर पर आधारित हो जिससे प्रशासनिक क्वालिटी को हानि पहुंचती हो तो न्यायालय कर्मण्यतावादी बन जाता है। इन दो स्थितियों के बीच सही मार्गदर्शी सीमा-रेखा वैचारिक सन्तुलन है।

139. प्रवर्तन सम्बन्धी तकनीक समय और परिस्थिति के अनुसार बदल सकती है। किन्तु उद्देश्य और व्याप्ति सांविधानिक दृष्टि से अनुज्ञेय होने चाहिएं। प्रस्तुत मामले में राज्य ने हरिजनों के आर्थिक हितों की वृद्धि करने के लिए कुछ कदम उठाए थे। यदि हम नियम को विभिन्न भागों में बांट दें तो--सरकार ने क्या किया? क्या सरकार ने अनुच्छेद 16 (1) या (2) के अधीन अधिकारों का अतिक्रमण किया? यदि सरकार ने ऐसा किया तो न्यायालय राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में अनुज्ञेय उपधारणा करने के पश्चात् और अनुच्छेद 14 और 16 के आज्ञापक उपबन्ध में प्रभावी तौर पर समानता की उदार भावना को ध्यान में रखते हुए निरीक्षक की हैसियत से हस्तक्षेप कर सकता है अन्यथा तीर निशाने पर नहीं बैठता है और उद्देश्य पूरा नहीं होता है।

---

[1] (1927) 274 यू० एस० 200, 208.

140. नियम 13-एए के अधीन हरिजनों को दूसरी बार 'छूट' क्यों मंजूर की गई। जिस जटिल परिस्थिति के कारण यह अनुक्रम अपनाने के लिए विवश होना पड़ा, राज्य के अनुसार वह इस वर्ग को मदद पहुंचाना था और राज्य सांविधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करते हुए परीक्षाओं को पास करने के लिए जोर दिए जाने को त्यागे बिना निचले पदों पर सामूहिक तौर से पदावनत किए बिना इस वर्ग को मदद करना चाहता था। नियम 13-एए का टिप्पण स्पष्टीकरण के तौर पर है। राज्य को इस क्लेशपूर्ण स्थिति पर चिन्ता थी और उनकी पिछड़ी स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसने नियम 13-एए बनाया जिसके द्वारा राज्य सरकार को यह शक्ति प्राप्त हो गई कि वह इन परीक्षाओं को पास करने के लिए अनुग्रह अवधि और बढ़ा सके। इसके साथ-साथ नियम 13-एए के अधीन एक सरकारी आदेश जारी किया गया जिसके द्वारा परीक्षाओं को पास करने के लिए दो अवसर दिए जाने के लिए कालावधि उपलभ्य की गई। उनके तत्काल पदावनत होने की बात टाल दी गई और गैर-हरिजन रिट पिटीशनरों के, जो परीक्षाओं में सफल हो गए, प्रोन्नत होने की सम्भावनाएं स्थगित हो गईं। अपने इस दुःख के कारण उन्होंने उच्च न्यायालय में समावेदन किया जहां हरीजनों के पक्ष में प्रोन्नति सम्बन्धी पात्रता के लिए परीक्षाओं को पास करने की अस्थायी छूट का नियम, अनुच्छेद 16(1) और 335 के शक्तिबाह्य अभिनिर्धारित किया गया।

141. मैं केवल आधारभूत बातों पर ही ध्यान केन्द्रित करूंगा क्योंकि मेरे विद्वान् भ्राता ने तथ्यों के आवश्यक ब्यौरों का विस्तार से वर्णन किया है और अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि रचनात्मक खण्डों के अर्थान्वयन के कारण आधारभूत तथ्यों की बाबत भ्रान्ति है। यह बात हरिजनों की कठोर गुलामी की पृष्ठभूमि में मानी गई है जो कभी स्थूल और कभी सूक्ष्म होती है। विद्वान् महाधिवक्ता ने यह बात ठीक ही स्वीकार की है और मेरे विचार से उनका ऐसा करना सही है कि नियम 13-एए अनुच्छेद 16(4) के अधीन 'आरक्षण' नहीं था और फिर भी हरिजन लिपिकों के प्रति अनुग्रहयुक्त व्यवहार विधिमान्य था क्योंकि वह संविधान द्वारा मान्य अन्तर के अधीन युक्तियुक्त वर्गीकरण पर आधारित था जिसका इस असहाय वर्ग की तरक्की करने के लिए विधिसम्मत सम्बन्ध था। यह बात केवल प्रशासनिक दक्षता के अधीन ही थी। विद्वान् महासॉलिसीटर ने, जो न्यायालय द्वारा सूचना देने पर हाजिर हुए, व्यापक

आधार पर विधि वर्णित की और यह कहा कि सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्ग के व्यक्तियों को एक साथ रखना विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और जनजातियों को एक साथ रखना अच्छा है और इससे अनुच्छेद 16(1) या (2) का अतिवर्तन नहीं होता है। कुछ प्रत्यर्थियों और मध्यक्षेपियों की ओर से श्री आर० के० गर्ग ने सामाजिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन किया और बहुत समय से दमन के शिकार इन वर्गों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जिसके परिणामस्वरूप समाज में यह बहुत अधिक पिछड़े हुए हैं। उन्होंने राज्य के इस कर्त्तव्य की ओर संकेत किया कि वह सम्मिलित प्रयत्न करके इन्हें उसी स्तर पर ले आए जिस स्तर पर अन्य वर्ग के व्यक्ति हैं जिससे कि एक स्तर पर लाने के पश्चात् पूरा देश प्रजातान्त्रिक समानता के सिद्धान्त के अनुसार आगे बढ़ सके। काउन्सेल के मतानुसार जाति के आधार पर विभेद उद्भूत नहीं होता है क्योंकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियां जाति नहीं हैं। किन्तु सामाजिक दृष्टि से दीन और ध्वस्त व्यक्तियों का सम्मिश्रण है जिसके अन्तर्गत वे समूह भी आते हैं जिनमें जाति का पुट है। प्रत्यर्थियों की ओर से श्री कृष्णमूर्ति अय्यर ने स्वाभाविक रूप से ही इन सभी प्रस्थापनाओं पर आक्षेप किया। इस मामले का आधार स्तम्भ राज्याधीन नियोजन का क्षेत्र है जो हरिजनों को विशेष छूट देने से सम्बन्धित है जो अनुच्छेद 16 (1) और (2) को देखते हुए जाति के अनुसार होने से उनके विरुद्ध है। किन्तु विशेष व्यवहार किया जाना केवल अनुच्छेद 16(4) के अधीन ही अनुज्ञेय है जो अभिव्यक्त रूप से सदैव विभेद के आधार पर पिछड़े हुए वर्गों को अन्य व्यक्तियों के स्तर पर 'आरक्षण' की सांविधानिक युक्ति के जरिए किया जाना था। इस विशेष खण्ड से परे विचार करना और पिछड़े हुए वर्ग के वर्गीकरण के साधारण सिद्धान्त की परिकल्पना करना समानता के इस आधारभूत विचार को अभिभूत करना है और ऊपर से आकर्षक तरीके से जातिवाद के पीछे के दरवाजे से जातिहीन समाज की स्कीमों को नष्ट करना है जो हमारी सांविधानिक व्यवस्था में एक ध्येय के तौर पर वर्णित की गई है। प्रशासन में दक्षता लोक सेवा की एक महत्वपूर्ण मांग है और इससे इसे भी हानि होगी।

142. अब मैं इन दलीलों की बारीकी से और विस्तार से इस निर्णय में परीक्षा करूंगा।

1975(9) eILR(PAT) SC 1

143. पहले हमें सेवा के "असमान" नियम के सांविधानिक गुणागुण की परीक्षा करनी चाहिए जिसके द्वारा राज्य के सेवा करने वाले हरिजन कर्मचारियों को सामाजिक विधि परिप्रेक्ष्य में वास्तव में अधिमान दिया गया था, किन्तु ऐसा करने के पहले कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को वर्णित करना जरूरी है। राष्ट्रपिता ने अपने महान सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त भंगी को ऊपर उठाना माना था और समानता के आधार पर हिन्दू समाज में उसे आत्मसात करने का सिद्धान्त अपनाया था और संविधान द्वारा, जिसके प्रधान निर्माता स्वयं एक युयुत्सु (लड़ाकू) महार थे, सामाजिक न्याय का आधारभूत सिद्धान्त बनाया और उसमें निम्न वर्ग के व्यक्तियों को अनुसूचित जाति और जनजातियों के तौर पर ऊपर उठाने का मानवतावादी उपबंध किया गया जिससे प्रजातंत्र सभी के लिए व्यवहार्य और समान बन जाए। सामाजिक एवं मानवशास्त्रीय क्षेत्र में अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि कई युगों से सांस्कृतिक और आर्थिक दमन से उनका व्यक्तित्व अशक्त बना दिया गया है और वर्तमान जनसांख्यिकी से यह ज्ञात होता है कि करीब-करीब हर पांचवा भारतीय हिन्दू है और उसका सामाजिक वातावरण गन्दगी से भरा हुआ है। संविधान में इस बात को पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त किया गया है। संविधान सभा में डॉक्टर अम्बेडकर ने चेतावनी और पूर्व सूचना के तौर पर ये शब्द व्यक्त किए थे—

> "हमें पहले यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारतीय समाज में दो बातों का पूर्ण रूप से ही अभाव है। इनमें से एक समानता है, सामाजिक स्तर पर भारत में ऐसा समाज है जो असमानता के आधार पर दी गई सुविधाओं पर आधारित है जिसका तात्पर्य है कुछ का उत्थान और अन्य व्यक्तियों का पतन। आर्थिक क्षेत्र में हमारा समाज ऐसा है, जिसमें कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके पास बहुत अधिक धन है। इनके विपरीत बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं, जो बहुत गरीबी का जीवन गुजार रहे हैं। 26 जनवरी, 1950 को हम परस्पर विरोधों से भरे जीवन में प्रवेश करने वाले हैं। राजनीति में हमारे देश में समानता आ जाएगी और सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में हमारे देश में असमानता रह जाएगी। हमें इस परस्पर विरोध को जितना शीघ्र हो सके, समाप्त करना चाहिए अन्यथा जो व्यक्ति असमानता से पीड़ित रहेंगे, वे राजनीतिक प्रजातंत्र के उस

ढांचे को नष्ट कर देंगे जिसको इस सभा ने इतने श्रम से तैयार किया है। (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली डिबेट्स, जिल्द 2, पृष्ठ 186-187)"

144. न्यायाधीशों के सांविधानिक अर्थान्वयन के क्षेत्र में अलग-अलग मत हो सकते हैं किन्तु सार को नष्ट किए बिना, वे सामाजिक न्याय की विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में उस सक्रियतावाद का त्याग नहीं कर सकते हैं, जिसमें समाज के कमजोर वर्ग के लिए गहरी चिन्ता व्यक्त की गई है। जिस बात पर मैं बहुत जोर देना चाहता हूं और जिस पर बाद में विस्तार से विचार व्यक्त करूंगा, वह यह है कि समान न्याय सामाजिक न्याय का एक पहलू है, जो बहुत कमजोर और दलित वर्ग के उद्धार और उन्हें वास्तव में उनकी प्रपीड़क समानता के स्तर पर लाने के तरीके से सम्बन्धित है।

145. अपीलार्थी केरल राज्य ने नागरिकों द्वारा सरकारी सेवा में हरिजनों द्वारा भरे गए पदों और राज्य में जनसंख्या के आधार पर उनके द्वारा भरे जाने वाले पदों की वास्तविक संख्या के बीच रहने वाले बहुत अधिक अन्तर को दर्शाया है। "शासकीय" दृष्टि से उनका भाग्य भारत में अन्य स्थानों पर भी कम खराब नहीं है और आरक्षण की मदद के बिना चुनाव की प्रतिस्पर्धी पद्धति के कारण वह और भी खराब रहा होता। राज्य के अधीन सेवा में सामाजिक समानता और इसके संचालन के लिए और भी सक्रियता से प्रशासनिक दृष्टि से प्रयास किया जाना बहुत जरूरी है और सरकार जो इस दलित वर्ग की कठिनाई को दूर करने में असफल होती है, वह हरिजन कल्याण के क्षेत्र में जनता को मूर्ख बनाती है। वास्तव में जागरूक मानव समुदाय, जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी न्याय से वंचित किया गया है, वह बहुत अधिक समय तक इस बात को चुपचाप बर्दाश्त नहीं करेगा किन्तु दलित पंथेर के रूप में परिवर्तित हो जाएगा, जैसा कि अन्य देश में ब्लैक पंथेर ने किया है। इस बाबत श्री गजेन्द्रगडकर, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति ने हाल में दिए गए दो स्मृति भाषणों में इस विक्षुब्ध करने वाली बात पर जोर दिया है। न्याय शास्त्रियों को वास्तविक जीवन की गतिविधियों को भी सुनना चाहिए और सिद्धान्तों के अलावा उन्हें अपने समय की समस्याओं को सावधानी से समझना चाहिए जहां विधि शासन सामाजिक न्याय के दरवाजे बन्द कर देता है, वहां कुचले हुए वर्ग सड़कों पर अपनी समस्या को हल करने का प्रयत्न करेगा। हमारे संविधान निर्माता सीधी कार्यवाही

से बेखबर नहीं थे। हमारे देश में आधारभूत न्याय काफी समय तक नहीं किया गया था और अवास्तविक समता की कल्पना इस प्रकार की गई थी जैसे उसके अन्तर्गत समान करने का अवसर भी सम्मिलित हो। सांविधानिक विधि के आलोचनात्मक अध्ययन करने से ही सही परिणाम निकल सकेंगे।

146. सामाजिक सुधार अर्थात् कार्यरूप में विधि में नई कार्य पद्धति को अपनाया जाना चाहिए जिससे कर्मचारियों के प्रति अन्याय को समाप्त किया जा सके या क्या समाज को दबाव और सदमों को झेलने के लिए छोड़ दिया जाए। मानवीय दृष्टि से रुकावट से ग्रसित व्यक्तियों और पुरातन काल से सामाजिक दृष्टि के अलावा की स्थिति में रहने वाले व्यक्तियों का उद्धार राज्य द्वारा सृजनात्मक और कानून द्वारा कदम उठाए जाने से अवधारित हो सकता है, न कि समानता की घोषणाओं के द्वारा। कमजोर के भाग्य में सकारात्मक रूप से विभेद करने से विधि के समक्ष कभी-कभी असली समानता की वृद्धि हो सकती है, जैसा कि एन्थोनी लेसर ने 1970 में 'व्हाट इज रांग विद दि ला (विधि में क्या कमी है) बी० बी० सी० द्वारा आयोजित भाषण माला में दलील दी थी। (जो भाषण पुस्तक के रूप में छापा गया है जिसका सम्पादन माइकिल बी० बी० सी० ने 1970 में किया और जो माडर्न ला रिव्यू सितम्बर, 1970, जिल्द 33 के पृष्ठ 579 और 580 पर प्रोद्धृत किया है। शेर और बैल के लिए एक ही विधि अत्याचार के समान है। या जैसा अनातोले फ्रांस ने एक दूसरे युग में कहा है' कानून की अपनी प्रतापी समानता द्वारा धनवान एवं गरीव को पुलों के अन्दर सोने का निषेध है। उन्हें भीख मांगने और रोटी चुराने की रोक है। हरिजन समुदाय के प्रति समान रूप से बटवारे के न्याय में प्रभावकारी सुधारों पर जोर दिया गया है जिसमें न्यूनतम स्तर वाले और लुटे हुए के बीच समान साझेदारी की भावना पैदा करना प्रकल्पित है। यह कार्य राज्य की कार्यवाही द्वारा लघु और दीर्घकालीन सामाजिक योजना बनाए जाने और उसके क्रियान्वित किए जाने के प्रभावशाली तरीके से प्रकल्पित है। असमान सामाजिक आर्थिक स्थिति में अवसर समता और विकास का सुख मुश्किल से ही प्राप्त हो सकता है और मानव शक्ति के स्रोतों से सर्वोत्तम प्राप्त होना भी कठिन ही है। अब हम असंतुष्ट जीवन के क्षेत्र से स्पष्ट होने वाली बातों को विधि में स्वीकार कर रहे हैं।

147. किसी वर्ग के प्रभुत्व के पश्चात् और शासितों की असहाय अवस्था की लम्बी अवधि के पश्चात् जागृति आती है और प्रोटेस्टों के समान विरोध होता है और पूर्वपक्ष (थीसिस) अर्थात् यथा स्थिति और पूर्वपक्ष के विपरीत (एण्टी थीसिस) अर्थात् समान स्थिति में पहुंचने की चाह से समन्वय की नई शक्तियां जागृत हैं अर्थात् साम्यापूर्ण सांविधानिक व्यवस्था या न्यायपूर्ण समाज । हमारे संविधान निर्माता आध्यात्मिक सूक्ष्म दृष्टि रखते थे और वे इतिहास के भौतिकवादी निर्वचन से प्रभावित थे । उन्होंने ऐसा सामाजिक पूर्वानुमान लगा लिया था और ऐसे आर्थिक आन्दोलनों की पेशबन्दी कर दी थी और हमें तीन प्रकार के वचन उपलब्ध कराए । न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीति । "समानता सम्बन्धी अनुच्छेद" इस स्कीम के भाग हैं । मेरी प्रस्थापना यह है कि यदि अनुच्छेद 16 (1) और (2) के सुसंगत उपबंधों में दो आनुकल्पिक अर्थ दिए गए हों तो न्यायालय को भाषा का निर्वचन इस प्रकार करना चाहिए जिससे अप्रिय और हीनता की भावना का दोष हटाया जा सके जिसके कारण भारतीय राज्य शासन को आनुवंशिक रूप से हानि पहुंची है और जिसके द्वारा दोष का परिहार किया जा सके और सुधार की दिशा में प्रगति हो सके और ऐसा समाज शास्त्र और सामाजिक मानव शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए । मेरी कसौटी यह है कि क्रियाशील प्रजातन्त्र में जनता के सभी वर्गों की हिस्सेदारी की परिकल्पना की गई है । उसमें प्रशासन में उचित प्रतिनिधित्व को ऐसे हिस्सेदारी का सूचक माना जा सकता है ।

148. न्यायाधिपति ब्रेनन ने[1] थोड़े से भिन्न सामाजिक वातावरण में निम्नलिखित शब्द कहे हैं—

> "लिंकन ने यह कहा है कि 'स्वाधीनता की भावना से इस देश का जन्म हुआ है और यह देश इस प्रस्थापना के लिए समर्पित है कि सभी व्यक्ति समान हैं ।' संस्थापकों का ऐसे समाज की बाबत स्वप्न जहां सभी व्यक्ति स्वतन्त्र और समान हैं, पूरा किया जाना सरल नहीं रहा है । स्वतन्त्रता और समानता का जो स्तर आज

---

[1] इलिनॉयस व० एलन [197 यू० एस० 337 (1970)] वाले मामले में न्या० ब्लैक द्वारा बहुमत की ओर से दी गई राय से सहमति व्यक्त करते हुए न्या० ब्रेनन का मत ।

है, वह लगातार संघर्ष और त्याग का परिणाम है। बहुत कुछ किए जाने के लिए शेष है इतना अधिक कि हमारे समाज की संस्थाओं पर ही आक्षेप किया जाने लगा है। अतः आज जैसे कि लिंकन के समय में कोई व्यक्ति यह पूछ सकता है कि क्या यह दोष या कोई दोष जिसकी इस प्रकार परिकल्पना की गई है और जो इस प्रकार समर्पित है, लम्बे समय तक टिक सकेगा। हमारी आधारभूत दस्तावेजों में स्वाधीनता, न्याय और समानता की समाविष्ट गारण्टी से कम पढ़ने पर यह दोष टिक नहीं सकता। किन्तु यह उस दशा में भी नहीं बच सकता, यदि व्यवस्थित स्वाधीनता की हमारी बहुमूल्य विरासत वर्तमान समय के शोरगुल में काट कर नष्ट कर दी जाती है। यह उस दशा में भी बनी नहीं रह सकती यदि व्यक्तिगत मामलों में एक ओर सामाजिक शान्ति और व्यवस्था के दावे और दूसरी ओर वैयक्तिक स्वाधीनता के दावे आपस में ऐसे फोरम में तय नहीं किए जा सकते हैं जिसकी संकल्पना संविधान द्वारा की गई है। यदि न्यायालय में न्यायिक विचारण द्वारा वह संकल्प पूरा नहीं किया जा सकता तो वह अन्य किसी जगह अन्य साधनों से नष्ट किया जाएगा और इतनी गंभीरता उत्पन्न हो जाएगी कि दोनों के लिए अत्यावश्यक स्वाधीनता, समानता और व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।"

149. नियम 13-एए से संलग्न टिप्पण में उक्त नियम के पीछे रहने वाला तात्कालिक उद्देश्य समझाया गया है। किन्तु मैंने जो सामाजिक पृष्ठभूमि बतलाई है, उससे हमें उसकी सांविधानिकता समझने में मदद मिलेगी तथापि संविधान के अधीन और संविधान में प्रयुक्त असली शब्दों को नए सामाजिक मानव-शास्त्र द्वारा अध्यारोहित नहीं किया जा सकता। न्यायाधीश पढ़ सकते हैं किन्तु पुनर्निर्माण नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि नियम 13-एए के आधार पर हरिजनों को अपने गैर हरिजन भाईयों पर अस्थायी लाभ का फायदा मिला है और संभवतः प्रतिविरोध करने वाले व्यक्तियों के काउन्सेल द्वारा संभवतः यह बात कही गई है कि इस बात से अनुच्छेद 16(1) और (2) में सम्यक् रूप में अन्तर्विष्ट समानता के कड़े सिद्धान्त का उल्लंघन होता है। इसके द्वारा सांविधानिक न्यायोचित्य के बिना विभेद होता है और प्रतिकूल उपबंध के समक्ष जाति के अन्तर की बात देवत्व होती है। विद्वान् महाधिवक्ता विधिक वास्तविक दृष्टिकोण

1975(9) eILR(PAT) SC 1

द्वारा इस बात को पूरा करना चाहते हैं और एक अर्थ में वे आधारभूत न्यायशास्त्र का उपयोग करके इसे हल करना चाहता है। समानता का सांविधानिक मर्म क्या है। कौन-सा सामाजिक दर्शन इसे सक्रिय बनाता है ? नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर समता पद का जो सजीव, प्रांजल और सारगर्भित है, कौन-सा सजीव अर्थ है ? विवेक का अनियंत्रित प्रयोग कहां निषिद्ध है और किन समतावादी विवक्षाओं से प्रशासनिक खोज की आवश्यकता प्रतीत होती है। अन्ततः अनुच्छेद 16 के इन पहलुओं की बावत हमें इस न्यायालय के पूर्व उदाहरणों से कौन-सा प्रकाश प्राप्त होता है। मैं इन दलीलों और विवाद्यकों की आगे परीक्षा करूंगा।

150. महासॉलिसिटर ने अपनी संक्षिप्त किन्तु सार्थक दलीलों के द्वारा संविधान द्वारा गारण्टी की गई समानता (अनुच्छेद 14 से 16) के अर्थान्वयन के लिए सामंजस्यपूर्ण प्रस्ताव रखे। श्री गर्ग ने अतिवादी दलीलें दी जिनमें से कुछ इस मामले में उद्भूत विशिष्ट विवाद्यक से बाहर हैं। ऐसा होने पर भी मैं इस बात से सहमत हूं कि तीक्ष्ण सामाजिक दृष्टि के द्वारा संविधान में अन्तर्विष्ट उन बातों को देखने की आवश्यकता है जो निकटवर्ती होने के कारण प्रमादवश ज्ञात नहीं हो पाती हैं।

151. समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह सावधानी रखने की आवश्यकता है कि यहां और अन्य देशों में हुए अनुभव के आधार पर आरक्षण से मुझे तीन प्रकार के खतरे प्रतीत होते हैं। अधिकांशतः इसके फायदे पिछड़ी जाति या वर्ग के सर्वोत्तम अंश द्वारा छीन लिए जाते हैं। इस प्रकार कमजोर वर्ग में जो सबसे कमजोर होता है, वह हमेशा कमजोर बना रहता है और भाग्यशाली वर्ग पूरा फायदा उठा लेता है। दूसरी बात यह है कि प्रजातन्त्र में यह दावा बहुत अधिक किया जाता है और मुखर समूह जिसका पिछड़ापन समय की गति, बेहतर शिक्षा के लिए अध्युपायों और नियोजन के बेहतर अवसरों के कारण काफी हद तक कम हो गए हैं किन्तु वे कमजोर वर्ग का लेबल लगाए रखना चाहते हैं जिससे कि वे उस वर्ग से जो पहले ऊपर का वर्ग कहा जाता था, अधिक लाभ उठा सकें। अन्ततः इस समस्या का स्थायी हल सामाजिक वातावरण

में वृद्धि करने से ही हो सकता है जिसके साथ शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं राज्य द्वारा और व्यापक स्तर पर होनी चाहिएं। जातीय और अन्तर्वर्गीय विवाहों को प्रोत्साहन देकर परसंसेचन (क्रास फर्टिलाइजेशन) भी है और यह समाधान पिछड़े हुए वर्गों के निहित हितों की दृष्टि से छिपा हुआ है जिनका उद्देश्य पिछड़ेपन के फायदे प्राप्त करना है। किन्तु सामाजिक विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान न कि न्यायिक प्रभाव वाद से ही पूर्ण सत्य ज्ञात हो सकता है और कमजोर वर्ग द्वारा की गई उन्नति का पनर्मूल्यांकन लगातार किया जाना आवश्यक है क्योंकि एक समय जो आरक्षण उचित होता है वह प्रतिकूल विधेयक की श्रेणी में जा सकता है। यदि बिना हितबद्ध हुए, प्रयास किया जाए तो प्रशासन में अभिनव परिवर्तनों से वास्तव में अछूत और सबसे अधिक पिछड़े हुए वर्ग भी ऐसे सामाजिक विधिक अध्ययन द्वारा ज्ञात होते हैं। वास्तव में ए० एन० सिन्हा, इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल स्टेंडीज, पटना, द्वारा किए गए अनुसंधान से हरिजनों के बीच दोहरे समाज का पता लगा है। छोटा-सा प्रबुद्ध वर्ग जो सब फायदा हड़प लेता है और अंधकार में रहने वाला वर्ग जो इन सामाजिक रियायतों के बारे में कुछ भी नहीं जानता, उनके लिए अनुच्छेद 46 और 335 भव्य कल्पना बने रहते हैं और समृद्धि का फायदा "ऊंचे" हरिजनों को मिलता है। प्रस्तुत मामले में मैं इस बात का उल्लेख कर रहा हूं क्योंकि निम्न श्रेणी लिपिक सम्भवतः समुदाय के निम्नतम स्तर से आएंगे और थोड़े समय के लिए इस कोटि के लिए परीक्षा की अर्हता में छूट देने से इनकी प्रोन्नति की सम्भावनाओं में वृद्धि होगी। सोपानात्मक ढांचे में समानता लाने के लिए कई तरीकों का प्रयोग करना होगा और संभवतः नियम 13-एए उनमें से एक है।

152. जिस मुख्य निष्कर्ष पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि इस कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक प्रत्येक कदम हरिजनों के लिए वास्तविक और समान होना चाहिए और इसमें उनकी हिस्सेदारी से ही सामाजिक न्याय में वृद्धि हो सकती है न कि महान अधिकारों को भाग 3 में और अच्छे ध्येयों को भाग 4 में समाविष्ट करने से। अन्यथा अनुच्छेद 46 और 335 के साथ पठित अनुच्छेद 14 से 16 को पढ़ने पर उनमें की गई विधिवत् प्रतिज्ञा चिढ़ाने वाला धोखा या अवास्तविक वचन मात्र रह जाएगा। इन उपबंधों के बारे में स्पष्ट दृष्टि के लिए भारतीय आध्यात्मिक धर्मनिरपेक्ष विचार को गहराई से समझने की

अपेक्षा है जो यह है कि दैवी तत्व सभी में है और प्राचीन काल में जो वातावरण दूषित हुआ है और सामाजिक स्थिति सम्बन्धी व्यवस्था की गई है उसे दूर करना राज्य का कर्त्तव्य है और जो वर्तमान समय में मिटा दिया गया है। मानव क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन का कारण है जिसे कहने के मधुर ढंग के अनुसार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के तौर पर वर्णित किया गया है। हमारी सांविधानिक विचारधारा की जड़ या कम से कम सामाजिक विचारधारा में से कुछ की जड़ें हमारी प्राचीन संस्कृति में पाई जाती हैं। उपनिषद् में सांस्कृतिक शक्ति को सामूहिक रूप से अर्जित करने के लिए यह उत्तम आदेश "सह वीर्य करवाव है" अन्तर्विष्ट है और यह "समानता" से विकसित हुआ है। यदि हम अपनी उत्तम विरासत के अति सूक्ष्म सार के प्रति सच्चे हैं तो हमें इसका पालन करना चाहिए।

153. अब मैं वास्तविक विवाद पर विचार व्यक्त करता हूं। क्या हरिजनों के प्रति संरक्षणात्मक विभेद के तौर पर नियम 13-एए विधिमान्य है। महाधिवक्ता ने हमारा ध्यान संविधान के कुछ अनुच्छेदों की ओर आकर्षित किया है जो सरकार की तीनों शाखाओं से हरिजनों के प्रति अन्यायपूर्ण अन्यसंक्रामण को दूर करने के लिए परिकल्पित है। संविधान की प्रस्तावना में न्याय की ओर अभिमुख समुदाय के लिए राज्य की नीति के निदेशक तत्व और देश के शासन के लिए मूलभूत सिद्धांत अन्तर्विष्ट हैं। राज्य को यह व्यादेश किया गया है कि वह विशेष सावधानी से जनता के कमजोर वर्ग के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों में वृद्धि करे विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों में वृद्धि करे और सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करें। इस बाध्यता की उपेक्षा करना अनुच्छेद 46 की उपेक्षा करना है। निस्संदेह किसी समूह के आर्थिक हित एवं सामाजिक न्याय राज्य के अधीन सेवाओं में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। कुछ अन्य देशों के विपरीत, हमारे इतिहास में राज्य की शक्ति और आर्थिक स्थिति में हाथ बंटाने के चिह्न के तौर पर सरकारी नौकरियों के प्रति उत्साह पूर्ण रुझान रहा है। इसके अतिरिक्त सरकार, केन्द्रीय और राज्य सबसे बड़ी नियोजक हैं और राज्य के उपक्रमों के कारण उनकी गतिविधियों में वृद्धि हो रही है। यहां तक कि लोक सेवाओं में नियुक्तियों से पिछड़े हुए वर्ग लगातार समृद्धि की ओर बढ़ रहे हैं। अनसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बाबत अनुच्छेद 46

1975(9) eILR(PAT) SC 1

में विशेष उल्लेख है और इस संदर्भ में अन्य कमजोर वर्गों से प्रत्येक "पिछड़ा हुआ वर्ग" अभिप्रेत नहीं है। किन्तु निराशाजनक रूप से निचले स्तर के कुछ प्रवर्ग हैं जो आर्थिक और शिक्षा की दृष्टि से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बराबर हैं। इस अन्तर को बढ़ाने से समान व्यवहार का सिद्धांत दूषित होता है जो सभी नागरिकों के लिए है और जिनमें से बहुत से नागरिकों का जीवन स्तर दरिद्रता की सीमा-रेखा से भी नीचे के स्तर का है। वास्तविक स्थिति यह है कि राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली जातियां पिछड़ेपन के एक मात्र उपाय का उपयोग करके समान बनने का प्रयत्न कर सकते हैं किन्तु अनुच्छेद 16(4) को एक तरफ रखते हुए अनुच्छेद 16(1) और (2) के परकोटे में इस प्रकार अप्रत्यक्ष घुसपैठ का प्रतिविरोध किया जाएगा।

154. ऐसा होने पर भी क्या अनुच्छेद 46, अनुच्छेद 16(1) द्वारा गारण्टी की गई समान रूप से अवसर-समता का भंग प्राधिकृत करता है? क्या परीक्षा पास करने में अस्थायी रियायत के तौर पर हरिजनों के प्रति पक्षपातपूर्ण बर्ताव युक्तिसंगत वर्गीकरण के आधार पर अनुच्छेद 46 पर आधारित हो सकता है? क्या ऐसे हल्के विभेद से सम्बन्धित विधान जो जाति पर आधारित हो अनुच्छेद 16(2) का उल्लंघन करता है? इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के पहले मैं हरिजनों के अनुकूल संविधान के अन्तर्विष्ट कुछ महत्वपूर्ण उपबंधों के प्रति निर्देश करूंगा।

155. स्वयं संविधान में ही हरिजनों और अन्य व्यक्तियों के बीच अतिशय वर्गीकरण किया गया है जो हमारे समाज में व्याप्त मूलभूत वैषम्य पर आधारित है और जो पूर्ववर्तियों की गिरी हुई स्थिति को अच्छी बनाने की सामाजिक आवश्यकता पर आधारित है। हरिजनों के लिए विधान सभाओं में सीटों के आरक्षण के अलावा जो विमर्शत: विचलन है और उनकी बहुत अधिक पिछड़ी स्थिति को (अनुच्छेद 330 और 332) ध्यान में रख कर एक विशेष अधिकारी अनुच्छेद 338 में यह उपबन्ध है कि उस अनुच्छेद के अधीन हरिजनों के संविधान के अधीन उपबंधित संरक्षणों से सम्बद्ध विषयों का अनुसंधान करने और उन संरक्षणों पर कार्य होने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा जो अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगा। लोक सेवाओं में बहुत कम प्रतिनिधित्व

स्पष्ट रूप से अन्वेषण और प्रतिवेदन के लिए एक विषय है। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुच्छेद 335 जिसका श्री गर्ग ने अपनी बात मनवाने के लिए अवलम्ब लिया है, इस प्रकार है--

> "335. संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में प्रशासन-कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा।"

156. यह उपबंध स्पष्ट रूप से (क) लोक सेवाओं में नियुक्त करने के लिए हरिजनों के प्रति विशेष ध्यान रखने का निदेश देता है--उनके दावे दया पर आधारित नहीं होंगे। (ख) इस अतिरिक्त ध्यान देने से प्रशासनिक दक्षता अनियंत्रित न हो जाए और उसको नुकसान न पहुंचे, अतः यह चेतावनी दी गई है कि प्रशासन कार्यपटुता में कमी न हो।

157. अब हम इन और ऐसे ही अन्य अनुच्छेदों से नजीरों की मदद के विना प्रस्तुत मामले से बहुत अधिक सुसंगत कुछ स्पष्ट निष्कर्ष निकालते हैं--(1) स्वयं संविधान हरिजनों को अन्य व्यक्तियों से अलग करता है। (2) यह बात समुदाय के इस निम्नतम वर्ग के अत्यधिक पिछड़ेपन पर आधारित है। (3) यह अन्तर राज्य के अधीन पदों पर नियुक्तियों के क्षेत्र को विनिर्दिष्ट रूप से इसके अन्तर्गत लाने के लिए किया गया है। (4) दोनों उद्देश्यों को एक में मिलाया गया है और वह यह है कि ऐसे पदों पर हरिजनों के दावों पर और प्रशासनिक कार्यपटुता बनाए रखने पर विचार किया जाए। (5) राज्य पर यह बाध्यता डाली गई है कि वह हरिजनों और उन्हीं के समान पिछड़े हुए वर्गों के आर्थिक हितों की वृद्धि करे। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 46 और 335 आधारभूत हैं और अनुच्छेद 14 से 16 उनकी मदद करने के लिए हैं। इस पंचशील की उपेक्षा करना संविधान के प्रति अन्याय करना है।

158. प्रतिविरोध करने वाले प्रत्यर्थियों की ओर से श्री कृष्णमूर्ति अय्यर ने यह दलील दी कि संविधान द्वारा हरिजनों को संरक्षात्मक व्यवस्था के लिए अलग समूह में रखा गया हो किन्तु उसकी अभिव्यक्ति, राज्य के अधीन नियुक्तियों की बाबत प्रत्येक नागरिक के मूल अधिकार के अधीन उसी प्रकार होगी जैसे कि उसके मुवक्किलों को खर्च के आधार पर

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अवसर समता और अविभेद का लाभ उठाने का अधिकार है। उनकी प्रस्थापना यह है कि हरिजन कल्याण के नाम पर भाग 3 की स्कीम के अधीन अनुच्छेद 16(1) और (2) के महत्व को कम करना अनुज्ञेय नहीं है। भाग 3 सर्वोपरि है और उसमें गारण्टी किए गए प्रवर्तनीय अधिकार अन्तर्विष्ट हैं। दूसरी बात यह है कि 'अनुसूचित जातियां' जातियां ही हैं और उन्ह दी गई प्रोन्नति स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 16(2) के विपरीत है। तीसरी बात यह है कि अनुच्छेद 335 भी प्रशासनिक कार्यपटुता पर जोर देता है जो अच्छी सरकार के लिए आवश्यक है और आक्षेपित नियम द्वारा विहित की गई परीक्षाओं से लम्बे समय तक छूट शासकीय कार्यपटुता की दृष्टि से इस सुसंगत मानदंड को हानि पहुंचाती है। इस न्यायालय ने हमेशा ही शैक्षणिक संस्था और लोक सेवाओं में पिछड़े हुए वर्गों के लिए प्रतिनिधित्व हेतु 'आरक्षण' के अध्युपायों को अवैध अभिनिर्धारित किया है जब बहुत अधिक भाग अलग से आरक्षित रखा गया जिससे यह आशंका पैदा हुई कि स्वयं प्रशासन ही पिछड़ेपन से ग्रस्त न हो जाए। अन्ततः संविधान में अवसर समता के नियम के अनन्य अपवाद के तौर पर अनुच्छेद 16(4) में इतना अलग प्रावधान किया गया है कि अनुच्छेद 46 और 335 केवल उस उपबंध के द्वारा ही महत्व प्राप्त करते हैं और वे अनुच्छेद 16(1) और (2) पर प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। मूल अधिकार मूलभूत है और उनमें वर्गीकरण करने की तकनीक से काट-छांट नहीं की जा सकती या छल कपट से उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता।

159. दोनों ही बातें दोषहीन प्रतीत होती हैं। उनके बीच वास्तविक अन्तर सर्वोच्च विधि के, जिसे हम संविधान कहते हैं, संदेश की बाबत दो दृष्टिकोण हैं। इन दो दृष्टिकोणों के अनुसार संविधान गतिशील और गतिहीन होता है। ये दो दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय और प्ररूपिक हैं। इस बात पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती कि कोई भी दूर-अंदेशी निर्वचन द्वारा पूर्ववर्ती पद्धति अपनाई जाएगी और उसके द्वारा विभिन्न उपबंधों के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया जाएगा जो पारम्परिक रूप से 'सामंजस्यपूर्ण निर्वचन' कहा जाता है। उत्थान-आकांक्षी और मूलभूत लिखित में प्रतिविरोधी बातें नहीं रह सकतीं। यदि सर्वोच्च विधि का निर्वचन करने के लिए यह बात आदर्श है तो हमें अनुच्छेद 16(1), (2) और (4) के बीच एवं अनुच्छेद 46 और 335 के बीच सामंजस्य का पता लगाना होगा। इनकी पृष्ठभूमि में सबसे पहले समान करने के

लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना और तब वर्ग, पंथ के प्रभेद के बिना साथ-साथ आगे बढ़ना आता है । हमारे संविधान की सामाजिक रीति-नीति अर्थात् निचले वर्ग के व्यक्तियों को उदार दृष्टिकोण अपना कर ऊपर लाना, बराबर करना और इसके पश्चात् सभी के बीच समानता को कड़ाई से प्रवृत्त करना है। ये दो स्तर वाली प्रक्रिया, जो प्रतीकात्मक रूप से प्रवृत्त है, विधि का जीवन है और अवसर समता की क्रिया विधि की कुंजी है । इसके बराबर महत्व की वह गंभीर चिन्ता है जो जातिहीन और वर्गहीन समाज के लिए दर्शाई गई है—जैसा समाज जादू से तत्काल नहीं बन सकता किन्तु सोच समझ कर प्रयत्न करने से ही बन सकता है और प्रशासन में कर्जन के समय से ज्ञात निष्क्रियता के स्थान पर कार्य करने के अच्छे स्तरों के लिए प्रयत्न करना सम्मिलित है ।

160. दक्षता से सुशासन की दृष्टि से परीक्षा में अंक ही अभिप्रेत नहीं हैं, किन्तु जनता के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण और प्रतिसम्वेदी सेवा भी सम्मिलित है । अव्यवस्थित प्रतिभाशाली व्यक्ति लोक प्रशासन के लिए गंभीर खतरा है । दक्षता के अन्तर्गत अपनत्व की भावना व उत्तरदायित्व की भावना सम्मिलित है जो नौकरशाही (यहां निन्दात्मक रूप से इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है) के हृदय में जागृत होती है यदि उसकी संरचना में हम, भारत की जनता का दुर्बल वर्ग, भी सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त आमूल परिवर्तन वादी वर्तमान और अन्यायपूर्ण रूप से झुकावयुक्त भूतकाल के बीच के दावे में सामंजस्य नहीं किया जा सकता ।

160-क. अब प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ मार्गदर्शक सिद्धांतों का उल्लेख करूंगा । मैं इस सम्बन्ध में सजग हूं कि यह न्यायालय पूर्वोदाहरणों से विचलन करने की ओर ठीक ही अनिच्छुक रहा है अन्यथा अस्थिर और अनिश्चित स्थिति पैदा होने की संभावना रहती है । निर्णीतानुसरण किया जाना चाहिए । न्या० खन्ना ने इस महत्वपूर्ण आवश्यकता पर ठीक ही जोर दिया है किन्तु साथ ही उन्होंने न्या० ब्रेण्डीज और कारडोजो[1] को भी उद्धृत किया है —

> "जैसा ब्रेण्डीज ने मत व्यक्त किया है—निर्णीतानुसरण हमेशा अभीष्ट होता है, इन सांविधानिक मामलों में भी, किन्तु इन मामलों में वह कभी समादेश नहीं होता है ।

* * * *

1 मगनलाल बनाम नगर निगम—(1975) 1 एस० सी० आर० पृष्ठ 26 और 28 पर न्या० खन्ना द्वारा व्यक्त किए गए मत के अनुसार ।

जैसा मत कारडोजो ने व्यक्त किया है—किन्तु मैं यह बात मानने को तैयार हूं कि पूर्वोदाहरण से चिपके रहने के नियम को अब यद्यपि त्यागना नहीं चाहिए किन्तु कुछ अंश में उस में ढील दी जानी चाहिए। मेरा विचार है कि जब कोई नियम अनुभव के आधार पर सम्यक् रूप से परख करने पर न्याय की भावना या सामाजिक कल्याण से असंगत पाया जाए तो उसे स्पष्ट रूप से स्वीकार करने और पूर्णरूप सें त्यागने में बहुत कम संकोच होना चाहिए। हमें यह कार्य कभी-कभी सांविधानिक विधि के क्षेत्र में करना होता है।"

160-ख. जो कुछ भी हो, इस मामले में कोई मुकदमा उलटा नहीं जा रहा है क्योंकि किसी मुकदमे में भी यह नहीं कहा गया है कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां जाति हैं। न यह कि प्रशासनिक कार्यपटुता को बनाए रखते हुए पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार करना ऐसा युक्तियुक्त उद्देश्य नहीं है जो किसी वर्ग के बहुत अधिक पिछड़ेपन से बोधगम्य अन्तर के तौर पर शासकीय काडर के अन्तर्गत जोड़ा जा सके।

160-ग. **केशवानन्द भारती वाले मामले**[1] में संविधान के भाग 3 और भाग 4 के बीच श्रेष्ठता का विवाद्यक तय कर दिया है। उक्त मामले में एकमत विनिर्णय यह है कि न्यायालय को भाग 4 के सभी निदेशक तत्वों को भाग 3 के व्यक्तिगत मूल अधिकारों में होशियारी से पढ़ना चाहिए। कोई भी भाग दूसरे भाग से उच्चतर नहीं है। **दोराईराजन के मामले**[2] के विनिश्चय से ही न्यायिक मत अनिच्छुक रूप से भाग 3 के अनुकूल था। किन्तु **केशवानन्द भारती वाले मामले**[1] में अनुपूरक सिद्धांत को, जिसके द्वारा दोनों भाग मूलभूत माने गए, सर्वोच्चता प्राप्त हो गई। न्या० खन्ना ने (यदि मैं सादर मत व्यक्त करूं तो) बहुत ही संजीदगी से पृष्ठ 1878 पर यह विचार व्यक्त किए हैं—

"निदेशक तत्वों के रूप में वह प्रतिबद्धता (कमिटमेण्ट) जो संविधान निर्माताओं ने राज्य पर अधिरोपित की है और जिसके अनुसार राज्य को उन लाखों व्यक्तियों का आर्थिक तथा सामाजिक

---

[1] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1461, 1878=[1973] 2 उम० नि० प० 159, 872.

[2] (1951) एस० सी० आर० 525.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

> पुनरुद्धार करना है जो गरीबी, जहालत तथा सामाजिक पिछड़ेपन में डूबे हुए हैं। आने वाली पीढ़ियों को उन निदेशक तत्वों के रूप में दिए गए यह वचन हैं कि उस युग को समीप लाने के लिए राज्य को क्या करना होगा।
>
> *　　　*　　　*
>
> यदि आर्थिक ढांचे को बदलने तथा निदेशक तत्वों में दिए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ऐसा आवश्यक प्रतीत हो तो सम्पत्ति विषयक मूल अधिकारों को कम करने या उनको विनियमित करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।"

न्या० चन्द्रचूड़ ने (मैं फिर सादर उद्धृत करता हूं) निम्नलिखित अंश में स्पष्ट न्यायिक दृष्टि वर्णित की है––

> "जो बात देश का शासन चलाने में मौलिक है वही बात उस बात से कम महत्वपूर्ण नहीं हो सकती जो कि किसी व्यक्ति के जीवन में मौलिक है। कुछ की स्वतंत्रता को सभी की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की दृष्टि से न्यून करना होगा। यदि राज्य ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करने में असफल रहता है जिनमें सभी व्यक्ति मूल स्वतंत्रताओं का उपभोग कर सकें तो कुछ की स्वतंत्रताएं अनेक की दया पर निर्भर करेंगी तब सभी स्वतंत्रताएं समाप्त हो जाएंगी। अतः उनकी स्वतंत्रता को परिरक्षित करने की दृष्टि से विशेषाधिकार प्राप्त थोड़े से व्यक्तियों को उसके एक भाग का त्याग करना ही पड़ेगा।"

160-घ. **भारती के मामले**[1] का परिणाम यह है कि अनुच्छेद 16 (1) और (2) का निर्वचन करते समय अनुच्छेद 46 को विशेष रूप से सार्थक अभिव्यक्ति देनी होगी। निस्संदेह अनुच्छेद 335 अधिक विशिष्ट है और अनुच्छेद 16(1) और (2) की तुलना में प्रवर्तनशीलता के क्षेत्र में अक्खड़पन से उसके महत्व को कम किए बिना उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती या उसे बिगाड़ा नहीं जा सकता।

160-ङ हम अनुच्छेद 16(2) में दिखाई देने वाली बाधा को जैसी कि वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शब्दावली

---

[1] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1461, 2050=[1973] 2 उम० नि० प० 159, 1166-1167.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

में जाति की बाबत फैले हुए भ्रम के कारण प्रतीत होती है, स्पष्ट करते हैं। यह पश्चातवर्ती अभिव्यक्त अनुच्छेद 341 और 342 में परिभाषित की गई है। केवल पढ़ने मात्र से यह अत्यावश्यक तत्व स्पष्ट हो जाते हैं कि [हिन्दू धर्म में जातियां नहीं हैं किन्तु जातियों, मूलवंशों, समूहों जनजातियों, समुदायों या उनके भागों का सम्मिश्रण हैं जो खोज करने पर निम्नतम स्थिति में पाए जाते हैं और जिन्हें बड़े पैमाने पर राजकीय सहायता की आवश्यकता है और राष्ट्रपति ने उन्हें इस प्रकार अधिसूचित किया है। समाज के सबसे पिछड़े वर्ग के समुदाय को जातियों के रूप में भ्रमपूर्ण समझना सांविधानिक गलती है जो संक्षेप नाम से दिग्भ्रमित होने के समान है। इसलिए हरिजनों का संरक्षण करना किसी जाति के प्रतिकूल नहीं है किन्तु नागरिकों में पूर्ण एकता की भावना में वृद्धि करना है। अनुच्छेद 16(2) इस विचारधारा से परे है और जातियों, मूलवंशों, समूहों, समुदायों और गैरजाति वालों के मिश्रित समूह के प्रति संरक्षात्मक विभेद का विस्तार करना हिन्दू धर्म के चार वर्णों से परे है और ऐसा करना उप-अनुच्छेद में सन्निविष्ट जातिहीनत्व की भावना में वृद्धि करने से समझौता करना नहीं है। भारतीय न्यायशास्त्र में प्रभेद करने की समझ के कारण अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को साधारणतया जाति नहीं माना गया है किन्तु एक बड़ा पिछड़ा समूह माना गया है जिसके प्रति समाज द्वारा दया किया जाना उचित है। आयकर अधिनियम, 1961 के निम्नलिखित उपबन्धों से यह सिद्धांत स्पष्ट हो जाएगा--

> "13. कतिपय दशाओं में धारा 11 का लागू न होना—(1) धारा 11 में अन्तर्विष्ट किसी बात का इस प्रकार से प्रभाव नहीं होगा जिससे उस व्यक्ति की पूर्व वर्ष की कुल आय में से, जो उसे प्राप्त करता है, निम्नलिखित उपवर्जित हो जाए।
>
> *　　　*　　　*
>
> (ख) पूर्त प्रयोजनों के लिए किसी न्यास की या किसी पूर्त संस्था की दशा में, जो इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् सृष्ट किया गया है या स्थापित की गई है, उसकी कोई आय,

(i) यदि वह न्यास या संस्था किसी विशिष्ट धार्मिक समुदाय या जाति के फायदे के लिए सृष्ट किया गया है,

* * *

स्पष्टीकरण 2—किसी ऐसे न्यास या संस्था के बारे में जो अनुसूचित जातियों, पिछड़े हुए वर्गों, अनुसूचित जनजातियों या स्त्रियों और बच्चों के फायदे के लिए सृष्ट किया गया है या स्थापित की गई है, यह नहीं समझा जाएगा कि वह इस धारा के खंड (ख) के उपखंड (i) के अर्थ में धार्मिक समुदाय या जाति के फायदे के लिए सृष्ट या स्थापित न्यास या संस्था है।

160-च. अपीलार्थी की राय में दूसरी अड़चन अनुच्छेद 16(4) से सम्बन्धित है। मेरे विचार से यह उप-अनुच्छेद अपवाद नहीं है किन्तु इसमें एक जोरदार कथन है जिसके द्वारा पिछड़े हुए वर्ग के व्यक्तियों के दावों और उन्नत वर्गों के लिए, जो साधारणतया हकदार हैं, स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा के अवसरों के बीच सामंजस्य बैठाने का उपबंध है। न्या० सुब्बा राव (जैसे वे उस समय थे) ने **देवदासन वाले मामले**[1] में यह मत व्यक्त किया—

> "'इस अनुच्छेद की किसी बात से' पद विधायी उपाय है जिसके द्वारा विधायिका अपना आशय बहुत जोरदार ढंग से व्यक्त करती है कि उसके अधीन प्रदत्त की गई शक्ति मुख्य उपबंध द्वारा किसी भी प्रकार से सम्बन्धित नहीं है किन्तु वह मुख्य उपबंध से बाहर है। इसके द्वारा वास्तव में कोई अपवाद नहीं बनाया गया किन्तु शक्ति परिरक्षित की गई है जो अनुच्छेद के किसी अन्य उपबंध द्वारा अबाधित है।"

160-छ. यह सच है कि ऊपरी तौर पर ऐसा कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 16(4) अपवाद है, किन्तु बारीकी से परीक्षा करने पर सांविधानिक रूप से मान्य किए गए वर्गीकरण का एक उदाहरण है। अंग्रेजों के शासनकाल में भी भारतीयों के लिए लोक सेवाएं आकर्षण की

---

[1] (1964) 4 एस० सी० आर० 680, 700.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

वस्तु रही हैं क्योंकि वे राज्य शक्ति की प्रतीक हैं और इसलिए उनके सम्बन्ध में एक विशेष अनुच्छेद बनाया गया है। यह जरूरी नहीं है कि अनुच्छेद 16(1) व्यावृत्ति खंड हो किन्तु बातों को संदेह की संभावना से परे बनाने की प्रारूपकार की अतिचिन्ता के कारण अनुच्छेद 16(4) रखा गया है (उदाहरण के लिए देखिए 59 आई० ए० 206)।

161. पिछड़े हुए और गैर पिछड़े हुए वर्ग पर आधारित "आरक्षण" जो प्रशासनिक मानदंड के लिए हानिकर न हो जैसा इस न्यायालय ने बार-बार कहा है, वास्तव में समता के सिद्धांत को युक्तियुक्त अन्तर पर आधारित वर्ग और समूह के भीतर लागू करना ही है जिसका उद्देश्य कार्यपटुता बनाए रखते हुए पिछड़े वर्गों की अभिवृद्धि करना है। अनुच्छेद 16 (1) और (4) एक सदृष्य ही हैं। इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(1) का अपवाद है। क्या घोर पिछड़ेपन पर आधारित वर्गीकरण से अनुच्छेद 16(4) अनावश्यक हो जाता है ? नहीं। आरक्षण से उस सीमा तक एकाधिकार प्रदत्त किया जाता है। किन्तु अनुच्छेद 16(1) के अधीन मंजूर किए गए वर्गीकरण सामान्य तौर पर कम लाभ के होते हैं। पूर्ववर्ती अधिक कठोर होते हैं और पश्चात्वर्ती अधिक नमनीय होते हैं। यद्यपि कभी-कभी वे एक दूसरे पर अतिव्याप्त हो सकते हैं। अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत सभी पिछड़े हुए वर्ग आते हैं किन्तु अनुच्छेद 46 पर आधारित अनुच्छेद 16(1) के अधीन समूह में रखने का फायदा प्राप्त करने के लिए और जैसा मैंने बतलाया है, हरिजनों द्वारा सहे जाने वाले अति पिछड़ेपन और प्रशासनिक कार्यपटुता को बनाए रखने के दोनों पहलुओं को पूरा किया जाना चाहिए।

162. शेष बचा हुआ विवाद जो सारभूत है, समान अवसर के नियम पर आधारित है और वह नियम 13-एए द्वारा उसके अतिलंघन से भी यदि कोई हो, सम्बन्धित है। विद्वान् महाधिवक्ता ने उचित और ठीक ही यह बात मान ली है कि आक्षेपित नियम अनुच्छेद 16(4) के बाहर है। इसलिए उसने उन्हें परीक्षाओं को पास करने से दी गई अस्थायी छूट को विधिसम्मत बनाए रखने के लिए यह दलील दी कि केवल सांविधानिक रूप से विधिमान्य वर्गीकरण ही किया गया था और अपनी इस दलील के समर्थन में उन्होंने भारतीय विनिर्णय और अमेरिका के न्यायांग से सम्बन्धित लेख उद्धृत किए।

163. यह घिसीपिटी सांविधानिक विधि है कि अनुच्छेद 14 से 16 गारण्टी की गई समता की सामान्य संहिता है। पहले में व्यापक सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं और अन्य दो अनुच्छेदों में ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण अतिसंवेदनशील और जातिवाद और भ्रष्टाचार के वातावरण में सामाजिक दृष्टिकोण से विवादात्मक सिद्धांत अधिकथित हैं।

164. हमें इस बात पर विचार करने के लिए रुकने की जरूरत नहीं है कि क्या अनुच्छेद 16 प्रोन्नति पर की गई नियुक्तियों को लागू होता है। वह लागू होता है। और न हमें इस बात के लिए चिन्तित होने की आवश्यकता है कि यदि थोड़े समय के लिए कुछ व्यक्तियों में न्यूनतम अर्हताएं नहीं हैं तो प्रशासनिक संकट पैदा हो जाएगा। एक बात निश्चित है जैसा मैंने पहले बतलाया है, कि ये परीक्षाएं दक्षता के लिए बहुत अधिक महत्व की नहीं हैं। और फिर हम रजिस्ट्रीकरण विभाग में लिपिकों के पदों पर विचार कर रहे हैं। जहां दूसरे के लिए मदद स्वरूप लिखना और ऊपरी तौर पर विशेष जानकारी रखने से ही कर्तव्य का बहुत अच्छी तरह से पालन किया जा सकता है और सरकार परीक्षा संबंधी अर्हता को केवल मुल्तवी कर रही है, त्याग नहीं रही है क्योंकि परीक्षा संबंधी अर्हता मुल्तवी की गई है न कि त्यागी गई है। जहां तक आधारभूत दक्षता का परीक्षाओं से संबंध है, प्रत्येक बात मामले की परिस्थिति और पद पर निर्भर करती है।

165. आधारभूत प्रश्न सामाजिक गतिशीलता है जो अनुच्छेद 16(1) में विवक्षित है। हमें आधारभूत बात पर विचार करना चाहिए और ऊपरी तड़क-भड़क की उपेक्षा कर देनी चाहिए। व्यापक अर्थ में अवसर समता, सोपानात्मक समाज के सदस्यों के लिए तब ही अर्थपूर्ण है जब एक ऐसी कुशल नीति अपनाई जाए जिसके द्वारा पिछड़े हुए व्यक्तियों को बहुत अच्छा वातावरण मिले और जब पूर्णरूप से दबे हुए समूह लोक जीवन और आर्थिक गतिविधियों जिसके अन्तर्गत राज्य के अधीन सेवा भी सम्मिलित है, में उचित दावा कर सकें या जब राज्य के क्रियात्मक रूप से कार्य करने के परिणामस्वरूप वर्गहीन और जातिहीन समाज विकसित हो। पिछड़े हुए सामाजिक समूहों को विशेष सावधानी से मदद करने के लिए कार्य करना ऐसा एक कदम है जो व्यापक और स्थायी

समता के विरुद्ध नहीं है। **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा**[1] वाले मामले में मैंने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"इस असमानता भरे संसार में इस सिद्धांत को कि सभी व्यक्ति बराबर हैं, मानने में भी कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां हैं क्योंकि पूर्ण समता से या तो हिंसात्मक निर्दयता को बल मिलता है या फिर उससे निष्क्रिय अदक्षता को बढ़ावा मिलता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि समता के खंडों को उपयोगी बनाए जाने के लिए साधारण वर्ग एवं श्रेष्ठ वर्ग के बीच कोई कल्पनात्मक और वास्तविक अस्थायी व्यवस्था की जाए। इस उपयोगितावाद से 'वर्गीकरण' और 'अन्तर' की न्यायिक व्याख्या तो हुई ही है, साथ ही साथ इसके उप-उत्पाद के रूप में समान व्यक्तियों के बीच समता वाली और असमान बातों पर भिन्न-भिन्न रूप से व्यवहार किए जाने वाली बात भी आ गई है। अनुच्छेद 14 से 16 का सामाजिक अभिप्राय अर्थहीन एकरूपता नहीं है। यह तो ऐसी प्रक्रिया है जिससे निम्न वर्ग की अप्रकट योग्यताओं को वृहत्तर सुविधाएं प्रदान करके समता के बृहत क्षेत्र में समता लाई जा सकती है। यह कर्मण्य और योग्य व्यक्तियों के स्थान पर अकर्मण्य और निष्क्रिय मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को रखने की कोई कार्यपद्धति नहीं है। तथापि, यदि राज्य वर्गीकरण का उपयोग हैसियत वालों और विशिष्ट वर्ग को बचाने के लिए कर्तव्याकर्तव्य के विचार से करता है तो अनुच्छेद 14 से 16 के लिए नावापसी सीमा आ जाती है और ऐसी चालाकियों को खत्म करने के लिए न्यायालय की अधिकारिता सचेत हो जाती है। अनुच्छेद 16 की आत्मा यही है कि वातावरण संबंधी संकटों को प्रभावहीन बनाते हुए जनसाधारण की योग्यताओं में अभिवृद्धि की जाए और विशिष्ट वर्ग के इस मिथ्या तर्क को, कि प्रतिभा तो कुछ का विशेषाधिकार है और उन्हीं को शासन करना चाहिए, दबाए बिना सेवा-काल में विकास के सभी अवसर प्रदान किए जाएं और वर्गीकृत समता के सिद्धांत द्वारा, जिसके परिणामस्वरूप बुरी से बुरी स्थिति में वर्ग-प्रभुता पैदा हो जाती है, अनुच्छेद 14 और 16 की गणतन्त्रात्मक भावनाओं को दबाया न जाए।"

---

[1] (1974) 1 एस० सी० आर० 771, 791=[1973] 3 उम० नि० प० 1341.

ऊपर व्यक्त किए गए मत का इस न्यायालय ने **मुहम्मद सुजात अली बनाम भारत संघ**[1] वाले मामले में अनुमोदन किया है।

166. श्री कृष्णमूर्ति अय्यर ने मामलों की एक श्रृंखला से समर्थन प्राप्त करके हमारे समक्ष इस बात पर ज़ोर दिया है कि इस न्यायालय ने सिवाय उस स्थिति के जब प्रोन्नति उच्चतर क्रियात्मक दक्षता के लिए योग्यता पर आधारित हो, समरूप समूह के भीतर प्रोन्नति के लिए वर्गीकरण किए जाने पर अप्रसन्नता प्रकट की है और इसलिए एक वर्ग के भीतर प्रोन्नति के लिए समूह बनाने हेतु नए आधार को स्थान देना सांविधानिक अभिशाप बन जाएगा। मैं ऐसा नहीं सोचता हूं। इस तथ्य से कि प्रोन्नति पदों के लिए इस न्यायालय ने बेहतर शिक्षा सम्बन्धी मानदण्डों को उचित ठहराया है, अन्य युक्तियुक्त प्रभेदों की सम्भावना समाप्त नहीं होती है, विशेष रूप से जिन प्रभेदों का उद्देश्य से सम्बन्ध हो। सही कसौटी यह है कि वर्गीकरण का उद्देश्य क्या है और क्या वह अनुज्ञेय है। इसके अतिरिक्त क्या अन्तर दृढ़ और सारभूत है और अनुमोदित उद्देश्य से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित है। मैं इस बेदाग आधार से सहमत हूं। किन्तु केवल उस कारण से ही उससे समता का उल्लंघन नहीं होता है। मेरा निष्कर्ष यह है कि अनुच्छेद 14 से 16 की आत्मा शाब्दिक समता में नहीं है किन्तु वह जाहिर असमानता के उत्तरोत्तर समाप्त किए जाने से सम्बन्धित है। वास्तव में बहुत अधिक असमान व्यक्तियों को समान मानना स्पष्ट रूप से चालाकीपूर्ण अन्याय है। अवसर समता आशा है न कि दुराशा।

167. यदि अनुच्छेद 14 में युक्तियुक्त वर्गीकरण मान्य किया गया है तो अनुच्छेद 16(1) में भी यही बात है और इस न्यायालय ने ऐसा अभिनिर्धारित किया है। प्रस्तुत मामले में बहुत कम प्रतिनिधित्व वाले और बहुत अधिक उपेक्षित वर्गों के व्यक्तियों की आर्थिक प्रगति और उनके दावों की वृद्धि, जो अन्यथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के तौर पर वर्णित किए गए हैं, निरन्तर प्रशासनिक दक्षता बनाए रखने के उद्देश्य से संगत हैं जिसे अनुच्छेद 46 और 335 द्वारा मंजूरी प्राप्त है और जो अनुच्छेद 16(1) में किए गए उपबन्ध के अनुरूप है। जो

---

1 ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1631, 1653=[1974] 2 उम० नि० प० 1720.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अन्तर बहुत अधिक प्रतिरोधात्मक है वह हरिजनों की निराशाजनक सामाजिक स्थिति है। निस्सन्देह इसका ऊपर वर्णित उद्देश्य से युक्तियुक्त सम्बन्ध है। पहले मैंने जो बात बतलाई है, उसके प्रति सावधानी रखने के सम्बन्ध में मैं चेतावनी देता हूं। इस सूत्र के अनुसार सभी पिछड़ी जातियों को मान्यता नहीं दी गई है। ऐसा करना अनुच्छेद 16(1) और (2) दोनों को ही नष्ट कर देने के बराबर होगा। सामाजिक विषमता इतनी भयंकर और सारभूत होनी चाहिए जिससे कि उसको हल्के विभेद के लिए आधार बनाया जा सके। यदि हम ऐसे वर्ग की खोज करते हैं तो हमें अन्य जाति का कोई बड़ा खण्ड नहीं मिल सकता जिसे अनुच्छेद 16(1) और 16(2) से छूट दी जा सके। राजनैतिक दबाव और अन्य प्रभावों का प्रयोग करने से असांविधानिक विभेद किए जाने का खतरा उत्पन्न होगा। यदि वर्गीकरण का वास्तविक आधार जाति है जिसे नकाब के तौर पर पिछड़ी जाति कहा जाए तो न्यायालय को इस प्रकार की साम्प्रदायिक चालबाजी को अवैध कर देना चाहिए। द्वितीयतः संविधान द्वारा केवल हरिजनों के दावों को मान्यता दी गई है (अनुच्छेद 335) और संविधान द्वारा प्रत्येक पिछड़े वर्ग को मान्यता नहीं दी गई है। अनुच्छेद 46 की रूपरेखा कमोबेश वैसी ही है। अतः हम तत्काल यह अभिनिर्धारित कर सकते हैं कि जातिवाद चोर दरवाज़े से वापस नहीं आ सकता और आपवादिक रूप से बिरले मामलों के सिवाय हरिजनों के अलावा कोई अन्य वर्ग संविधान द्वारा गारण्टी की गई अवसरसमता की चुनौती पार नहीं कर सकता। उनकी एकमात्र आशा अनुच्छेद 16(4) में है। मैं अपने विद्वान् भ्राता न्यायाधिपति फ़ज़ल अली से इस सम्बन्ध में सहमत हूं कि पूर्ववर्ती कुछ विनिर्णयों में किसी विशिष्ट वर्ष में पचास प्रतिशत की गणित सम्बन्धी सीमा की बाबत बहुत अधिक ज़ोर नहीं दिया जा सकता। किसी विभाग में समग्र प्रतिनिधित्व किसी विशिष्ट वर्ष में भर्ती पर निर्भर नहीं करता है। किन्तु काडर की कुल संख्या पर निर्भर करता है। अनुच्छेद 16(4) का उन्होंने जो निर्वचन किया है, मैं उनके अग्रनयन के नियम से सहमत हूं।

168. अमरीकी न्यायशास्त्र में काले व्यक्तियों की लोक नियोजन और शिक्षा की अड़चनों को दूर करने की समस्या के प्रति दृष्टिकोण ऐसा ही है, यद्यपि यूनाइटेड स्टेट्स के संविधान के चौदहवें संशोधन द्वारा विधियों के समान संरक्षण का सभी नागरिकों को आश्वासन दिया गया है।

169. न्यायशास्त्र कार्यशील होने के लिए भंगी कालोनी और ब्लैक घैटों के प्रति बुद्धिमत्ता से अनुकूल रुख अपनाना चाहिए जिससे सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था के भीतर अवसरों की समता उपलब्ध कराई जा सके। ऐसा लम्बे समय से उन्हें वंचित किए जाने से हुई कमी की पूर्ति करके किया जाना चाहिए। अतः यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि ऐसे अध्युपाय का प्रयोजन, जिसके द्वारा शंकास्पद वर्गीकरण वास्तव में बहुत हल्का है अर्थात् अध्युपाय समाज में सभी जनजातियों और समूहों और समुदायों के लिए समान स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रकल्पित है और प्रयत्न उस कार्यक्रम के एक भाग के तौर पर वर्गीकरण का उपयोग करने के लिए है तो वह राज्य को ऐसा करने के लिए साधनों को चुनने की अनुमति न्यायसंगत रूप से तब तक दे सकता है, जब तक कि चुने गए साधन उस उद्देश्य को प्राप्त करने से युक्तियुक्त रूप मे सम्बन्धित हों। प्रभेद कार्य की प्रकृति द्वारा आकस्मिक रूप से अधिरोपित बाधाओं और सामाजिक व्यवस्था जैसे जाति, संरचना और दबे हुए समूहों के बीच प्रतीत होता है। व्यापक अर्थ में चूंकि समाज इन पश्चात्वर्ती दशाओं के लिए ज़िम्मेदार है, अतः उसका यह कर्त्तव्य भी है कि वह व्यक्तियों के बीच उन्हें सुसंगत अन्तर माने और जब कभी उनके द्वारा अन्य नागरिकों द्वारा उपभोग किए गए आधारभूत न्यूनतम लाभों तक पहुंचने में समान रूप से बाधा पड़े तो समान होने वाली हानि की पूर्ति करे। एक अर्थ में इस सिद्धान्त द्वारा राज्य कार्यवाही की पारम्परिक विचारधारा व्यापक बनाता है जिसके द्वारा राज्य से उन असमानताओं के प्रति ध्यान देने की अपेक्षा की जाती है जिसके लिए राज्य प्रत्यक्ष रूप मे ज़िम्मेदार नहीं है किन्तु जो संगठित राज्य के अस्तित्व के लिए सहगामी तत्व हैं। मैं हार्वर्ड लॉ रिव्यू 1968-1969, जिल्द 82 से 'डेवलपमेण्ट्स इन दि लॉ'—इक्वल प्रोटैक्शन नामक लेख से उद्धरण नीचे दे रहा हूं—

> "उदाहरण के लिए राज्य अर्हता सम्बन्धी परीक्षाओं से जातीय समूहों को छूट देने का विनिश्चय कर सकता है या ऐसी परीक्षाओं में जातीय आधार पर कुछ रियायतें दे सकता है जो अक्सर अनुभवी व्यक्तियों को दी जाती हैं (पृष्ठ 1105-1106)।"

> "जहां जातीय वर्गीकरण भूतकालिक एवं सतत चालू जातीय विभेद से उद्भूत होने वाले वंचनों को दूर करने के लिए बाह्य

1975(9) eILR(PAT) SC 1

रूप से प्रयुक्त किए जाते हैं, वहां न्यायालय पुनरीक्षण के कम कठोर मानदण्ड द्वारा अनुज्ञेय या तार्किक मानदंडों द्वारा अध्युपायों को अधिनिर्णीत करना उचित समझ सकता है, संभवतः नियामक अध्युपायों के सांविधानिक मूल्यांकन में मामूली तौर पर अनुज्ञेय या तार्किक मानदंडों द्वारा ।

* * *

फिर भी यदि जातीय वर्गीकरण का कुछ नकारात्मक शैक्षिक प्रभाव हो, वर्गीकरण इतने प्रभावशाली हो सकते हैं कि इस बाधा के बावजूद उन्हें किया ही जाना चाहिए। यदि अध्युपायों से कालों को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था में प्राप्त होने वाले उन अवसरों में वृद्धि होती है जो मामूली तौर पर उन्हें उपलब्ध नहीं थे, तो मनुष्यों में अन्तर किए जाने से होने वाली हानि से उनका मूल्य अधिक ही होगा । यह हो सकता है कि श्वेत व्यक्तियों के साथ-साथ काले व्यक्तियों का वास्तव में भाग लेना अन्ततः बहुत महत्वपूर्ण साबित होगा और इससे विभेद के विरुद्ध स्थायी शिक्षाप्रद प्रभाव पड़ेगा ।

* * *

अतः यदि न्यायालय का यह विश्वास हो जाता है कि किसी जातीय वर्गीकरण का उपयोग करने वाले किसी अध्युपाय के प्रयोजन सचमुच में हल्के स्वरूप के हैं, अर्थात् सभी जातियों के लिए समाज में समान स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रकल्पित हैं तो उसके द्वारा राज्य को ऐसा करने के लिए साधनों को चुनने की मंजूरी देना तब तक न्यायसंगत होगा, जब तक कि चुने गए साधन उस ध्येय को प्राप्त करने के लिए उससे युक्तियुक्त रूप से सम्बन्धित हों ।"

170. व्यापक रूप से समता प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक समूह असमानता मिटाने के लिए राज्य की एक संबन्धित कार्यवाही का दृष्टान्त यू० एस० सुप्रीम कोर्ट का हाल का एक विनिर्णय है **श्लेसिंगर बनाम बैल्लार्ड**[1] वाला मामला, जिसमें अमेरिकी महिलाओं के लिए अच्छा शकुन इस बात का सूचक है कि नियोजन में समता की वृद्धि करने के लिए किए जाने वाले वर्गीकरण के संकेत के प्रति उच्च न्यायपालिका

---

[1] 419 यू० एस० 42 लॉयर्स इडिशन द्वितीय 610.

का झुकाव है। इस मामले में एक व्यक्ति ने यू० एस० नेवी में महिला अधिकारियों को अधिक वर्षों तक कमीशन प्राप्त सेवा में बने रहने के लिए हकदार बनाने वाले उपबंध पर आक्षेप किया था। न्यायालय ने लिंग समता की असमता दूर करने के अंततः उद्देश्य को प्राप्त करने के आधार पर इस असमान कदम को वैध अभिनिर्धारित करते हुए यह मत व्यक्त किया--

> "धारा 6401 को इस प्रकार अधिनियमित करके और कायम रखते हुए कांग्रेस ने इस प्रकार बिल्कुल तर्कसंगत रूप से विश्वास किया होगा कि महिला लाइन अधिकारियों को प्रोन्नति के लिए अपने सहयोगी पुरुषों की तुलना में बहुत कम अवसर हैं और इसलिए महिला अधिकारियों को ऋजु और साम्यापूर्ण कैरियर संवृद्धि कार्यक्रम का उपबन्ध करना महिला अधिकारियों के लिए पदावधि की लम्बी कालावधि के उद्देश्य से सुसंगत होगा।"

आधारभूत विचार सांविधानिक वर्गीकरण की व्यापक कसौटी है और इससे मैं जिस दिशा में सोच रहा हूं उससे और शक्ति प्राप्त होती है।

171. भारत में आंकड़ों से यह बात सामाजिक वास्तविकता के तौर पर साबित है कि हरिजनों के नियोजन में स्थिति बहुत गिरी हुई है और पीढ़ियों से उन्नति की गति के मंद होने के विरुद्ध लड़ाई में यह मुख्य समस्या है और लोक सेवाओं में उनके नियोजन में "आरक्षण" और अन्य गतिविधियों द्वारा कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा है। ऐसी अन्याययुक्त स्थिति में यंत्रवत् समानता बनाए रखना असमानता को स्थायी बनाना है। इस पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए राज्य द्वारा बहुत से कार्यक्रमों को लागू करना चाहिए। लिपिकीय पदों (निम्न या उच्च श्रेणी) के निचले स्तर पर परीक्षा सम्बन्धी योग्यता में छूट बहुरूपी व्यूह रचना का एक भाग है, व्यापक समता, यद्यपि जो विभेदात्मक समता प्रतीत होती है, स्थापित करना है।

172. यदि न्यायालय के पास खासतौर पर भारतीय भूमि पर सुनने वाली चौकियां वास्तविक रूप में होतीं तो अवसर समता के आधार पर उसका निर्धारण विधिपरायण या वैयक्तिक नहीं बना रह सकता किन्तु पीढ़ियों से चली आ रही असमानता को सुधारने के लिए जो वास्तव में असली समता का माध्यम है, हमारे संविधान की आदेशात्मक आज्ञा को वे अनुभव करते। स्टरलिंग टकर ने अपनी पुस्तक "फार ब्लैक्स ओनली"

में निम्नलिखित भयानक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे हरिजनों की स्थिति के प्रति न्यायिक दृष्टि जागृत होगी और इसलिए मैं उन शब्दों को उद्धृत करता हूं—

"यदि श्वेत अमरिकियों ने हमें मानवों के रूप में देखना सीख लिया है, जो उनके समान हैं और जिनकी आशा पर कोई वैयक्तिक बंधन नहीं है या जो डरे हुए नहीं है, तो उन्होंने हमारी आक्रोश और अवज्ञा की भावना को समझ लिया होगा। वे हमारी भावना के अनुरूप सुविधा देना चाह सकते थे और वे उसे समझ भी सकते थे। वे हमारे गौरव की आवश्यकता को समझ सकते थे और इस बात को भांप सकते थे कि हमारे लिए अश्वेत शक्ति का क्या अर्थ है। किन्तु जैसा राल्फ एलिसन ने प्रभावशाली रूप से मत व्यक्त किया है कि उन्होंने वास्तव में कभी भी हमें देखा नहीं। मैं एक अदृश्य मनुष्य हूं। मैं हाड़-मांस से युक्त मनुष्य हूं जिसमें तन्तु और तरल रक्त है और मेरे बारे में यह भी कहा जा सकता है कि मेरे पास दिमाग़ भी है। मैं अदृष्य हूं, इसे समझिए। इसका कारण केवल यह है कि जनता मुझे...... के तौर पर देखने से इंकार करती है। जब वे मेरे पास आते हैं तो वे केवल मेरे परिपार्श्व को ही देखते हैं। वे या तो स्वयं को देखते हैं या अपनी काल्पनिक वस्तु देखते हैं। वास्तव में हर वस्तु में हर जगह मेरे सिवाए और बातें देखते हैं। मैं जिस अदृष्यता के प्रति निर्देश कर रहा हूं, वह उन व्यक्तियों की आंखों की विचित्र वृत्ति के कारण है जिनके मैं सम्पर्क में आता हूं। उनकी ऐसा अन्तर्दृष्टिकी बनावट के कारण होता है। वे आंखें जिनसे वे वास्तविकता को अपनी भौतिक आंखों के माध्यम से देखते हैं..................................

आपको आश्चर्य होगा कि क्या वे दूसरे व्यक्तियों के मस्तिष्क में केवल वहम (भूत) ही नहीं हैं.................तुम अपने को यह विश्वास दिलाने के कष्ट से दुखी हो कि तुम वास्तविक दुनिया में रहते हो और तुम सभी ध्वनि और दर्द के एक भाग हो और तुम घूंसे से प्रहार करते हो। तुम धिक्कारते हो और यह कि तुम शपथ लेते हो कि तुम उन्हें ऐसा बना दोगे जिससे वे तुम्हें मान्यता देंगे और हाय, ऐसा यदाक़दा ही होता है।"

1975(9) eILR(PAT) SC 1

173. मैं विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति से सहमति व्यक्त करते हुए इस आशंका से और उन कारणों से जो मैंने पहले ही बतला दिए हैं यह चेतावनी दी है कि कोई भी जाति चाहे वह देखने में कितनी भी पिछड़ी हुई हो या परित्यक्त होने का दावा करती हो, संविधान द्वारा सभी नागरिकों को गारण्टी किए गए अवसर समता के सांचे को खंडित करने की उसे इजाजत नहीं दी जा सकती। उनके लिए उत्तर यह है कि अत्यधिक दरिद्रता के मामलों में जिससे उनके उदात्त क्रोध का दमन होता हो समानता ही है—न इससे कुछ कम और न कोई अन्य वस्तु है। पिछड़े हुए वर्गों में से ऊंचे पदों को धारण करने वाले दो प्रकार की क्षति पहुंचाते हैं: वे पूरे समुदाय को यह विश्वास करने का भुलावा देते हैं कि पिछड़ापन दूर हो रहा है। वे राष्ट्र द्वारा वर्गीकरण "आरक्षण" आदि द्वारा पद के लिए पिछड़े हुए वर्गों को दिए गए फायदों से जरूरतमंद समुदाय को वंचित करते हैं। तथापि हमारा सांविधानिक धर्म पिछड़ेपन को हमेशा बनाए रखने का नहीं है और न वह की गई तरक्की की परवाह किए बिना "वर्गीकरण" के सम्मान को हमेशा बनाए रखने का है। किन्तु वह सामाजिक बुराई को क्रमशः उत्तरोत्तर रूप से मिटाने और बनावटी बैसाखियों को क्रमशः हटाने का है। न्यायालय को भावुकता युक्त राजनीति का प्रतिरोध करते हुए वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। किन्तु उस मानदण्ड से जैसा कि इस मामले में हमें आंकड़ों से बतलाया गया है, निर्धन हरिजनों को लम्बा सफर तय करना है और तब तक प्रशासन को वायदे पूरे करने हैं।

न्यायाधिपति ए० सी० गुप्ता के मतानुसार।

न्यायाधिपति गुप्ता—

मैं अपने बन्धु न्यायाधिपति खन्ना से इस सम्बन्ध में सहमत हूं कि यह अपील खारिज की जानी चाहिए और उन्हीं कारणों से उसे खारिज किया जाना चाहिए जो कि उन्होंने बताए हैं। मैं केवल इस प्रश्न के एक पहलू के संबंध में, जो कि इस मामले में विनिश्चय के लिए उत्पन्न हुआ है, मात्र कुछ शब्द जोड़ना चाहूंगा। केरल राज्य के रजिस्ट्रीकरण विभाग में कार्य कर रहे निम्न श्रेणी लिपिकों को, उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में प्रोन्नति का पात्र होने के लिए निश्चित समय के भीतर कुछ विभागीय परीक्षाएं पास करनी होती हैं। इन निम्न श्रेणी लिपिकों में से कुछ के लिए जो कि अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों

के हैं, सरकार ने केरल स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विसिज़ रूल्स, 1958 (केरल राज्य और अधीनस्थ सेवा नियम, 1958) के नियम 13-एए द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए लगातार आदेश करके परीक्षाएं पास करने के समय में वृद्धि कर दी। केरल उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि नियम 13-एए संविधान के अनुच्छेद 16(1) और (2) का अतिक्रमण करता है और इसी कारण से उसने उस नियम के अधीन किए गए आदेश अपास्त कर दिए। अपीलार्थी केरल राज्य और प्रत्यर्थियों में से कुछ प्रत्यर्थियों तथा मध्यक्षेपियों की ओर से नियम 13-एए की विधिमान्यता को अनुच्छेद 16(1) के अर्थान्वयन के आधार पर न्यायोचित ठहराने की कोशिश की गई है, जिसके संबंध में ऐसा दावा किया गया है कि वह संविधान के अनुच्छेद 46 और 335 के उपबंधों पर आधारित है। यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 16(1) को अन्य दोनों अनुच्छेदों की रोशनी में पढ़ा जाना चाहिए। मेरी समझ में यह बात नहीं आई है कि उससे वस्तुतः क्या अभिप्रेत है; न तो अनुच्छेद 46 और अनुच्छेद 335 में अनुच्छेद 16(1) का उल्लेख किया गया है और न ही अनुच्छेद 16(1) में उनमें से किसी के प्रति निर्देश किया गया है। उस संविधान में जिसको हम भारत के लोगों ने आत्मार्पित किया है, सभी तीनों अनुच्छेद साथ-साथ विद्यमान हैं और यदि यह कहना सही है कि उनमें से एक को अन्य दो की रोशनी में पढ़ा जाना चाहिए, तो यह सुझाव देना समान रूप से सही है कि उनमें से दो को अन्य की रोशनी में पढ़ा जाना चाहिए। इससे यह अभिप्रेत है कि संविधान जैसे सजीव उपकरण के विभिन्न भागों का अर्थान्वयन सामंजस्य के साथ किया जाना चाहिए, किन्तु यह बात, यह सुझाव देने के बराबर नहीं है कि जहां एक भाग का विस्तार और प्रविषय स्पष्ट है, वहां भी उसकी अनुरूपता दूसरे भाग के साथ साबित करने के लिए उसका न्यूनन किया जाना चाहिए या उसका विस्तार किया जाना चाहिए या उसे संशोधित किया जाना चाहिए। शरीर के प्रत्येक अंग का अपना कार्य होता है और किसी एक का कार्य दूसरे का कार्य बनाने की कोशिश करना अनावश्यक तथा अबुद्धिमत्तापूर्ण दोनों ही है; इसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण कार्य-पद्धति में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

175. अनुच्छेद 16(1) ऐसे अधिकार की घोषणा करता है जो कि संविधान के भाग 3 में प्रत्याभूत मूल अधिकारों में से एक है,

और अनुच्छेद 13(1) ऐसी सभी विधियों को अविधिमान्य ठहराता है जो कि ऐसे अधिकारों से असंगत हैं। अनुच्छेद 16(1) में यह अधिकथित किया गया है—

> "राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।"

अनुच्छेद 46 संविधान के भाग 4 में है जिसमें "राज्य की नीति के निदेशक तत्व" दिए गए हैं। अनुच्छेद 46 इस प्रकार है:—

> "राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"

अनुच्छेद 37 में यह उपबन्ध किया गया है कि भाग 4 में दिए गए उपबन्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होंगे किन्तु तो भी इनमें दिए हुए तत्व "देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।" यह समझना कठिन है कि अनुच्छेद 46 जिसके अधीन, वहां तक जहां तक कि प्रस्तुत प्रयोजन के लिए सुसंगत है, राज्य से इस बात की अपेक्षा की गई है कि वह राज्य के कमज़ोर वर्गों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के, अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा, किस प्रकार से अनुच्छेद 16(1) का अर्थान्वयन करने में सहायक हो सकता है।

176. अनुच्छेद 335 संविधान के भाग 16 में है जिसमें 'किन्हीं वर्गों से संबंधित कुछ विशेष उपबन्ध' किए गए हैं। अनुच्छेद 335 में यह उपबन्धित है—

> "संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा।"

177. यह अनुच्छेद अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में कोई ऐसा अधिकार सृष्ट नहीं करता, जिसका दावा वे सेवाओं

और पदों पर नियुक्ति के मामले में कर सकें; जो दावा वे कर सकते हैं, उसकी खोज अन्यत्र, उदाहरणार्थ अनुच्छेद 16(4) में, करनी होगी। अनुच्छेद 335 में यह कहा गया है कि ऐसे दावों पर प्रशासनिक कार्यपटुता के अनुसार विचार किया जाएगा, यह ऐसा उपबन्ध है जो कि ऐसे दावों की परिधि को नहीं बढ़ाता बल्कि उनको निर्बन्धित करता है, जो कि वे अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के रूप में कर सकें। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 335 में अनुच्छेद 16(1) को समझने के लिए कोई भी बात मौजूद नहीं है।

178. अनुच्छेद 16(1) को, जो कि नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सभी नागरिकों के लिए अवसर समता सुनिश्चित करता है, अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की साधारण गारण्टी के उदाहरण या घटना के रूप में वर्णित किया गया है (देखिए—**जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा और अन्य**[1] वाला मामला)। अनुच्छेद 14 की बाबत, जिसमें विधि के समक्ष समता तथा विधियों के समान संरक्षण की गारण्टी दी गई है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सभी व्यक्तियों को उनके बीच सभी अन्तरों की उपेक्षा करके पूर्ण रूप से समान व्यवहार पर जोर नहीं दिया गया है, किन्तु उसमें समान के बीच ही समता के लिए उपबन्ध किया गया है। इस न्यायालय ने **टी० देवदासन** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि "जब कि इस अनुच्छेद का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि राज्य एक नागरिक और दूसरे ऐसे नागरिक के बीच जो कि उसी प्रकार का हो, खटकने वाला प्रभेद या मनमाना विभेद नहीं करेगा और उनमें जो भी अन्तर हो, वे किसी विशिष्ट विधि को लागू करने के प्रयोजन के लिए बिल्कुल भी सुसंगत नहीं हैं, युक्तियुक्त वर्गीकरण अनुज्ञेय" है। "इस प्रकार से युक्तियुक्त वर्गीकरण अनुज्ञेय होता है और प्रायः इस समता को प्राप्त करने के लिए आवश्यक होता है। अनुच्छेद 16(1) में भी, जो कि राज्याधीन नियुक्तियों के लिए अवसर के विशेष संदर्भ में समता के साधारण नियम लागू होने का उदाहरण है, इस प्रकार की पूर्ण समता की अपेक्षा नहीं की गई है। जिस बात की गारन्टी की गई है, वह अवसर समता है, न कि इससे अधिक कोई बात।

[1] (1974) 1 एस० सी० आर० 771=[1973] 3 उम० नि० प० 1341.

[2] (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

अनुच्छेद 16(1) या (2) किसी भी नियोजन के लिए या किसी पद पर नियुक्ति किए जाने के लिए चयन के वास्ते युक्तियुक्त नियम विहित करने की बात को प्रतिषिद्ध नहीं करता। नियोजन के लिए या किसी पद पर नियुक्ति के लिए निर्धारित ऐसी अर्हताओं से संबंधित कोई उपबन्ध जो कि युक्तियुक्त रूप से निश्चित किया गया हो और सभी नागरिकों को लागू हों, अवसर समता के सिद्धान्त से निश्चित रूप से संगत होगा; किन्तु नियोजन के संबंध में, जैसे कि अन्य ऐसे निबन्धन और शर्तें जो कि उससे संबंधित हों या उसकी आनुषंगिक हों, किसी चयन पद पर की जाने वाली प्रोन्नति नियोजन से संबंधित बातों में भी शामिल होती है और किसी चयन वाले पद पर ऐसी प्रोन्नति के संबंध में भी अनुच्छेद 16(1) में जिस बात की गारण्टी दी गई है, वह मात्र ऐसे सभी नागरिकों को अवसर समता है जो कि सेवा में प्रवेश करते हैं। (देखिए—**महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे** बनाम **रंगाचारी**[1] वाला मामला) इस प्रकार से अनुच्छेद 16(1) में किसी नियुक्ति के लिए पात्रता के आधार पर वर्गीकरण अनुध्यात है; जो लोग किसी पद के लिए आवश्यक अर्हताएं रखते हैं वे एक वर्ग गठित करते हैं; उससे यह भी अभिप्रेत है कि एक ही वर्ग के कर्मचारी पृथक् एकक गठित करते हैं। **शाम सुन्दर** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया था कि—"अनुच्छेद 16(1) से कर्मचारियों के एक ही वर्ग के सदस्यों के बीच समता अभिप्रेत है और यह अनुच्छेद इस वर्ग के सदस्यों के बीच विभेद और प्रोन्नति के विषय में अवसर समता के वंचन का प्रतिषेध करता है"।

179. केरल राज्य के रजिस्ट्रीकरण विभाग में कार्य कर रहे निम्न श्रेणी लिपिक कर्मचारियों के रूप में एक ही वर्ग के हैं। अनुच्छेद 16(1) के अधीन उनमें से सभी को प्रोन्नति के मामले में अवसर समता सुनिश्चित की गई है। नियम 13-एए और तदधीन किए गए ऐसे आदेश जिनके द्वारा इस संबंध में एक ही वर्ग के कर्मचारियों में से कुछ को अतिरिक्त अवसर दिया गया है, स्पष्टतः तब तक शून्य है, जब तक कि इस तथ्य से, कि उस वर्ग के ऐसे सदस्य जिनके प्रति पक्षपात किया गया है, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के हैं, जैसी कि दलील दी गई है, स्थिति में कोई अन्तर न पड़ता हो। यह दलील दी गई है कि

[1] (1962) 2 एस० सी० आर० 586.

[2] (1969) 1 एस० सी० आर० 312=[1968] 2 उम० नि० प० 1080.

अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां नागरिकों का सुपरिचित वर्ग गठित करते हैं, और जैसा कि अनुच्छेद 16(1) के अधीन वर्गीकरण की अनुज्ञा दी गई है, इन जातियों और जनजातियों के कर्मचारियों को प्रोन्नति के लिए पृथक् एकक के रूप में माना जा सकेगा। इस बात का दावा किया गया है कि अनुच्छेद 46 और अनुच्छेद 335 के अधीन एक ही वर्ग के भीतर अतिरिक्त वर्गीकरण के लिए अनुज्ञात किया गया है, जिसको किसी कारण से अनुच्छेद 16(1) के प्रयोजन के लिए विधिमान्य माना जाना चाहिए। इस दलील में दो उपधारणाएं विवक्षित हैं—पहली यह कि अनुच्छेद 16(1), अनुच्छेद 46 और अनुच्छेद 335 के अधीन है और उसकी अपनी कोई भी अपेक्षाएं नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि ये दोनों ही अनुच्छेद नियम 13-एए द्वारा किए गए विभेद को न्यायोचित ठहराते हैं। मैं इन दोनों ही उपधारणाओं में से किसी को भी ठीक नहीं समझता। मैंने पहले ही यह मत व्यक्त कर दिया है कि न तो अनुच्छेद 46 और न ही अनुच्छेद 335 से अनुच्छेद 16(1) के निर्वचन में कोई सहायता प्राप्त हो सकती है। अनुच्छेद 16(1) में एक ही वर्ग के सभी कर्मचारियों के लिए अवसर समता पर स्पष्ट शब्दों में जोर दिया गया है, और अनुच्छेद 46 या अनुच्छेद 335 में किसी बात के कारण इस अपेक्षा का त्याग नहीं किया जा सकता, जो कि किसी भी प्रकार से अनुच्छेद 16(1) में दी गई गारण्टी का विशेषक नहीं है। निश्चित रूप से यह अनुच्छेद वर्गीकरण करने की अनुज्ञा देता है, किन्तु मात्र ऐसे वर्गीकरण की अनुज्ञा देता है जो कि युक्तियुक्त हो, और इस अनुच्छेद के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्तता की कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या प्रस्थापित वर्गीकरण से इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है। इस कसौटी पर कसने के बाद, क्या यह सम्भव है कि निम्न श्रेणी लिपिकों के ऐसे दो वर्गों में—एक ऐसे लोगों का प्रवर्ग जो कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हों और दूसरा ऐसे लोगों का प्रवर्ग जो कि अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के न हों—उपविभाजन को युक्तियुक्त अभिनिर्धारित किया जाए। मैं ऐसा नहीं समझता हूं; ऐसा वर्गीकरण अनुच्छेद के उद्देश्य से सुसंगत नहीं है और इसी कारण से वह युक्तियुक्त नहीं है।

180. अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा विनिर्दिष्ट जातियां

और जनजातियां हैं जो कि इस रूप में संविधान के प्रयोजनों के लिए ही ज्ञात हैं। यह स्वीकार किया गया है कि साधारण तौर से ये जातियां और जनजातियां शैक्षणिक और आर्थिक क्षेत्रों में पिछड़ी हुई हैं। यह दावा किया गया है कि "अनुसूचित जातियां" अभिव्यक्ति, हिन्दू समाज की किसी जाति के प्रति निर्देश नहीं करतीं, बल्कि उससे पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों की 'अर्थव्याप्ति' ध्वनित होती है। किन्तु अनुच्छेद 341 को देखने से ऐसा पता चलेगा कि इस अभिव्यक्ति से अनुसूची में सूचीबद्ध की गई अनेक विद्यमान सामाजिक जातियां अभिप्रेत हैं; किसी अनुसूची में सूचीबद्ध कर दिए जाने के कारण ही जातियां अपना अस्तित्व नहीं खो देती हैं, भले ही पिछड़ापन उनसे संबंधित क्यों न रहा हो। अनुच्छेद 46 के अधीन राज्य से यह अपेक्षित है कि वह जनता के कमजोर वर्गों के, विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक हितों की उन्नति करे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रति जो विशेष निर्देश किया गया है, उससे यह ध्वनित नहीं होता कि राज्य "जनता के अन्य कमजोर वर्गों को हानि पहुंचा कर इन जातियों और जनजातियों के आर्थिक हितों की उन्नति करे"। मुझे किन्हीं निम्न श्रेणी लिपिकों को प्रोन्नति के उसी अवसर से वंचित रखने में जो कि अन्य व्यक्तियों को दिया गया है, कोई भी युक्तियुक्त बात प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि वे किसी विशिष्ट जाति या जनजाति के नहीं हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां सुपरिभाषित वर्ग गठित करती हैं, किन्तु ऐसा वर्गीकरण जो कि एक प्रयोजन के लिए विधिमान्य है, दूसरे प्रयोजन के लिए वैसा नहीं भी हो सकता; अनुच्छेद 16(1) के संदर्भ में, एक ही वर्ग के कर्मचारियों के भीतर नियम 13-एए द्वारा सृष्ट उपवर्ग, मेरी राय में, मूलवंश और जाति के आधार पर ही विभेद की कोटि में आता है, जो कि अनुच्छेद 16 के खण्ड (2) द्वारा निषिद्ध है। **राजस्थान राज्य और अन्य** बनाम **ठाकुर प्रताप सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पुलिस ऐक्ट की धारा 15 के अधीन राजस्थान राज्य द्वारा जारी की गई अधिसूचना को अभिखण्डित कर दिया था, जिसके द्वारा कुछ ग्रामों के हरिजन निवासियों को उन ग्रामों में ठहरे हुए अतिरिक्त पुलिस बल के खर्चे का संदाय करने से छूट दे दी गई थी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस अधिसूचना के द्वारा जाति के आधार पर ही अन्य समुदायों के विधि का

[1] (1961) 1 एस० सी० आर० 222.

पालन करने वाले सदस्यों के विरुद्ध विभेद किया गया है। मेरे लिए यह स्वीकार करना सम्भव नहीं है कि निम्न श्रेणी लिपिकों के एक ही वर्ग में से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कर्मचारियों को उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में प्रोन्नत किए जाने का उन्हें अतिरिक्त अवसर देने की दृष्टि से चुन लेना इन जातियों और जनजातियों के आर्थिक कल्याण की उन्नति करने का अध्युपाय है। किन्हीं व्यक्तियों को कुछ आनुषंगिक आर्थिक लाभ यह मानते हुए कि उसके परिणामस्वरूप उन जातियों और जनजातियों का कल्याण होता है, जिससे कि अप्रत्यक्ष रूप से किसी प्रकार से उनका दूर का संबंध है, मेरी राय में, वह नहीं है जो कि अनुच्छेद 46 में अनुध्यात है। अनुच्छेद 46 के दूसरे दृष्टिकोण के आधार पर अतिरिक्त पुलिस बल के खर्चे के संदाय से **ठाकुर प्रताप सिंह वाले मामले**[1] के हरिजन ग्रामवासियों को दी गई छूट को विधिमान्य छूट के रूप में न्यायोचित ठहराया जाएगा। किसी भी दशा में, अनुच्छेद 16(1) जैसा कि मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है, ऐसे वर्गीकरण के लिए अनुज्ञात नहीं करता जैसे कि नियम 13-एए द्वारा किया गया है। वह नियम अनुच्छेद 46 द्वारा उत्प्रेरित हो सकता है जिसके अधीन राज्य से यह अपेक्षित है कि वह लोगों के कमज़ोर वर्गों और अन्य नागरिकों के बीच शिक्षा और अर्थ संबंधी अन्तर को कम करने के लिए उपाय करे, किन्तु अनुच्छेद 46 अनुच्छेद 16(1) के उपबन्धों का विशेषक नहीं है। अनुच्छेद 16(1) में अवसर की समता के बारे में, न कि समता प्राप्त करने के अवसर के बारे में उपबन्ध किया गया है, जो कि इन कारणों से है जिन्हें मैंने पहले ही बता दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 335 विचाराधीन प्रश्न के संबंध में और भी कम सुसंगत है।

181. जो कुछ मैंने ऊपर कहा है, उस सबका संबंध अनुच्छेद 16 (1) के विस्तार से ही है, क्योंकि अपीलार्थी के काउन्सेल ने इसी उपबन्ध के आधार पर ही अपना पक्षकथन प्रस्तुत किया है। अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन अनुच्छेद 16(1) के होते हुए भी, नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए अनुज्ञात किया गया है। अनुच्छेद 16(4) के संबंध में न्यायाधिपति खन्ना ने जो मत व्यक्त किए हैं, मैं उनसे सहमत हूं, जिस पर प्रसंगवश इस मामले में विचार किया गया है। लोगों के बड़े वर्गों की, भीषण गरीबी और

[1] (1961) 1 एस० सी० आर० 222.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

पिछड़ेपन के कारण राज्यतंत्र को इस प्रकार से गतिशील हो जाना चाहिए जिससे कि वह उनकी दशा को और अधिक अच्छा बनाने के लिए उसकी शक्ति के भीतर जो कुछ भी हो, वह करे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लिपिकीय वर्ग के सदस्यों के प्रति असमान पक्षपात करना उस दिशा में कदम नहीं है: पवन-चक्की की झुकी हुई स्थिति को दैत्य समझने से कोई भी उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

182. इस संबंध में **एम० आर० बालाजी और अन्य** बनाम **मैसूर राज्य**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति गजेन्द्रगडकर (जैसे कि वे उस समय थे) के मत के प्रति निर्देश करना महत्वपूर्ण हो सकता है, जो कि, यद्यपि अनुच्छेद 15(4) के संदर्भ में व्यक्त किया गया था, इस मामले के लिए सुसंगत है—

> "जब कि अनुच्छेद 15(4) किन्हीं वर्गों या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष उपबंध के प्रति निर्देश करता है, तो इस बात की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि वह उपबन्ध जो कि प्राधिकृत है, विशेष उपबंध है; वह ऐसा उपबंध नहीं है जो कि स्वरूप में इस प्रकार अनन्य है कि उन वर्गों की उन्नति की देखरेख करते हुए, राज्य द्वारा, शेष समाज की उन्नति की पूरी तरह से उपेक्षा करना न्यायोचित होगा। यह बात इसलिए है, क्योंकि समाज के कमज़ोर तत्वों की उन्नति को बढ़ावा देकर सामूहिक रूप से समाज के हितों का साधन किया जाता है और यही बात अनुच्छेद 15(4) के अधीन विशेष उपबंध किए जाने के लिए प्राधिकृत की गई है। किन्तु यदि ऐसा उपबंध जो कि अपवाद की प्रकृति में है, शेष समाज को पूरी तरह से अपवर्जित करता है, तो वह अनुच्छेद 15(4) की परिधि से स्पष्टतः बाहर है। यह उपधारणा करनी बिल्कुल ही अयुक्तियुक्त है कि अनुच्छेद 15(4) को अधिनियमित करने में संसद् का आशय यह उपबंध करना था कि जहां पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों और जनजातियों की उन्नति का संबंध है, वहां ऐसे वर्गों के, जो कि शेष समाज गठित करते हैं, मूल अधिकारों की पूरी तरह से तथा आत्यन्तिक रूप से उपेक्षा करनी पड़ती है।"

[1] (1963) सप्लीमेंण्ट 1 एस० सी० आर० 439.

183. अभी हाल में **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **टी० एन० खोसा और अन्य**[1] वाले उपर्युक्त मामले में, इस न्यायालय ने सावधानी के तौर पर यह मत व्यक्त किया था--

> "..........अप्रत्यक्ष विस्तार के जरिए, हमें वर्गीकरण का ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं करना चाहिए जो कि समता की मूल्यवान गारण्टी को नष्ट कर दे या कदाचित उसे डुबो दे। आदर्श समाज की श्रेष्ठ भावना समता है और इसी कारण से हमें अचम्भे में यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए--आखिर समता और समान अवसर की कार्यविधि संबंधी अवशिष्टि क्या है?"

मुझे विश्वास है कि ये शब्द अलंकारिक ही नहीं हैं, बल्कि उन पर गम्भीरता के साथ विचार भी किया जाना चाहिए।

184. न्यायाधिपति खन्ना ने जो निर्णय दिया है, मैं उससे सहमत हूं।

श्री०/मि०

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फ़ज़ल अली के मतानुसार।

न्यायाधिपति फ़ज़ल अली--

मैं अपने माननीय मुख्य न्यायाधिपति द्वारा प्रस्थापित विस्तृत निर्णय से सहमत हूं, किन्तु महत्वपूर्ण पहलुओं में से किन्हीं के सम्बन्ध में जो कि इस अपील में उद्भूत होते हैं, मैं अपनी ओर से कुछ विचार प्रकट करना चाहूंगा।

186. इस अपील के तथ्य बहुत ही संक्षिप्त हैं। प्रमाणपत्र लेकर यह अपील केरल उच्च न्यायालय के तारीख 19 अप्रैल, 1974 वाले निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है। इस निर्णय द्वारा केरल राज्य और अधीनस्थ सेवा नियम, 1958 का नियम 13-एए अभिखण्डित किया गया है। इस अपेक्षित नियम के स्थान पर 13 जनवरी, 1972 वाला सरकार का आदेश सं० (पी) 21/पी० डी० प्रतिस्थापित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 1 के बीच जो मुख्य विवाद है, वह कुछ निम्न श्रेणी लिपिकों के उच्च श्रेणी लिपिकों के ग्रेड में प्रोन्नत करने के संबंध में है। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने उच्च न्यायालय के समक्ष जो व्यथा प्रस्तुत की थी, वह यह थी कि

---

1. (1974) 1 एस० सी० आर० 771-[1973] 3 उम० नि० प० 1341.

कुछ ऐसे निम्न श्रेणी लिपिकों के, जो अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के सदस्य थे, प्रति अधिमानतापूर्ण व्यवहार किया गया है क्योंकि उन्हें इस तथ्य के वावजूद भी उच्च श्रेणी लिपिक के ग्रेड में प्रोन्नत कर दिया गया कि उन्होंने उक्त ग्रेड में पहुंचने के लिए विहित परीक्षा पास नहीं की थी। केरल सरकार ने उन व्यक्तियों के मुकाबले प्रत्यर्थी के विरुद्ध इस अर्थ में विभेद किया है कि उसने अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को परीक्षा पास करने का वार-वार अवसर दिया जिससे कि वे परीक्षा पास कर सकें। समय में लगातार की गई वृद्धियों के कारण नियम 13-एए अस्तित्व में आया जो कि पूर्णतः विभेदकारी है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 का अतिक्रमण करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने जो अभिवाक् पेश किया उसे उच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया जिसने यह अभिनिर्धारित किया कि नियम 13-एए विभेदकारी है और संविधान के अनुच्छेद 16(1) का स्पष्ट रूप से अतिक्रमण करता है तथा अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) द्वारा अनुज्ञात आरक्षण की परिधि के भी वाहर है।

187. यहां कुछ स्वीकृत तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रथमतः, इस वारे में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने स्वयं ही 2 नवम्बर, 1971 को उच्चतर ग्रेड में प्रोन्नति के लिए आवश्यक परीक्षा पास की थी। अतः यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 को अन्य लिपिकों के विरुद्ध जो भी शिकायत रही हो, वह 2 नवम्वर, 1971 के पूर्व अर्थात् परीक्षा पास करने के समय से पूर्व प्रोन्नत किए जाने का अपना दावा पेश नहीं कर सकता है। इन परिस्थितियों में सरकार ने 1958 से लेकर 1972 तक और इसके वाद 1974 तक अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिपिकों को समय की जो वृद्धियां अनुदत्त की थीं, उनका प्रभाव प्रत्यर्थी संख्या 1 पर केवल 2 नवम्बर, 1971 के वाद ही पड़ेगा, न कि उसके पहले। द्वितीयतः, इससे भी इंकार नहीं किया गया है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के निम्न श्रेणी लिपिक निस्संदेह प्रत्यर्थी संख्या 1 से ज्येष्ठ थे और उन्हें इस अभिव्यक्त शर्त के आधार पर प्रोन्नत किया गया था कि यदि वे सरकार द्वारा विहित परीक्षा पास नहीं करेंगे तो उन्हें प्रतिवर्तित होना पड़ेगा। यह वात स्पष्ट रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का, जो कि पिछड़े वर्ग के नागरिक

थे, विकास करने तथा उनकी उन्नति करने की दृष्टि से किया गया था, जिससे कि वे समाज के अन्य सबल वर्गों के साथ मुकाबला कर सकें। यहां इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों को परीक्षा से पूरी तरह से छूट नहीं दी गई थी, किन्तु उनको परीक्षा पास करने के लिए समय में वृद्धि की गई थी। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि परीक्षा पास करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 का, उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में प्रोन्नत किए जाने के लिए कोई अन्य दावा नहीं हो सकता था। प्रत्यर्थी संख्या 1 इसके पहले कोटाय्यम स्थित रजिस्ट्रीकरण विभाग में निम्न श्रेणी लिपिक के रूप में सेवा कर रहा था किन्तु इस समय कोटाय्यम स्थित चिट्टी आडिटर आफिस (चिट्टी सम्परीक्षक कार्यालय) में कार्य कर रहा था। अन्त में यह स्वीकार किया गया है कि प्रोन्नत किए गए वे व्यक्ति जिनके विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 1 की शिकायत है, निस्संदिग्ध रूप से अनुसूचित जातियों या जनजातियों के सदस्य थे और ऐसे निम्न श्रेणी लिपिकों को जो कि अनुसूचित जातियों या जनजातियों के थे, इसमें इसके पश्चात्, संक्षेप में कहने के प्रयोजन के लिए, प्रोन्नत किए गए व्यक्ति के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा।

188. माने गए इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, हमें अब यह देखना है कि क्या नियम 13-एए किसी भी प्रकार से संविधान के अनुच्छेद 16(1) का अतिक्रमण करता है। उच्च न्यायालय ने 3 आधारों पर नियम 13-एए को अभिखण्डित किया है—

(1) यह कि यह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की अनुज्ञेय सीमाओं के बाहर है;

(2) यह कि 'अग्रनयन नियम (कैरी फार्वर्ड रूल)' के आधार पर सरकार ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिपिकों को 62% अधिक प्रोन्नत किया था और तद्द्वारा उसने समानता की संकल्पना को नष्ट किया है, तथा

(3) यह कि यह नियम विभेदक है, क्योंकि वह एक ही सेवा के सदस्यों के बीच अनुचित विभेद करता है और सरकार ने जो वर्गीकरण किया है वह न तो युक्तियुक्त है और न ही तर्कसंगत।

189. यहां पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने इस संबंध में कोई भी विवाद नहीं किया है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व केरल राज्य के अधीन वाली

सेवाओं में पर्याप्त रूप से नहीं किया गया है, जो कि हमारे समक्ष अपीलार्थियों का निश्चित पक्षकथन है। 1951 से 1972 के बीच प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों को दो वर्ष, तीन वर्ष और तत्प्रकार की वृद्धियां अनुदत्त करते हुए जो विभिन्न आदेश पारित किए थे, उच्च न्यायालय ने उनका इतिहास बताया है। यह एक ऐसा तथ्य है जो कि इस मामले के प्रयोजन के लिए बिल्कुल भी संगत नहीं था—क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने, जो कि उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशनर था, स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि उसने 2 नवम्बर, 1971 को ली गई परीक्षा पास कर ली थी। इस प्रकार से, जैसा कि प्रत्यर्थी सं० 1 ने दलील दी है, 2 नवम्बर, 1971 के पूर्व समय की वृद्धियां अनुदत्त करने में सरकार का जो भी आचरण था, वह विभेद के प्रश्न को विनिश्चित करने की दृष्टि से पूर्णतः असंगत था।

1975(9) eILR(PAT) SC 1

190. अपीलार्थी की ओर से उपसंजात केरल राज्य के महाधिवक्ता एम० एम० अब्दुल कादिर ने हमारे समक्ष दो मुद्दे प्रस्तुत किए हैं। प्रथमतः उन्होंने यह बहस की, कि नियम 13-एए में संविधान के अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) द्वारा यथा अनुध्यात आरक्षण के लिए उपबंध नहीं किया गया है और इसी कारण से उच्च न्यायालय का उस नियम को अभिखण्डित करना गलत था, क्योंकि उसने अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की अनुज्ञेय सीमाओं का उल्लंघन किया है। द्वितीयतः, उन्होंने यह निवेदन किया कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्य केवल एक जाति के सदस्य नहीं हैं बल्कि ऐतिहासिक कारणों से वे स्वयं ही एक विशेष वर्ग हैं और उन्हें स्वयं संविधान के अधीन ऊंची हैसियत प्रदान की गई है। संविधान के अनुच्छेद 16(1) में ऐसी कोई बात नहीं है जो कि राज्य को इस बात से रोकती है कि वह सेवाओं की दक्षता को खतरे में डाले बिना रियायतें देकर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों को उन्नत करने की दृष्टि से युक्तियुक्त वर्गीकरण करे। केरल के महाधिवक्ता ने इसी कारण से प्रस्तुत मामले में राज्य द्वारा की गई कार्यवाही को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया कि उसने संविधान के भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों का मात्र कार्यान्वयन किया है। भारत के महान्यायवादी की ओर से उपसंजात महासॉलिसिटर श्री एल० एन० सिन्हा और मध्यक्षेपी उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपसंजात श्री आर० के० गर्ग ने न्यूनाधिक रूप से केरल के महाधिवक्ता द्वारा अपनाए गए आधार का ही समर्थन किया है।

191. किन्तु प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपसंजात श्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर ने यह निवेदन किया कि अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन ही वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में यदि नियम 13-एए में अन्तर्विष्ट उपबंधों के बारे में यह समझा जाए कि वे अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अर्थान्तर्गत आरक्षण हैं, तो वह अनुज्ञेय सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं और समानता की संकल्पना को नष्ट करते हैं। द्वितीयत:, यह भी दलील दी गई कि चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 और प्रोन्नत किए गए व्यक्ति सभी एक ही वर्ग के सदस्य हैं, इसलिए वे समान रूप से समान परिस्थितियों के अधीन थे और प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों के पक्ष में किए गए विभेद से इस संविधान के अनुच्छेद 16(1) का स्पष्ट रूप से उल्लंघन होता है। उसने ज्यादा जोर दिए बिना यह भी सुझाव दिया कि यह दर्शित करने के लिए कोई भी विश्वसनीय साक्ष्य मौजूद नहीं है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व राज्य के अधीन वाली सेवाओं में पर्याप्त रूप से नहीं था जिससे कि किसी भी वर्गीकरण को, जो उनके पक्ष में किया गया हो, न्यायोचित ठहराया जा सके।

192. पक्षकारों ने जो दलीलें पेश की हैं उन्हें समझने के लिए यह आवश्यक है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के उपबंधों की प्रकृति और विस्तार की परीक्षा की जाए। अनुच्छेद 16 इस प्रकार है—

> "16(1). राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।
>
> (2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जायगा।
>
> (3) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद् को कोई ऐसी विधि बनाने में बाधा न होगी जो किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के या, उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी या पद पर नियुक्ति के विषय में वैसी नौकरी या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य या संघ

राज्यक्षेत्र के अन्दर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती हो।

(4) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य के पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिए उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।

(5) इस अनुच्छेद की किसी बात का किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव नहीं होगा जो उपबंध करती हो कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्य से सम्बद्ध कोई पदधारी अथवा उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का अनुयायी अथवा किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का ही हो।

193. निस्संदेह यह बात सच है कि अनुच्छेद 16(1) में राज्याधीन सेवाओं में सभी नागरिकों के लिए अवसर समता के लिए उपबंध किया गया है। किन्तु यह सुस्थिर हो चुका है कि अनुच्छेद 16 में अन्तर्विष्ट सिद्धान्त जीती-जागती वास्तविकता है और रचनात्मक संकल्पना है, न कि मात्र कड़ा नियम या खोखला फारमूला। इस न्यायालय की ही अनेक नजीरों द्वारा यह बात समान रूप से सुस्थिर हो चुकी है कि अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 14 का मात्र आनुषंगिक है; अनुच्छेद 14 का, जोकि जाति है, उपयोग सामान्य रूप से किया जाता है, जबकि अनुच्छेद 16 उप-जाति है और उसके द्वारा राज्याधीन सेवाओं में अवसर समता प्राप्त करना ईप्सित है। युक्तियुक्त वर्गीकरण का सिद्धान्त समता की संकल्पना में विवक्षित है और अन्तर्निहित है, क्योंकि कोई भी ऐसा देश नहीं हो सकता कि जहां सभी नागरिक सभी पहलुओं में समान हों। अवसर समता से, स्वाभाविक रूप से न केवल एक वर्ग या अन्य वर्ग के लिए, बल्कि सभी वर्गों के लिए बाधाएं हटा कर उस दशा में उचित अवसर अभिप्रेत है, यदि समाज के विशिष्ट वर्ग में उस तरह की बाधा मौजूद है। इस न्यायालय ने तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों ने अपने जो भी निर्णय दिए हैं, उनमें कभी भी इस संबंध में कोई भी विवाद नहीं उठाया गया है कि अनुच्छेद 14 के अधीन युक्तियुक्त वर्गीकरण के लिए अनुज्ञात नहीं किया गया है। किन्तु अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 16 जिस बात को निषिद्ध करता है, वह अत्यधिक विभेद है, न कि

युक्तियुक्त वर्गीकरण । इन शब्दों में वर्गीकरण का विचार समता की संकल्पना में विवक्षित है, क्योंकि समता से सभी की समता अभिप्रेत है, न कि समाज के उच्चतर और शिक्षित वर्गों की समता । अतः इससे यह अर्थ निकलता है कि हमारे देश के सभी नागरिकों को समता का अवसर देने की दृष्टि से नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को समतावादी समाज का निर्माण करने में समान रूप से भागीदार होने का ज्ञान होना चाहिए, जहां कि शान्ति होती है और समृद्धि होती है, जहां कि पूरी तरह से आर्थिक स्वतंत्रता होती है और जहां कि निर्धनता की दुर्गन्ध नहीं आती, तथा जहां कोई विभेद नहीं होता या शोषण नहीं होता, जहां कि शिक्षा के लिए, कार्य करने के लिए, अपनी आजीविका का उपार्जन करने के लिए समान अवसर होता है, जिससे कि सामाजिक न्याय का उद्देश्य प्राप्त हो सके । क्या हम समाज के मजबूत तथा अधिक उन्नत वर्गों को फायदा देते हुए, अधिक पिछड़े हुए वर्गों की मात्र इसलिए उपेक्षा कर सकते हैं क्योंकि वे निश्चित स्तर पर खरे नहीं उतर सकते । मेरी राय में ऐसे तरीके के परिणामस्वरूप पिछड़े हुए वर्गों को अवसर से वंचित कर दिया जाएगा और उसका परिणाम यह होगा कि अनुच्छेद 14 और 16 में अन्तर्विष्ट समता की संकल्पना पूरी तरह से नष्ट हो जाएगी । जिस एकमात्र रीति से हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा यथा अनुध्यात तथा अनुच्छेद 14 और 16 में समाविष्ट समता का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है, वह पिछड़े वर्गों को रियायतें, सुविधाएं, प्रसुविधाएं देकर, और उनकी बाधाओं को हटाकर और उपयुक्त आरक्षण देकर उन्हें ऊंचा उठाना है जिससे कि लोगों के कमजोर वर्ग अधिक उन्नत वर्गों का मुकाबला कर सकें और समय के सम्यक् अनुक्रम में सभी समान हो सकें तथा सदा के लिए पिछड़ापन समाप्त हो जाए । यह बात तभी हो सकती है, जबकि हम पूरी तरह से आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें । हमारे इस विशाल देश में जहां कि विभिन्न प्रकार के वंशानुक्रम और लोगों के वर्ग रहते हैं, जिनमें कि कुछ अज्ञान और निरक्षरता के सागर में डूबे हुए हैं, समता की संकल्पना बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है । कश्मीर, सिक्किम, उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र, बिहार और दक्षिण भारत में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां कि संचार या परिवहन के अभाव में या उचित दैनिक सुविधाओं के अभाव में या पुरानी रूढ़ि और रीति-रिवाजों के कारण तथा अन्य पारिस्थितिक कारणों से लोग सामाजिक रूप तथा संदिग्ध रूप दोनों से ही पिछड़े हुए

1975(9) eILR(PAT) SC 1

हैं। क्या हम यह कह सकते हैं कि इन क्षेत्रों के नागरिकों को केवल इसलिए पिछड़े बने रहना चाहिए क्योंकि वे विभिन्न संस्थाओं द्वारा निश्चित कृत्रिम स्तर पर नहीं पहुंच सकते। इसका उत्तर अवश्य ही नकारात्मक होगा। हमारे संविधान में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों में समता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए स्पष्ट आज्ञा मौजूद है। इस विषम प्रश्न को उठाए बिना कि क्या भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्व भाग 3 में दिए गए मूल अधिकारों को अध्यारोपित करते हैं, यह न्यायालय न्यायिक तौर से पूरी तरह से एकमत है कि निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों का अर्थान्वयन एक दूसरे से सामंजस्य करके किया जाना चाहिए और न्यायालय को ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे कि प्रत्यक्षतः किसी असंगति को दूर किया जा सके। भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्व, समाजवादी राज्य के उच्च भवन पर चढ़ने के सोपान हैं और मूल अधिकार, उसके साधन हैं जिनके जरिए से कोई भी व्यक्ति भवन की अन्तिम मन्जिल पर पहुंच सकता है। इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों से मुझे समर्थन प्राप्त होता है जिनके प्रति मैं संक्षेप में निर्देश करूंगा।

194. **केरल एजूकेशन बिल, 1957 वाले मामले**[1] में इस न्यायालय ने पृष्ठ 1022 पर यह मत व्यक्त किया था——

> "फिर भी, उन मूल अधिकारों के जिनका आश्रय किसी भी व्यक्ति या निकाय या उसकी ओर से लिया हो, विस्तार और प्रविषय का अवधारण करते हुए, न्यायालय संविधान के भाग 4 में अधिकथित राज्य की नीति के इन निदेशक तत्वों की पूरी तरह से उपेक्षा नहीं कर सकता है। किन्तु उसे चाहिए कि वह सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन के सिद्धांत का अनुसरण करे और जहां तक संभव हो दोनों को प्रभावी करने की कोशिश करे।"

195. **मोहम्मद हनीफ कुरेशी और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था——

> "निदेशक तत्व राज्य की विधायी शक्ति पर अधिरोपित स्पष्ट निर्बन्धन को अध्यरोहित नहीं कर सकते। संविधान का

---

[1] (1959) एस० सी० आर० 995.

[2] (1959) एस० सी० आर० 629, 648.

सामंजस्यपूर्ण निर्वचन करना पड़ेगा और यदि इसका निर्वचन इस प्रकार से किया जाता है, तो उससे यह अभिप्रेत है कि राज्य को निदेशक तत्वों का कार्यान्वयन निश्चित रूप से करना चाहिए किन्तु उसे यह बात इस प्रकार करनी चाहिए जिससे कि उसकी विधियां मूल अधिकारों को न छीनें या उनको न्यून न करें ...."

196. **आई० सी० गोलकनाथ और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था––

> "इसके साथ ही भाग 3 और 4 एकीकृत युक्ति गठित करते हैं, जोकि स्वतः पूर्ण संहिता है। यह युक्ति इतनी लचीली बनाई गई है कि राज्य की नीति के सभी निदेशक तत्वों को, मूल अधिकारों को छीने या न्यून किए बिना, युक्ति-युक्त रूप से प्रवृत्त किया जा सकता है।"

197. **चन्द्र भवन बोर्डिंग एण्ड लॉजिंग, बंगलौर** बनाम **मैसूर राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था––

> "यह सोचना भ्रामक है कि हमारे संविधान में केवल अधिकार ही हैं, कर्त्तव्य कोई नहीं है। भाग 3 द्वारा प्रदत्त किए गए अधिकार तो मूल अधिकार हैं तथा भाग 4 के अधीन दिए गए निदेश देश के शासन के लिए मूलभूत हैं। हमें कुल मिलाकर भाग 3 और भाग 4 में अन्तर्विष्ट उपबंधों में कोई विरोधाभास प्रतीत नहीं होता है। वे एक दूसरे के पूरक और अनुपूरक हैं। भाग 4 के उपबंध विधानमंडलों और सरकार को नागरिकों पर विभिन्न कर्त्तव्य अधिरोपित करने के लिए समर्थ बनाते हैं। उसमें के उपबंध जानबूझकर सुनम्य बनाए गए हैं क्योंकि नागरिकों पर अधिरोपित किए जाने वाले कर्त्तव्य उस सीमा पर निर्भर करते हैं जिस सीमा तक नीति के निदेशक तत्व कार्यान्वित किए जाते हैं। संविधान का समादेश लोक कल्याणकारी समाज का निर्माण करना है जिसमें सामाजिक,

---

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 762,789-90.

[2] (1970) 2 एस० सी० आर० 600 612=[1970] 3 उम०नि०प० 779,794.

आर्थिक और राजनीतिक न्याय हमारे राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को, अनुप्राणित करेगा। संविधान द्वारा उद्बोधित आशाएं और उच्चाकांक्षाएं पूरी नहीं उतरेंगी यदि हमारे निम्नतम नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जाती है।"

198. अन्त में **पूज्य श्री केशवानन्द भारती, श्रीपदगालवरु, बनाम केरल राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ ने इस मामले पर सविस्तार विचार किया था जिसमें न्या० शैलत और ग्रोवर ने (पृष्ठ 365, [1973] 3 उम० नि० प०) पर यह मत व्यक्त किया था--

"जब कि सबसे अधिक इष्ट स्वतन्त्रताओं और अधिकारों की गारण्टी दी गई है, सरकार पर यह सत्यनिष्ठ कर्त्तव्य आरोपित किया गया है कि वह निदेशक तत्वों को कार्यान्वित करे। भाग 3 और 4, जो उन्हें समाविष्ट करते हैं, दोनों में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करना होगा--केवल तभी व्यक्ति की गरिमा प्राप्त की जा सकती है।"

उन्होंने उसके आगे (पृष्ठ 406, [1973] 3 उम० नि० प०) यह भी मत व्यक्त किया--

"हमारे संविधान के निर्माताओं ने मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों के बीच किसी प्रकार के विरोध की कल्पना नहीं की थी। वे तो एक-दूसरे के अनुपूरक होने के लिए आशयित थे। यह कहा जा सकता है कि निदेशक तत्वों में उद्देश्य की प्राप्ति विहित है और मूल अधिकारों में वह रीति अधिकथित है जिसके द्वारा उस उद्देश्य को प्राप्त करना है।"

न्या० हेगडे और मुकर्जी ने (पृष्ठ 468, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया--

"हमारे पूर्वजों का, जिन्होंने संविधान की बुनियाद डाली थी, इस संबंध में समाधान हो गया था कि मूल अधिकारों तथा निदेशक तत्वों के बीच कोई विपरीतता नहीं है। वे एक दूसरे के अनुपूरक हैं। निदेशक तत्वों में वे उद्देश्य निर्धारित किए

---

[1] (1973) 4 एस० सी० सी० 225=[1973] 3 उम० नि० प० 159.

गए हैं जिनकी पूर्ति होनी है और भाग 3 में वे सिद्धांत विहित किए गए हैं जिनके द्वारा उस उद्देश्य की पूर्ति की जानी है ।"

न्या० रे, जैसे कि वे उस समय थे, और अब मुख्य न्यायाधिपति, ने (पृष्ठ 575, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया--

"किन्तु निदेशक तत्व भी मूलभूत हैं । वे प्रभावशील तभी हो सकते हैं जब जनकल्याण को आगे बढ़ाने के लिए इन्हें थोड़े से व्यक्तियों के मूल अधिकारों पर अध्यारोही प्रभाव दिया जाए और आर्थिक व्यवस्था का संचालन इस प्रकार न होने दिया जाए जिसमें सामान्यजन का नुकसान हो । सामान्य कल्याण का उन्नयन राज्य का कर्तव्य है ।"

उसके आगे उन्होंने (पृष्ठ 587, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया---

"संविधान के भाग 3 और 4 परस्पर संबद्ध हैं तथा एक-दूसरे को उपान्तरित करते हैं । वे एक-दूसरे के समानान्तर नहीं हैं । विभिन्न विधानों के रूप में विभिन्न सामाजिक सिद्धांतों को प्रस्तुत किया जाएगा । यह तब तक अनुज्ञेय नहीं होगा जब तक कि सामाजिक तत्व का प्रवर्तन लचीले ढंग से करने की इजाजत नहीं दी जाएगी ।"

न्या० जगनमोहन रेड्डी ने (पृष्ठ 662, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया---

"इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि मूल अधिकारों का उद्देश्य राजनैतिक लोकतंत्र के आदर्श को सुनिश्चित करना और सत्तावादी शासन को रोकना है जब कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है जिसमें आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता होगी जिसके बिना राजनैतिक लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं है । संविधान में यह अन्तर्निहित है कि संविधान और विधियों का अर्थान्वियन करने का कर्त्तव्य न्यायालयों का है जिससे कि निदेशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाया जा सके जो अनुच्छेद 37 के अधीन देश के शासन में मलभूत महत्व के हैं ।"

न्या० पालेकर ने (पृष्ठ 759, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया—

> "प्रस्तावना को समग्र रूप से पढ़ने पर उस में यह विवक्षा अन्तर्विष्ट नहीं है कि निदेशक तत्वों को असल रूप में कार्यान्वित करने में मूल अधिकार में किसी प्रकार की कमी नहीं होगी।"

न्या० मैथ्यू ने (पृष्ठ 995, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया—

> "मेरे विचार से—जब कि अनुच्छेद 37 के पश्चात्वर्ती भाग में यह कहा गया है कि 'विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा'—यह अभिनिर्धारित करना असंगत न होगा कि न्यायिक प्रक्रिया 'राज्य-कार्यवाही' ही है और यह कि न्यायपालिका अपना निर्णय देने में निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए बाध्य है।"

न्या० बेग ने (पृष्ठ 1026, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया—

> "शायद नागरिकों के वैयक्तिक मूल अधिकारों, जिनके द्वारा राज्य पर तत्समान बाध्यताएं अधिरोपित की गई हैं, और निदेशक तत्वों के बीच के संबंध को वर्णित करने का सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि निदेशक तत्वों को इस प्रकार पढ़ा जाए जैसे कि प्रस्तावना में वर्णित सम्बद्व उद्देश्यों की ओर राष्ट्र का प्रगति पथ उनमें अधिकथित किया गया है और मूल अधिकार उस पथ की उसी प्रकार सीमा है।"

न्या० चन्द्रचूड़ ने (पृष्ठ 1113, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया—

> "इस अनिर्णीत प्रश्न पर हमारा विनिश्चय हमारे संविधान की मूल कल्पना पर निर्भर है, जिसका उद्देश्य 'मूल अधिकारों' और 'राज्य की नीति के निदेशक तत्वों' के बीच, पूर्वकथित को ऊंचा स्थान देकर पश्चात्कथित को स्थायी स्थान देकर सामंजस्य लाना है। ये दोनों एक साथ, न कि अलग-अलग, संविधान के मर्म हैं। ये दोनों एक साथ, न कि अलग-अलग, संविधान की सच्ची अन्तर्भावना हैं।"

199. इस न्यायालय ने जिन सिद्धांतों का वर्णन किया है, उनको देखते हुए यह स्पष्ट है कि—

> "निदेशक तत्व आधारभूत बात और संविधान की सामाजिक अन्तर्रात्मा गठित करते हैं तथा संविधान राज्य को इस बात के लिए व्यादिष्ट करता है कि वह इन निदेशक तत्वों को क्रियान्वित करे। इस प्रकार से निदेशक तत्वों में सामाजिक, आर्थिक स्वतन्त्रता की नीति, मार्गदर्शक रेखाएं और उद्देश्यों के बारे में उपबंध किया गया है तथा अनुच्छेद 14 और 16 उन उद्देश्यों को प्राप्त करने संबंधी नीति को क्रियान्वित करने के सिद्धांत हैं, जो कि इन निदेशक तत्वों द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित हैं। जहां तक कि न्यायालयों का संबंध है, वहां तक, जहां कि भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों तथा भाग 3 में मूल अधिकारों के बीच स्पष्ट असंगति नहीं है, जो कि वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं, वहां ऐसा सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करने में जो कि संविधान के उद्देश्यों का विस्तार करता है, कोई भी कठिनाई नहीं होती है।"

यदि इस मुख्य बात को ध्यान में रखा जाता है, तो अनुच्छेद 14 और 16 का निर्वचन तथा उनके विस्तार और प्रविषय बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाते हैं।

200. प्रस्तुत मामले में श्री एम० एम० अब्दुल कादर केरल के महाधिवक्ता ने जो दलीलें पेश की हैं उनमें से एक मुख्य दलील यह थी कि जहां कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों का संबंध है वहां तक उन्हें संविधान के अधीन भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों में, जिनमें उनके दावों पर विचार करने के लिए राज्य को आज्ञा दी गई है, उन्नत और विशेष हैसियत दी गई है। इस पहलू पर कुछ अधिक विचार करना आवश्यक है, क्योंकि श्री अब्दुल कादर की मुख्य दलील यह रही है कि अनुसूचित जातियां और जनजातियां अनुच्छेद 16 के खंड (2) की परिधि के भीतर बिल्कुल ही नहीं आती हैं, जो कि पहले जाति आदि के आधार पर विभेद को प्रतिषिद्ध करता है। अनुसूचित जाति वैसी जाति नहीं है जैसी कि अनुच्छेद 16(2) में उल्लिखित है। महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस दलील से

में सहमति प्रकट करना चाहूंगा कि 'अनुसूचित' शब्द के पश्चात् आने वाला 'जाति' शब्द वास्तव में गलत है और उसका उपयोग नागरिकों के इस विशिष्ट वर्ग को पृथक् करने के प्रयोजन के लिए ही किया गया है, जिसके पीछे सैकड़ों वर्ष का विशेष इतिहास रहा है। अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां नागरिकों के ऐसे विशेष वर्ग रहे हैं, जिन्हें कि इस प्रकार से शामिल किया गया है और जिनके बारे में यह उल्लिखित है कि उन्हें ऐसे नागरिकों के सर्वाधिक पिछड़े हुए वर्गों के रूप में बताया गया है, जो कि हमारे देश में रहते हैं। संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (24) और (25) इस प्रकार से हैं—

> "366. (24) 'अनुसूचित जातियां' से अभिप्रेत है, ऐसी जातियां, मूलवंश या आदिम जातियां अथवा ऐसी जातियां, मूलवंशों या आदिम जातियों के भाग या उनमें के यूथ जो कि अनुच्छेद 341 के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जातियां समझी जाती हैं।
>
> (25) 'अनुसूचित' आदिम जातियां' से अभिप्रेत है ऐसी आदिम जातियां या आदिम जाति-समुदाय अथवा ऐसी आदिम जातियों या आदिम जाति समुदायों के भाग या उन में के यूथ जो कि अनुच्छेद 342 के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित आदिम जातियां समझी जाती हैं।"

अतः ये सांविधानिक उपबंध अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में यह उपधारणा उत्पन्न करते हैं कि वे नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग हैं।

इस संबंध में कोई भी विवाद नहीं है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के अधीन निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए गए किन्हीं कारणों से उनके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वे संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां हैं।

201. संविधान का अनुच्छेद 46 इस प्रकार है—

> "46. राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा

गए हैं जिनकी पूर्ति होनी है और भाग 3 में वे सिद्धांत विहित किए गए हैं जिनके द्वारा उस उद्देश्य की पूर्ति की जानी है ।"

न्या० रे, जैसे कि वे उस समय थे, और अब मुख्य न्यायाधिपति, ने (पृष्ठ 575, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया---

"किन्तु निदेशक तत्व भी मूलभूत हैं । वे प्रभावशील तभी हो सकते हैं जब जनकल्याण को आगे बढ़ाने के लिए इन्हें थोड़े से व्यक्तियों के मूल अधिकारों पर अध्यारोही प्रभाव दिया जाए और आर्थिक व्यवस्था का संचालन इस प्रकार न होने दिया जाए जिसमें सामान्यजन का नुकसान हो । सामान्य कल्याण का उन्नयन राज्य का कर्त्तव्य है ।"

उसके आगे उन्होंने (पृष्ठ 587, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया---

"संविधान के भाग 3 और 4 परस्पर संबद्ध हैं तथा एक-दूसरे को उपान्तरित करते हैं । वे एक-दूसरे के समानान्तर नहीं हैं । विभिन्न विधानों के रूप में विभिन्न सामाजिक सिद्धांतों को प्रस्तुत किया जाएगा । यह तब तक अनुज्ञेय नहीं होगा जब तक कि सामाजिक तत्व का प्रवर्तन लचीले ढंग से करने की इजाज़त नहीं दी जाएगी ।"

न्या० जगनमोहन रेड्डी ने (पृष्ठ 662, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया---

"इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि मूल अधिकारों का उद्देश्य राजनैतिक लोकतंत्र के आदर्श को सुनिश्चित करना और सत्तावादी शासन को रोकना है जब कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है जिसमें आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता होगी जिसके बिना राजनैतिक लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं है । संविधान में यह अन्तर्निहित है कि संविधान और विधियों का अर्थान्वियन करने का कर्त्तव्य न्यायालयों का है जिससे कि निदेशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाया जा सके जो अनुच्छेद 37 के अधीन देश के शासन में मूलभूत महत्व के हैं ।"

1975(9) eILR(PAT) SC 1

न्या० पालेकर ने (पृष्ठ 759, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया--

"प्रस्तावना को समग्र रूप से पढ़ने पर उस में यह विवक्षा अन्तर्विष्ट नहीं है कि निदेशक तत्वों को असल रूप में कार्यान्वित करने में मूल अधिकार में किसी प्रकार की कमी नहीं होगी ।"

न्या० मैथ्यू ने (पृष्ठ 995, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया--

"मेरे विचार से--जब कि अनुच्छेद 37 के पश्चात्वर्ती भाग में यह कहा गया है कि 'विधि वनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा'--यह अभिनिर्धारित करना असंगत न होगा कि न्यायिक प्रक्रिया 'राज्य-कार्यवाही' ही है और यह कि न्यायपालिका अपना निर्णय देने में निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए बाध्य है।"

न्या० बेग ने (पृष्ठ 1026, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया--

"शायद नागरिकों के वैयक्तिक मूल अधिकारों, जिनके द्वारा राज्य पर तत्समान वाध्यताएं अधिरोपित की गई हैं, और निदेशक तत्वों के बीच के संबंध को वर्णित करने का सवसे अच्छा तरीका यह होगा कि निदेशक तत्वों को इस प्रकार पढ़ा जाए जैसे कि प्रस्तावना में वर्णित सम्बद्ध उद्देश्यों की ओर राष्ट्र का प्रगति पथ उनमें अधिकथित किया गया है और मूल अधिकार उस पथ की उसी प्रकार सीमा है।"

न्या० चन्द्रचूड़ ने (पृष्ठ 1113, [1973] 3 उम० नि० प०) यह मत व्यक्त किया--

"इस अनिर्णीत प्रश्न पर हमारा विनिश्चय हमारे संविधान की मूल कल्पना पर निर्भर है, जिसका उद्देश्य 'मूल अधिकारों' और 'राज्य की नीति के निदेशक तत्वों' के बीच, पूर्वकथित को ऊंचा स्थान देकर पश्चात्कथित को स्थायी स्थान देकर सामंजस्य लाना है । ये दोनों एक साथ, न कि अलग-अलग, संविधान के मर्म हैं । ये दोनों एक साथ, न कि अलग-अलग, संविधान की सच्ची अन्तर्भावना हैं।"

199. इस न्यायालय ने जिन सिद्धांतों का वर्णन किया है, उनको देखते हुए यह स्पष्ट है कि––

> "निदेशक तत्व आधारभूत बात और संविधान की सामाजिक अन्तर्रात्मा गठित करते हैं तथा संविधान राज्य को इस बात के लिए व्यादिष्ट करता है कि वह इन निदेशक तत्वों को क्रियान्वित करे। इस प्रकार से निदेशक तत्वों में सामाजिक, आर्थिक स्वतन्त्रता की नीति, मार्गदर्शक रेखाएं और उद्देश्यों के बारे में उपबंध किया गया है तथा अनुच्छेद 14 और 16 उन उद्देश्यों को प्राप्त करने संबंधी नीति को क्रियान्वित करने के सिद्धांत हैं, जो कि इन निदेशक तत्वों द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित हैं। जहां तक कि न्यायालयों का संबंध है, वहां तक, जहां कि भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों तथा भाग 3 में मूल अधिकारों के बीच स्पष्ट असंगति नहीं है, जो कि वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं, वहां ऐसा सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करने में जो कि संविधान के उद्देश्यों का विस्तार करता है, कोई भी कठिनाई नहीं होती है।"

यदि इस मुख्य बात को ध्यान में रखा जाता है, तो अनुच्छेद 14 और 16 का निर्वचन तथा उनके विस्तार और प्रविषय बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाते हैं।

200. प्रस्तुत मामले में श्री एम० एम० अब्दुल कादर केरल के महाधिवक्ता ने जो दलीलें पेश की हैं उनमें से एक मुख्य दलील यह थी कि जहां कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों का संबंध है वहां तक उन्हें संविधान के अधीन भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों में, जिनमें उनके दावों पर विचार करने के लिए राज्य को आज्ञा दी गई है, उन्नत और विशेष हैसियत दी गई है। इस पहलू पर कुछ अधिक विचार करना आवश्यक है, क्योंकि श्री अब्दुल कादर की मुख्य दलील यह रही है कि अनुसूचित जातियां और जनजातियां अनुच्छेद 16 के खंड (2) की परिधि के भीतर बिल्कुल ही नहीं आती हैं, जो कि पहले जाति आदि के आधार पर विभेद को प्रतिषिद्ध करता है। अनुसूचित जाति वैसी जाति नहीं है जैसी कि अनुच्छेद 16(2) में उल्लिखित है। महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस दलील से

1975(9) eILR(PAT) SC 1

मैं सहमति प्रकट करना चाहूंगा कि 'अनुसूचित' शब्द के पश्चात् आने वाला 'जाति' शब्द वास्तव में गलत है और उसका उपयोग नागरिकों के इस विशिष्ट वर्ग को पृथक् करने के प्रयोजन के लिए ही किया गया है, जिसके पीछे सैकड़ों वर्ष का विशेष इतिहास रहा है। अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां नागरिकों के ऐसे विशेष वर्ग रहे हैं, जिन्हें कि इस प्रकार से शामिल किया गया है और जिनके बारे में यह उल्लिखित है कि उन्हें ऐसे नागरिकों के सर्वाधिक पिछड़े हुए वर्गों के रूप में बताया गया है, जो कि हमारे देश में रहते हैं। संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (24) और (25) इस प्रकार से हैं—

"366. (24) 'अनुसूचित जातियां' से अभिप्रेत है, ऐसी जातियां, मूलवंश या आदिम जातियां अथवा ऐसी जातियां, मूलवंशों या आदिम जातियों के भाग या उनमें के यूथ जो कि अनुच्छेद 341 के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जातियां समझी जाती हैं।

(25) 'अनुसूचित आदिम जातियां' से अभिप्रेत है ऐसी आदिम जातियां या आदिम जाति-समुदाय अथवा ऐसी आदिम जातियों या आदिम जाति समुदायों के भाग या उन में के यूथ जो कि अनुच्छेद 342 के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित आदिम जातियां समझी जाती हैं।"

अतः ये सांविधानिक उपबंध अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में यह उपधारणा उत्पन्न करते हैं कि वे नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग हैं।

इस संबंध में कोई भी विवाद नहीं है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के अधीन निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए गए किन्हीं कारणों से उनके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वे संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां हैं।

201. संविधान का अनुच्छेद 46 इस प्रकार है—

"46. राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा

अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा ।"

यदि उचित रूप से विश्लेषण किया जाए, तो इस अनुच्छेद में सरकार के लिए इस बात की आज्ञा मौजूद है कि वह लोगों के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों की विशेष परवाह करे और उदाहरण के रूप में, उन व्यक्तियों के जो कि कमजोर वर्ग गठित करते हैं, इस उपबंध में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को अभिव्यक्त रूप से अलग किया गया है ।

202. अनुच्छेद 46 और अनुच्छेद 366 के खंड (24) और (25) को मिला कर पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों के बारे में विशिष्टतः उस समय जबकि संविधान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का उदाहरण समाज के कमजोर वर्ग के रूप में देता है, यह अवश्य ही उपधारणा की जानी चाहिए कि वे नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग हैं ।

203. उसी प्रकार से अनुच्छेद 335, जिसमें अभिव्यक्त रूप से यह उपबंध किया गया है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा, निम्नलिखित रूप में है—

"संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा ।"

204. इस प्रकार से उन उपबंधों को देखते हुए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को संविधान में विशेष स्थान दिया गया है और वे स्वयं में एक वर्ग हैं । यदि स्थिति ऐसी है तो उससे यह अर्थ निकलता है कि वे संविधान के अनुच्छेद 16(2) की परिधि के भीतर नहीं आते हैं, जो कि एक ही जाति के सदस्यों के बीच विभेद को प्रतिषिद्ध करता है । अतः यदि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य जातियां नहीं हैं, तो राज्य

को यह अधिकार प्राप्त हैं कि वह इन वर्गों की उन्नति के लिए या उन्हें ऊंचा उठाने के लिए युक्तियुक्त वर्गीकरण करे जिससे कि राज्याधीन सेवाओं में उनको उचित रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके । निस्संदेह यह बात संविधान के अनुच्छेद 16(1) के अधीन की जा सकती है।

205. संविधान के अनुच्छेद 16(1) के अधीन सरकार द्वारा किए जा सकने वाले वर्गीकरण के स्वरूप की परीक्षा करने के पहले ऐसी तीन स्थितियों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनको अनेक नज़ीरों से समर्थन प्राप्त होता है—(1) यह कि अनुच्छेद 16 अनुच्छेद 14 का मात्र आनुषंगिक है और ये दोनों ही अनुच्छेद एक ही ऐसी प्रणाली के भाग हैं, जो कि एक ही उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं । इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों से मेरे इस मत का समर्थन होता है । **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **त्रिलोकी नाथ खोसा और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था—

> "संविधान का अनुच्छेद 16, जो नियोजन संबंधी मामलों में सभी नागरिकों को समान अवसर सुनिश्चित करता है, अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की प्रत्याभूति का एक उदाहरण या अनुषंग है । निस्संदेह समान अवसर का सिद्धान्त प्रोन्नति के जरिए नियुक्ति और सेवा-समाप्ति से लेकर उपदान और पेंशन के संदाय तक व्यक्ति के नियोजन के सम्पूर्ण क्षेत्र तक फैला हुआ है. . . . . ।"

206. **मोहम्मद सुजात अली और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था—

> "अनुच्छेद 14 प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समता तथा विधियों के समान संरक्षण को सुनिश्चित करता है और अनुच्छेद 16 में यह अधिकथित है कि सभी नागरिकों के लिए नियोजन संबंधी विषयों में अथवा राज्य के अधीन किसी पद के लिए नियुक्ति के विषय में समान अवसर होंगे । अनुच्छेद 16,

---

1 [1974] 1 एस० सी० आर० 771, 783=[1973] 3 उम० नि० प० 1341, 1355.

2 [1975] 3 एस० सी० सी० 76, 102=[1974] 2 उम० नि० प० 1720, 1764.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अनुच्छेद 14 में निहित समता की गारण्टी का उदाहरण अथवा अनुषंग मात्र है। वह सार्वजनिक नियोजन के क्षेत्र में समता के सिद्धान्त को कार्य रूप देता है। अनुच्छेद 16 में पाई जाने वाली अवसर की समानता की संकल्पना किसी व्यक्ति के नियोजन के समस्त क्षेत्र में विद्यमान होती है जिसमें प्रोन्नति द्वारा नियुक्ति तथा सेवा के पर्यवसान से लेकर उपदान तथा पेंशन का संदाय आता है और इसमें अवसर की समानता के आदर्श को अभिव्यक्ति दी गई है जो कि संविधान की उद्देशिका में उपवर्णित एक महान् सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्य है।"

207. **गोविन्द दत्तात्रेय केलकर और अन्य** बनाम **मुख्य नियन्त्रक, आयात और निर्यात और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था—

> "संविधान का अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की संकल्पना को लागू किए जाने का अनुषंग मात्र है। वह नियुक्ति और प्रोन्नति के मामले में समता के सिद्धान्त को प्रभावी करता है। उससे यह अर्थ निकलता है कि नियुक्ति या प्रोन्नति के प्रयोजन के लिए कर्मचारियों का युक्तियुक्त वर्गीकरण हो सकता है।"

इस न्यायालय ने **एस० जी० जयसिंघानी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में ऐसा ही मत व्यक्त किया था।

208. **महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे** बनाम **रंगाचारी**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था—

> "इस संबंध में यह स्मरण रखना सुसंगत हो सकता है कि अनुच्छेद 16(1) और (2) वास्तव में अनुच्छेद 14 द्वारा प्रत्याभूत विधि के समक्ष समता को तथा अनुच्छेद 15(1) द्वारा प्रत्याभूत विभेद के प्रतिषेध को प्रभावी करते हैं। तीनों उपबंध एक ही सांविधानिक प्रतिभूति-संहिता के भाग हैं और

---

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 29, 33.

[2] (1967) 2 एस० सी० आर० 703, 712.

[3] (1962) 2 एस० सी० आर० 586, 597.

एक दूसरे के अनुपूरक हैं। यदि ऐसी बात है, तो यह अभिनिर्धारित करने में कोई भी कठिनाई नहीं होगी कि नियोजन से संबंधित मामलों में ऐसे नियोजन के पूर्व के और पश्चात् के नियोजन से संबंधित सभी ऐसे मामले आने चाहिएं जो कि नियोजन के आनुषंगिक होते हैं और ऐसे नियोजन के निबन्धन और शर्तों के भाग होते हैं।"

209. (2) यह भी सुस्थिर है कि अनुच्छेद 16 प्रोन्नतियों और चयन पदों सहित, नियुक्तियों के सभी वर्गों को लागू होता है। इस न्यायालय ने **सी० ए० राजेन्द्रन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है —

"इस मामले में जिस प्रथम प्रश्न पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या संघ सरकार पर ऐसा कोई सांविधानिक कर्त्तव्य या बाध्यता अधिरोपित है कि वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए या तो रेल बोर्ड सचिवालय सेवा स्कीम में भर्ती के प्रारम्भिक प्रक्रम में या प्रोन्नति के प्रक्रम में आरक्षण करे।

इस विषय से संबंधित सुसंगत विधि सुस्थिर है। संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के या तदधीन एक पद से दूसरे उच्च पद के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी। अनुच्छेद 14, 15 और 16 एक ही सांविधानिक प्रतिभूति-संहिता के भाग हैं और एक दूसरे के अनुपूरक हैं। अन्य शब्दों में संविधान का अनुच्छेद 16 उसके अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की संकल्पना के लागू होने का अनुषंग मात्र है। वह नियुक्ति और प्रोन्नति के मामले में समता के सिद्धान्त को प्रभावी करता है। अतः उससे यह अर्थ निकलता है कि नियुक्ति और प्रोन्नति के प्रयोजन के लिए कर्मचारियों का युक्तियुक्त वर्गीकरण हो सकता है।"

(3) यह कि अनुच्छेद 16 विधिमान्य वर्गीकरण की अनुज्ञा देता है।

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 721, 728-29.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

अब हम इस बात पर विचार करना चाहेंगे कि क्या नियम 13-एए अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) के अधीन न्यायोचित ठहराया जा सकता है। उक्त नियमों का नियम 13-एए इस प्रकार है—

*"इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, सरकार आदेश द्वारा, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों को, और जो कि पहले ही सेवा में हों, उक्त नियम के नियम 13 या नियम 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाएं पास करने से छूट दे सकेगी।"

इस नियम द्वारा जो बात की गई है वह सरकार को मात्र इसलिए प्राधिकृत करने की बात है कि वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों को नियम 13 और नियम 13-ए में निर्दिष्ट परीक्षाएं पास करने से विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए छूट दे सकेगी। इस बात की ओर ध्यान दिया जा सकता है कि यह नियम पूरी छूट नहीं देता। ऐसे निम्न श्रेणी लिपिक को, जो कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है, कोई भी परीक्षा पास किए बिना इस प्रकार से प्रोन्नत नहीं किया जा सकता जिससे कि समता की संकल्पना ही नष्ट हो जाए। वह नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग को ऊंचा उठाने, उन्हें बढ़ावा देने तथा समाज के अधिक मज़बूत वर्गों के साथ मुकाबला करने में समर्थ बनाने की दृष्टि से उनको विशेष रियायत देता है या (नियमों को) अस्थायी रूप से शिथिल करता है। इस प्रकार इस नियम का आधार निस्संदेह तर्कसंगत तथा युक्तियुक्त है।

214. संविधान के अनुच्छेद 335 में, प्रशासन कार्यपटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखने के लिए राज्य को दी गई अन्तर्विष्ट है। प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों को विशेष रियायत

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है —

"Notwithstanding anything contained in these rules, the Government may, by order, exempt for a specified period, any member or members, belonging to a Scheduled Caste or a Scheduled Tribe, and already in service, from passing the tests referred to in rule 13 or rule 13-A of the said Rules."

देकर सरकार ने इस आज्ञा का पालन करने की कोशिश की है। प्रत्यर्थी सं० 1 के काउन्सेल श्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर ने यह निवेदन किया कि अनुच्छेद 335 में दी गई आज्ञा का अतिक्रमण हुआ है, क्योंकि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों को छूट देकर सेवाओं की दक्षता के स्तर को खतरे में डाला गया है। किन्तु हम इस दलील से सहमत होने में असमर्थ हैं। प्रत्यर्थी सं० 1 और प्रोन्नत व्यक्ति, दोनों ही, एक ही सेवा के सदस्य थे और बहुत समय तक निम्न श्रेणी लिपिकों के रूप में कार्य करते आ रहे थे। प्रोन्नत किए गए जो व्यक्ति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के थे वे स्वीकृततः प्रत्यर्थी सं० 1 से ज्येष्ठ हैं और उन्होंने अधिक अनुभव प्राप्त किया है। इसके अलावा इस नियम के अधीन प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों को परीक्षा पास करने से पूरी छूट नहीं दी गई है। उसमें मात्र समय की वृद्धि के लिए उपबंध किया गया है जिससे कि वे परीक्षा पास कर सकें। इन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि नियम 13-एए को समाविष्ट करके राज्य ने जो कार्रवाई की है उससे किसी भी प्रकार से अनुच्छेद 335 में अन्तर्विष्ट आज्ञा का अतिक्रमण होता है। अतः इन परिस्थितियों में मेरा स्पष्ट रूप से यह समाधान हो गया है कि नियम 13-एए में दी गई रियायत ऐसे युक्तियुक्त वर्गीकरण की कोटि में आती है जो कि संविधान के अनुच्छेद 16(1) के अधीन किया जा सकता है और वह प्रतिकूल विभेद के लिए प्रत्यर्थी सं० 1 का चयन किए जाने की कोटि में ऐसे नहीं आता है जिससे कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(1) का अतिक्रमण हो।

215. प्रवर्ग II में अनुच्छेद 16 के खण्ड (2) के प्रति निर्देश किया गया है जिसे इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है—

> "केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म-स्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जाएगा।"

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की हैसियत के बारे में मेरे निष्कर्षों और संविधान के विभिन्न उपबंधों को देखते

हुए यह स्पष्ट है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य 'जाति' नहीं हैं किन्तु पिछड़े हुए नागरिकों के ऐसे विशेष वर्ग हैं जिनके पिछड़ेपन के बारे में कोई भी संदेह नहीं किया जा सकता। अतः इन परिस्थितियों में यदि प्रोन्नत किए गए व्यक्ति ऐसी जाति के नहीं हैं जिनके बारे में अनुच्छेद 16(2) द्वारा अनुध्यात है तो वे अनुच्छेद 16(2) की परिधि के भीतर बिल्कुल ही नहीं आते हैं। इस प्रकार प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों का मामला अनुच्छेद 16(1) की परिधि के भीतर स्पष्ट रूप से आ जाता है और उसे युक्तियुक्त वर्गीकरण के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है।

216. प्रवर्ग I और II पर विचार विमर्श समाप्त करने के पूर्व, यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि न्यायालय को सरकार द्वारा किए गए वर्गीकरण की कड़ाई के साथ संवीक्षा करनी होती है और यह निष्कर्ष निकालना होता है कि वह समता की संकल्पना को नष्ट न करे या उसे ऊर्वर बनाए। अन्य शब्दों में राज्य को समता के आवरण के अधीन पक्षपात या भाईभतीजेवाद को लागू करने को इजाजत नहीं दी जा सकती। इस मामले के सभी व्यापक पहलुओं पर विचार करने के बाद मेरा यह समाधान हो गया है कि इस विशिष्ट मामले में सरकार ने नियम 13-एए के आधार पर जो वर्गीकरण किया है वह संविधान के अनुच्छेद 16 के आधार पर पूरी तरह से न्यायोचित है।

217. अब हम प्रवर्ग III पर विचार करना चाहेंगे जो कि अनुच्छेद 16 का खण्ड (4) है। खण्ड (4) इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है—

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य के पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने में कोई बाधा न होगी।"

संविधान के अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) को पृथक् रूप से नहीं पढ़ा जाना चाहिए, बल्कि उसे अनुच्छेद 16(1) और (2) के भाग के रूप में ही पढ़ा जाना चाहिए। मान लीजिए ऐसे अनेक पिछड़े हुए वर्ग हैं जो कि देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गठित करते हैं, किन्तु उनका प्रतिनिधित्व राज्याधीन सेवाओं में उचित रूप से या पर्याप्त रूप से नहीं

हुआ है तो जो प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि उन सेवाओं में उन्हें भर्ती करने में समर्थ बनाने के लिए तथा उन्हें समान भागीदारी का अहसास कराने के लिए क्या किया जा सकता है । एक रास्ता यह है कि अनुच्छेद 16 (1) के अधीन उस रीति से युक्तियुक्त वर्गीकरण किया जाए जिसके प्रति हमने विस्तार से पहले ही निर्दिष्ट कर दिया है । उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो दूसरा ढंग है, वह पिछड़े वर्गों के लिए ऐसे ढंग से उपयुक्त आरक्षण करना है जिससे कि सेवाओं में पिछड़े हुए वर्गों का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व पर्याप्त हो जाए । वर्गीकरण का यह रूप जिसे आरक्षण के रूप में निर्दिष्ट किया गया है, मेरी राय में स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत आ जाता है जो कि इस मुद्दे के संबंध में पूरी तरह से सर्वांगीण है; अर्थात् यह कि अनुच्छेद 16 का खण्ड (4) अनुच्छेद 14 का अपवाद इस अर्थ में नहीं है कि जो कुछ भी वर्गीकरण किया जा सकता है, वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के जरिए से ही किया जा सकता है। किन्तु अनुच्छेद 16 का खण्ड (4) ऐसा स्पष्टीकरण है जिसमें ऐसे आरक्षण से संबंधित सर्वांगीण और अनन्य उपबंध अन्तर्विष्ट है, जो कि वर्गीकरण के रूपों में से एक रूप है। इस प्रकार से अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) में अनन्य रूप से आरक्षण के संबंध में उपबंध किया गया है, न कि वर्गीकरण के अन्य रूपों के संबंध में, जो कि स्वयं अनुच्छेद 16(1) के अधीन किया जा सकता है। चूंकि खण्ड (4) आरक्षण से संबंधित विशेष उपबंध है, इसलिए बिना किसी खतरे के यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वह उस सीमा तक अनुच्छेद 16(1) को अध्यारोहित करता है और अनुच्छेद 16(1) के अधीन कोई भी आरक्षण नहीं किया जा सकता। यह सच है कि इस न्यायालय की कुछ ऐसी नजीरें हैं कि खण्ड (4) अनुच्छेद 16(1) का अपवाद है किन्तु सादर मैं इस मत से उन कारणों से सहमत होने की स्थिति में नहीं हूं जिनके बारे में मैं इसके बाद बताऊंगा।

218. पहली बात यह है कि यदि हम अनुच्छेद 16(4) को अनुच्छेद 16(1) के अपवाद के रूप में पढ़ें तो यह निश्चित निष्कर्ष होगा कि अनुच्छेद 16(1) किसी भी वर्गीकरण की अनुज्ञा नहीं देता है क्योंकि खण्ड (4) में इसके लिए अभिव्यक्त उपबंध किया गया है। किन्तु यह अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट समता की आधारिक

संकल्पना के प्रतिकूल है जो कि वर्गीकरण को किसी भी रूप में निर्विवाद रूप से अनुज्ञात करता है परन्तु यह तब जब कि किन्हीं शर्तों की पूर्ति कर दी जाए। इसके अलावा यदि खण्ड (4) में अन्तर्विष्ट आरक्षण किए जाने के सिवाय, अनुच्छेद 16(1) के अधीन कोई भी वर्गीकरण नहीं किया जाता है तो अनुच्छेद 335 में अन्तर्विष्ट आज्ञा का पालन नहीं होगा।

219. मैंने पहले ही यह मत व्यक्त कर दिया है कि संविधान में जो मूल प्रत्याभूतियां उपबंधित हैं, उन्हें भाग 4 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों के साथ सामंजस्य स्थापित करके ही पढ़ा जाना चाहिए। पुनः यदि अनुच्छेद 16(4) के बारे में यह समझा जाता है कि वही वर्गीकरण का एक मात्र ढंग है तो उससे यह अर्थ निकलेगा कि जहां तक कि सेवाओं का संबंध है, संविधान वर्गीकरण के एक ही रूप की अर्थात् आरक्षण की न कि किसी अन्य रूप की अनुज्ञा देता है। इसके परिणामस्वरूप समता की संकल्पना निरर्थक हो जाएगी और वह प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा जिसे अनुच्छेद 16(1) द्वारा प्राप्त किया जाना ईप्सित है। सभी नागरिकों को अवसर की समानता से कुछ के लिए समानता और अन्य व्यक्तियों के लिए असमानता अभिप्रेत नहीं है। जैसा कि मैंने पहले ही बता दिया है कि हमारे देश में नागरिकों के अनेक ऐसे पिछड़े हुए वर्ग हैं जिन्हें इस दृष्टि से कुछ रियायतें और सुविधाएं देनी होती हैं जिससे कि वे अन्य लोगों का मुकाबला कर सकें। क्या इससे यह अभिप्रेत है कि ऐसे नागरिकों को उन सुविधाओं से वंचित किया जाए जो कि 'आरक्षण' पद के अधीन नहीं आते हैं। हम कुछ उदाहरण दे सकते हैं। एक अधिसूचना में यह उपबंध किया गया है कि किसी विशिष्ट पद के सभी अभ्यर्थियों को विनिर्दिष्ट तारीख के पूर्व अवश्य ही आवेदन प्रस्तुत कर देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को, जो कि नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग का है और किसी दूरस्थ क्षेत्र में निवास कर रहा है, इसके संबंध में देर में सूचना प्राप्त होती है। किन्तु सरकार ऐसे पिछड़े हुए वर्ग के अभ्यर्थी की दशा में नियमों को शिथिल कर देती है और तारीख बढ़ा देती है। क्या यह कहा जा सकता है कि इसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 16(1) का अतिक्रमण हुआ है क्योंकि वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) द्वारा अनुध्यात आरक्षण के भीतर नहीं आता है? यह स्पष्ट है कि सरकार का आशय अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ नियोजन के लिए आवेदन करने के संबंध में विशेष कारणों से विलम्ब को माफ करके

1975(9) eILR(PAT) SC 1

नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग की सहायता करना मात्र है । एक दूसरा उदाहरण वहां हो सकता है जहां कि राज्य दूरवर्ती और दूरस्थ ऐसे क्षेत्र को देखते हुए जिसमें नागरिकों का वह वर्ग सम्बन्धित है, नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों की दशा में आयु के संबंध में नियम को शिथिल करता है । अन्त में हम प्रस्तुत मामले का उदाहरण लेना चाहेंगे । अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिपिकों को उनके पिछड़ेपन के कारण परीक्षा पास करने के समय में और वृद्धि की गई थी, उन्हें परीक्षा पास करने से छूट नहीं दी गई थी । यह अनुच्छेद 16(1) के अधीन ही, न कि अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन, किया जा सकता था ।

220. अतः इन कारणों से मैं **टी० देवदासन** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति सुब्बा राव के, जैसे कि वे उस समय थे, मत से सादर सहमत हूं, जिसमें उन्होंने यह मत व्यक्त किया था—

> "यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 16 में खण्ड (4) को पुरःस्थापित किया था । 'इस अनुच्छेद की किसी बात' अभिव्यक्ति सर्वाधिक जोरदार ढंग से अपना यह आशय अभिव्यक्त करने की विधायी युक्ति है कि तदधीन प्रदत्त शक्ति किसी भी प्रकार से मुख्य उपबंध द्वारा सीमित नहीं है किन्तु उसके बाहर है । उसके परिणामस्वरूप वास्तव में बलात् कोई अपवाद प्राप्त नहीं हुआ है, बल्कि उसके परिणामस्वरूप ऐसी शक्ति को संरक्षण प्राप्त हुआ है जिसमें अनुच्छेद के अन्य उपबंधों द्वारा कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं की गई है ।"

मेरे इस मत को कि अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(1) का परन्तुक नहीं है, किन्तु यह कि इस खण्ड के अन्तर्गत अनुच्छेद 16 का सम्पूर्ण क्षेत्र आता है, **महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे** बनाम **रंगाचारी**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय से पर्याप्त समर्थन प्राप्त होता है, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि (पृष्ठ 599)—

> "यह समान आधार है कि अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत अनुच्छेद 16(1) और (2) के अन्तर्गत आने वाला सम्पूर्ण क्षेत्र नहीं आता है । नियोजन से संबंधित कुछ मामले जिनके संबंध में

---

1 (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

2 (1962) 2 एस० सी० आर० 586, 597.

अनुच्छेद 16(1) और (2) द्वारा अवसर समता प्रत्याभूत की गई है, अनुच्छेद 16(4) में के अविगणय्य खण्ड (नॉन-आब्सटेंटी क्लाज़) की परिधि के भीतर नहीं आते हैं।"

221. अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) का विश्लेषण करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें ऐसे अभिव्यक्त उपबंध मौजूद हैं जो कि उपयुक्त मामलों में आरक्षण करने के लिए राज्य को सशक्त करते हैं, परन्तु यह तब जब कि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं—

(i) यह कि जिस वर्ग के लिए आरक्षण किया जाता है, उसको सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा हुआ होना चाहिए।

222. मैं यह बता दूं कि जहां तक अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का संबंध है, ऊपर निर्दिष्ट सांविधानिक उपबंधों को देखते हुए, इस तथ्य के संबंध में उपधारणा करनी ही होगी और यही बात **रंगाचारी वाले मामले**[1] में भी अभिनिर्धारित की गई थी।

(ii) यह कि जिस वर्ग के लिए आरक्षण किया गया है, उसका प्रतिनिधित्व राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त रूप से नहीं किया गया है।

223. जहां तक कि इसका संबंध है, प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से उपसंजात श्री कृष्णमूर्ति अय्यर ने यह सुझाव दिया कि यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई भी सामग्री मौजूद नहीं है कि प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त रूप से नहीं किया गया था और सरकार ने इस तथ्य को घोषित करते हुए कोई भी अधिसूचना जारी नहीं की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष इस मुद्दे के संबंध में बिल्कुल ही बहस नहीं की गई थी। अपीलार्थियों ने हमारे समक्ष यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त सामग्री पेश की है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व राज्याधीन सेवाओं में और विशिष्टतया रजिस्ट्रीकरण विभाग में जिससे कि इस अपील में हमारा संबंध है, पर्याप्त रूप से तथा उचित रूप से नहीं किया गया था। अपील की 'पेपर बुक' के उपाबंध 'ए' से यह

---

[1] (1962) 2 एस० सी० आर० 586, 597.

1975(9) eILR(PAT) SC 1

बात स्पष्ट है कि रजिस्ट्रीकरण विभाग में 2254 अराजपत्रित कर्मचारी थे जिनमें से अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्य केवल 198 थे। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत शपथपत्र में यह भी कथन किया गया है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्य केरल राज्य की जनसंख्या के लगभग 8% हैं। अतः इससे यह बात स्पष्ट रूप से दर्शित होती है कि प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों का राज्याधीन सेवाओं में प्रतिनिधित्व अपर्याप्त था और इसी कारण से वे अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) द्वारा अपेक्षित दूसरी शर्त की पूर्ति करते हैं।

(iii) आरक्षण इतना अधिक नहीं होना चाहिए जिससे कि समानता की संकल्पना ही नष्ट हो जाए।

224. इससे यह अभिप्रेत है कि आरक्षण अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर ही होना चाहिए और वह नागरिकों के विशिष्ट वर्ग के सभी पदों को भरने का आवरण नहीं होना चाहिए तथा इस प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप से संविधान के अनुच्छेद 16(1) का अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही साथ अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) के अधीन आरक्षण करने संबंधी सरकार की शक्ति पर कोई भी सीमा नहीं लगाई गई है। चूंकि खण्ड (4) संविधान के अनुच्छेद 16 का भाग है इसलिए यह स्पष्ट है कि राज्य को अत्यधिक आरक्षण करने में इस प्रकार अन्तर्वलित नहीं होने दिया जा सकता जिससे कि अनुच्छेद 16(1) में अन्तर्विष्ट नीति ही समाप्त हो जाए। यह बात कि अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर उपयुक्त आरक्षण कौन-सा होगा, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगी और इसके संबंध में कोई भी निश्चित नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता और न ही इस मामले के संबंध में कोई ऐसा गणितीय फार्मूला ही बनाया जा सकता है जिससे कि सभी मामलों में उसका पालन किया जा सके। निस्संदेह इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित मामलों में यह अधिकथित किया गया है कि आरक्षण की प्रतिशतता 50% से अधिक नहीं होनी चाहिए। जैसा कि मैंने उन नजीरों का अर्थान्वयन किया है, यह नियम सावधानी बरतने के लिए है और वह सभी प्रवर्गों को लागू नहीं होता है। उदाहरणार्थ यदि यह मान लिया जाए कि किसी राज्य में नागरिकों के अनेक पिछड़े हुए वर्ग हैं जो जनसंख्या के 80% हैं और सरकार, उन्हें उचित प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि से, उनके लिए 80% आरक्षण करती है तो क्या यह कहा जा सकता है कि आरक्षण की प्रतिशतता अनुचित है और

वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की अनुज्ञेय सीमाओं का अतिक्रमण करती है ? इसका उत्तर आवश्यक रूप से नकारात्मक ही होना चाहिए । इस उपबंध का मुख्य उद्देश्य अपर्याप्त प्रतिनिधित्व को पर्याप्त बनाने के लिए कदम उठाना है ।

225. अब हम अग्रनयन-नियम (कैरी फारवार्ड रूल) की विधिमान्यता पर विचार करना चाहेंगे जिसके संबंध में उच्च न्यायालय ने अपना मत व्यक्त किया है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्य ने जिस विशेष नियम को अपनाया है उसके परिणामस्वरूप 51 रिक्तियों में से 34 रिक्तियां अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों द्वारा भर ली गई हैं तथा उसके द्वारा 50% की सीमा का अतिक्रमण किया गया है जिसे इस न्यायालय ने अधिकथित किया था । यह सच है कि **टी० देवदासन वाले मामले**[1] में इस न्यायालय के बहुमत निर्णय ने उस नियम को अभिखण्डित कर दिया था जिसके अधीन रिक्तियों के अग्रनयन (कैरी फारवर्ड) को अनुज्ञात किया गया था । किन्तु सादर मैं इस मत से सहमत होने में समर्थ नहीं हूं क्योंकि ऐसा नियम कभी-कभी अनुच्छेद 16 के ही उद्देश्यों को समाप्त कर देता है । अग्रनयन नियम से जो बात अभिप्रेत है वह यह है कि यदि मान लिया जाए कि किसी वर्ष में 50 रिक्तियां होती हैं, जिनमें 25 रिक्तियां नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों के लिए अलग कर दी जाती हैं और यदि इन 25 रिक्तियों में से केवल इस प्रकार के 10 अभ्यर्थी उपलभ्य हैं तो बची हुई इन 15 रिक्तियों को खाली रखने के स्थान पर, जिसके परिणामस्वरूप अदक्षता और गतिहीनता उत्पन्न हो सकती है, अन्य वर्गों में से भर ली जाती हैं, किन्तु उस कमी को अगले वर्ष या अगले वर्ष के बाद वाले वर्ष में पूरी करने की कोशिश की जाती है । यदि ऐसा रास्ता अपनाया जाता है तो मुझे कोई भी आपत्ति नहीं है और वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की भावना के अनुसार पूरी तरह से है। यदि नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों का प्रतिनिधित्व सेवा में नहीं किया गया है तो उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना ही मुख्य विचार है । यदि आरक्षित रिक्तियों को वर्षानुवर्ष बनाए रखने के बजाए जिसके परिणामस्वरूप सरकार के काम को हानि पहुंच सकती है, उन्हें अन्य अभ्यर्थियों द्वारा भरने दिया जाता है और इस प्रकार से भरी गई

---

[1] (1964) 4 एस० सी० आर० 680.

अनेक रिक्तियों को पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों को समायोजित करने के लिए अगले वर्ष के लिए आरक्षित करके रख लिया जाता है, तो उससे कोई भी अन्तर नहीं पड़ेगा। उसमें समता की संकल्पना नष्ट नहीं होती है और नष्ट हो भी नहीं सकती, और न ही उसके परिणामस्वरूप एक या दूसरे के विरुद्ध प्रतिकूल विभेद ही उत्पन्न हो सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि 50% की सीमा तक का आरक्षण अनुज्ञेय है और यदि उस सीमा तक अभ्यर्थी उपलभ्य नहीं हैं और वे रिक्तियां अन्य अभ्यर्थियों द्वारा नहीं भरी जा सकती थीं तो ऐसे अभ्यर्थियों की नियुक्ति बिल्कुल ही नहीं होगी। यह तो प्रसंगवश ही था कि पिछड़े हुए वर्गों के कुछ अभ्यर्थी उपलभ्य नहीं थे जिसके कारण अन्य अभ्यर्थियों को नियुक्त किया गया। वास्तव में यदि अग्रनयन नियम का अनुसरण नहीं करने दिया जाता तो उसके परिणामस्वरूप नागरिकों के ऐसे पिछड़े हुए वर्गों के बीच असमानता हो जाएगी जिनको सरकार द्वारा उनके लिए आरक्षित पूर्ण कोटे के अनुसार लोक नियोजन में आमेलित नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकार यदि अग्रनयन नियम को कायम नहीं रखा जाता तो पिछड़ापन शाश्वत् हो जाएगा तथा उसके परिणामस्वरूप रिक्ति उत्पन्न हो जाएगी। अतः इन कारणों से मेरी राय यह है कि उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना गलत था कि राज्य की अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों द्वारा 51 रिक्तियों में से 34 रिक्तियों को भरने की कार्रवाई अवैध थी और उसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

(iv) दक्षता में हानि पहुंचाकर आरक्षण नहीं किया जाना चाहिए।

226. यह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) को लागू करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण शर्त है। कोई भी आरक्षण दक्षता में हानि पहुंचाकर, जो कि मुख्य बात है, नहीं किया जा सकता। किन्तु किसी को दक्षता के बारे में कृत्रिम दृष्टिकोण अपनाना नहीं चाहिए। नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में दी गई कोई रियायत या की गई शिथिलता, विशिष्टतया उस समय जब कि वे अनुभव में ज्येष्ठ हैं, दक्षता के किसी ह्रास की कोटि में नहीं आएगी। किन्तु मेरे लिए यह आवश्यक नहीं है कि मैं इस पहलू पर विचार करने में और अधिक समय नष्ट करूं क्योंकि मेरी दृष्टि में

नियमों के नियम 13-एए में अन्तर्विष्ट जो शिथिलन मौजूद है, वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की परिधि के भीतर नहीं आता है, किन्तु वह अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) के भीतर स्पष्ट रूप से आता है जैसा कि ऊपर बताया गया है, और इसी कारण से मेरी राय यह है कि उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना गलत था कि नियम 13-एए अधिकारातीत है और अनुच्छेद 16 का अतिक्रमण करता है क्योंकि उसने यह समझा था कि यह नियम अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) की परिधि के भीतर आता है।

227. इस निर्णय को समाप्त करने के पूर्व मैं उस गम्भीर आशंका को समाप्त करना चाहूंगा जो कि प्रत्यर्थी सं० 1 के विद्वान् काउन्सेल ने व्यक्त की है कि यदि न्यायालय अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 का व्यापक और उदार निर्वचन करेगा तो समता संबंधी मूल अधिकार की प्रत्याभूतियां समय के सम्यक् अनुक्रम में पूरी तरह से नष्ट हो जाएंगी। मैंने इस दलील पर गम्भीरता से विचार किया है और स्पष्ट रूप से मेरी राय यह है कि विद्वान् काउन्सेल ने जो आशंका व्यक्त की है वह साधार प्रतीत नहीं होती है। इस न्यायालय ने समता की संकल्पना को प्रभावित किए बिना वर्तमान मामले में किए गए वर्गीकरण की बनिस्वत अनेक मामलों में और अधिक गम्भीर तथा अधिक हानिकारक वर्गीकरणों को कायम रखा है। उदाहरण के लिए, **त्रिलोकी नाथ खोसा वाले मामले**[1] में, इस न्यायालय ने राज्य द्वारा एक ही सेवा के सदस्यों के, जिनकी एक ही स्रोत से भर्ती की गई थी और जो एक ही पद धारण करते थे, बीच किए गए वर्गीकरण को इस आधार पर कायम रखा था कि चूंकि सदस्यों के एक समूह के पास उच्चतर अर्हता है अर्थात् इंजीनियर की डिग्री है इसलिए वे पृथक् वर्ग गठित करते हैं और उनके साथ उसी सेवा के ऐसे अन्य सदस्यों की तुलना में भिन्न प्रकार का व्यवहार किया जा सकता था जिनके पास मात्र डिप्लोमा हो। उस मामले में जो कुछ हुआ था, वह यह था कि इंजीनियरों की सेवा एकीकृत सेवा थी जो कि ऐसे सहायक इंजीनियरों से, जिनके पास मात्र डिप्लोमा था, और उन सहायक इंजीनियरों से, जिनके पास डिग्री थी, मिल कर बनी थी। सरकार ने ऐसा आदेश पारित किया था जिसके द्वारा डिग्री धारकों को सेवा के उच्चतर ग्रेड में अर्थात् कार्यपालक इंजीनियर या अधीक्षण इंजीनियर के पदों पर प्रोन्नत

[1] (1974) 1 एस० सी० आर० 771=[1973] 3 उम० नि० प० 1341.

किया जा सकता था, जो कि उन सहायक इंजीनियरों के लिए अवरुद्ध था जिनके पास मात्र डिप्लोमा था। जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय ने इस नियम को अभिखण्डित कर दिया था, किन्तु उच्चतम न्यायालय ने, अपील करने पर, यह निर्धारित किया कि अर्हता वर्गीकरण का युक्तियुक्त आधार है और अर्हता के आधार पर, ऐसे सहायक इंजीनियरों के साथ जिनके पास डिग्री थी, अधिमानता का व्यवहार किया जा सकता था। इस मामले में जो स्थिति है वह उससे बुरी नहीं मालूम पड़ती और तर्क के आधार पर सरकार ने प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों के लिए दो कारणों से उन्हें विशेष वर्ग के रूप में मान कर, विभागीय परीक्षाओं के लिए विहित समय को मात्र बढ़ा दिया है—(1) यह कि प्रत्यर्थी सं० 1 की बनिस्वत उन्हें अधिक अनुभव प्राप्त था; और (2) यह कि वे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य होने के कारण पिछड़े हुए वर्ग के थे और ऐतिहासिक कारणों से उन्हें अपनी प्रतिभा और बौद्धिक क्षमता का विकास करने का पर्याप्त अवसर उस प्रकार से नहीं मिला था जैसा कि अन्य व्यक्तियों को मिल सकता था। अतः मुझे यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि यह वर्गीकरण किसी भी प्रकार से अयुक्तियुक्त या मनमाना है। जैसा कि मैंने बताया है, जिन परिस्थितियों के अधीन वर्गीकरण करना पड़ा है वे इतनी कठिन और कठोर हैं कि समता की संकल्पना के नष्ट होने के संबंध में जो आशंका व्यक्त की गई है वह भ्रामक प्रतीत होती है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि न्यायालय विधि का निर्वचन करने के लिए हैं न कि विधि बनाने के लिए। जैसा कि जस्टिस फ्रैंकफर्टर ने मत व्यक्त किया था—

> "न्यायाधीश को न तो कानून की परिधि को बढ़ा कर और न ही उसे संकुचित करके उसे फिर से लिखना चाहिए।"

228. अन्त में, इस संबंध में कोई भी संदेह नहीं हो सकता कि यदि किसी विशिष्ट मामले में राज्य की कार्रवाई मनमाने वर्गीकरण या ऐसे प्रतिकूल विभेद की कोटि में आती है जो कि संविधान के अनुच्छेद 16 का अतिक्रमण करता है, तो न्यायालय उस पर नियंत्रण रखने के लिए ऐसी कार्रवाई को अभिखण्डित करने की दृष्टि से संतरी के समान मौजूद रहता है।

229. उपर्युक्त कारणों से मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि नियमों का नियम 13-एए ऐसा विधिमान्य कानूनी उपबंध है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(1) के अधीन पूरी तरह से न्यायोचित है और अनुच्छेद 16(4) की परिधि के भीतर नहीं आता है ।

230. अत: मैं अपील मंजूर करता हूं, उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करता हूं और यह निदेश देता हूं कि जैसी स्थिति पहले थी, वही कायम रखी जाए । मामले की परिस्थितियों के अनुसार संबंधित पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं बर्दाश्त करेंगे

आदेश

न्यायाधिपतियों ने बहुमत से निम्नलिखित आदेश दिया--

केरल स्टेट एण्ड सबॉर्डिनेट सर्विसिज रूल्स, 1958 के नियम 13-एए और दोनों आदेशों, प्रदर्श पी-2 और पी-6, की विधिमान्यता कायम रखी जाती है । उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और अपील मंजूर की जाती है । पक्षकार अपना-अपना खर्च स्वयं बर्दाश्त करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

श्री०/मि०